बालगीत साहित्य

लेखक

निरंकार देव सेवक

एम० ए०, एल-एल बी०, एडवोकेट

१८१, सिविल लाइन, बरेली (उ० प्र०)



किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्राइवेट लिमिटेड

रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद

प्रथम, संस्करण १९६६

पूज्य

पिता जी के

चरणों में

—निरंकार

प्रकाशक : किताब महल, १५ थार्नहिल रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक : प्रेम प्रेस, कटरा इलाहाबाद।

प्रस्तावना

जिस भाषा में बालसाहित्य का सृजन नहीं होता उसकी स्थिति उस स्त्री के समान है जिसके सन्तान नहीं होती। प्रत्येक देश का भविष्य उसके बच्चों पर ही निर्भर होता है। वही उसके भावी निर्माता होते हैं। अतएव जो देश अपने इन भावी निर्माताओं के प्रति उदासीन रहता है उसका भविष्य अन्धकारपूर्ण समझना चाहिए। यह ठीक है कि बच्चों को अपने लिए कुछ ज्ञातव्य साहित्य मौखिक रूप में अपने पूर्वजों से अनायास मिल जाता है। पर जब वह लिखना-पढ़ना सीख जाते हैं तो उनकी तृप्ति उस मौखिक साहित्य से नहीं होती। वह कुछ ऐसी पुस्तकें भी चाहते हैं जिन्हें पढ़कर वह प्रसन्न हो सकें, जो उनकी अपनी पुस्तकें हों। गीता, रामायण, महाभारत इत्यादि मोटे ग्रंथों को देखते ही वह समझ लेते हैं कि वह उनकी पुस्तकें नहीं हैं। और उन्हीं को बार-बार खोलकर उन्हें ज्ञान, धर्म और नीति की बातें सिखाते रहने से उन्हें वही कष्ट होता है जो पत्थर के नीचे दबाये जाने से किसी कोमल कली को होता होगा। इसलिए पढ़ने में रुचि विकसित होने पर बच्चों को अपने विकास के लिए कुछ ऐसा बाल साहित्य पढ़ने को मिलना चाहिए जिसे वह अपना समझ सकें। बाल साहित्य के नाम पर हिन्दी में अब बहुत पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। एक गणना के अनुसार उपन्यास और कहानियों की पुस्तकों के बाद बाल साहित्य की पुस्तकें ही सबसे अधिक बिकती हैं। उनमें से कितनी बाल साहित्य की श्रेणी में आने वाली और कितनी ऐसी हैं जो उनके विकास की गति को कुंठित कर देंगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। हमारे देश में बड़ों की पुस्तकों को लेकर उन पर समीक्षा, आलोचना, प्रत्यालोचना की मोटी-मोटी पुस्तकें लिखी जाती हैं। पर बाल साहित्य क्या हो, कैसा हो ? इस विषय पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी देखने को नहीं मिलते। सम्मेलनों और गोष्ठियों में भी इस विषय पर विचार नहीं किया जाता। इसीलिए बाल साहित्य के नाम पर आज जो अनाचार हिन्दी में हो रहा है वह एक चिन्ता का विषय है। बड़े-बड़े लेखक और प्रकाशक अपने यश और लाभ के लिए उसे कर रहे हैं। और उसका फल भोगना पड़ रहा है देश के उन भोले-भाले सुकुमार बच्चों को जो कल बड़े होकर राष्ट्र का भविष्य सँभालेंगे।

बाल साहित्य के लिखने वाले बड़े लोग ही होते हैं। और उसे बाजार से खरीद कर भी बड़े लोग ही बच्चों के हाथों में देते हैं। बच्चे स्वयं न तो अपने लिए अपने साहित्य का सृजन करते हैं और न उन्हें अपने पढ़ने के लिए अपनी मन पसन्द पुस्तकें खरीद लाने का स्वतन्त्र अधिकार होता है। बड़े उनकी रुचि पसन्द में अपनी टाँग अड़ाने से चूक नहीं सकते। वह भिन्न-भिन्न उपायों से उनके कोमल हृदयों पर अपनी रुचि और पसन्द लादने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक बड़े की यह इच्छा होती है कि उनका बच्चा बड़ा होकर उनके अपने विचारों और इच्छाओं के अनुरूप बने। बड़े यदि आर्यसमाजी हैं तो वह अपने बच्चे को आर्य समाज का सबसे बड़ा

नेता बना देना चाहते हैं और यदि मुसलमान हैं तो कोई पीर या पैगम्बर। बच्चे स्वयं बुरे-भले और ऊँच-नीच विचारों में भेद करके अपनी निजी धारणायें और विश्वास बनाकर विकसित हो सकते हैं—इस मनोवैज्ञानिक सत्य को स्वीकार करके बच्चों को उनके स्वभाव और रुचि के अनुसार किसी विशेष परम्परागत आस्था विश्वास से असम्बद्ध साहित्य पढ़ने को देने का साहस बहुत कम बड़े कर पाते हैं। बड़ों की इस प्रवृत्ति की आलोचना संसार के अनेक विद्वान विचारकों ने की है। जार्ज बर्नार्ड शा का तो कहना था—'जो व्यक्ति बच्चों के स्वाभाविक चरित्र को मोड़ देने का प्रयत्न करता है, वह संसार का सबसे बड़ा गर्भ गिरा देने वाला है।'

छोटे बच्चों का संसार अपने आकार, प्रकार-रंग-रूप में बड़ों के संसार से सर्वथा भिन्न होता है। बड़ों के संसार में लोक-शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति, समाज, राष्ट्र, जाति, आदर्श, नियम विधान इत्यादि पग-पग पर विद्यमान रहते हैं जिनसे अलग करके हम व्यक्ति की कल्पना ही नहीं कर सकते। बच्चों के संसार में इन सब का अभाव होता है। बच्चे निजी तौर पर न तो शिष्टता, सभ्यता का अर्थ समझते हैं न आदर्श, राष्ट्र या नियम विधानों की कोई चिन्ता उन्हें सताती है। वह अपने देश, समाज और जाति तो क्या अपने सगे-सम्बन्धियों और अत्यधिक निकट के व्यक्तियों के विषय में भी ठीक से नहीं जानते। बहुधा फूल-पत्ते, हरियाली, पशु-पक्षी कुत्ते-बिल्ली, तोता-तितली इत्यादि उनके निकट व्यक्तियों से भी अधिक प्रिय सगे सम्बन्धी होते हैं। उन्हें अपने खेल-खिलौनों, तस्वीरों की पुस्तकों इत्यादि से जितना मोह होता है उतना किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति से नहीं। अपने खेल के समवयस्क साथियों को वह अपने परिवार के सदस्यों से भी अधिक प्यार करते हैं। उनके संसार में व्यक्ति से व्यक्ति का सम्बन्ध केवल मनुष्यता के नाते होता है। देश जाति वर्ण धर्म के आधार पर होने वाले सम्बन्धों की वहाँ कोई मान्यता नहीं होती।

संसार के सारे पदार्थ और कार्य व्यापार बच्चों को जैसे दिखाई देते हैं वैसे बड़ों को नहीं। पहाड़ नदी या बादल को देखकर जो कौतूहल, जिज्ञासा, हर्ष या भय के भाव बच्चों के मन में उठते हैं वह बड़ों के मन में नहीं उठते। सरिता के कल-कल निनाद, कोयल की कूक, झींगुर की झंकार, और चिड़ियों के चहकने में जिस प्राकृतिक संगीत का स्वर बच्चों को सुनाई देता है, कृत्रिम शास्त्रीय निश्चित नियमों से संचालित सीमा में सधे स्वरों को सुनने के आदी बड़ों के कान उन्हें सुनने को तरसते रह जाते हैं। बच्चों की वेश-भूषा, रहन-सहन, रुचि-स्वभाव और भाषा ही नहीं भावनायें और कल्पनायें तक बड़ों से सर्वथा भिन्न होती हैं। बच्चों के लिए बड़े किसी परदेशी से कम अपरिचित नहीं होते। जैसा हम भारतीय, रूसी, जर्मन, अंग्रेज और फ़्रांसीसी लोगों के बारे में एक अजनबीपन अनुभव करते हैं वैसा ही बच्चे हम बड़ों के बारे में करते हैं। इस दृष्टि से बच्चों को बड़ों का दिया हुआ सारा साहित्य ही विदेशी साहित्य के समान होता है।

जिन विद्यालयों में छोटे बच्चों को उनके अपने स्वभाव और रुचि के अनुसार विकसित होने का अवसर न देकर उन्हें ही मिट्टी की तरह साँचों में ढालने का प्रयत्न [कि]या जाता है उन्हें मैं उन कसाईखाने से कम नहीं समझता जिनमें पत्थर पर कूट-कूट

कर मांस का कीमा बनाया और बेचा जाता है। एक बार छोटे बच्चों के एक समारोह में जाने का अवसर मुझे मिला था। बच्चों ने स्वयं अपनी रची हुई कवितायें उसमें सुनाई थीं। उन कविताओं में काश्मीर, भारत और पाकिस्तान की राजनीति से लेकर बड़ी-बड़ी दार्शनिक, नीति और न्याय तक की बातों का वर्णन था। मैं अपनी 'आई बिल्ली' 'भागा चूहा' आदि कवितायें लिए वहाँ बैठा था। और मैं समझ रहा था बच्चों की उन कविताओं के भाव स्वयं उनके अपने मन के नहीं उनपर लादे हुए हैं। अन्त में मुझे कहना ही पड़ा—"इन कविता सुनाने वाले छोटे बच्चों को देखकर ऐसा लगता है मानों वह सब देखने में छोटे पर आयु में बड़े-बड़े बौने हैं जिनके हाथ पैर उंगलियाँ और शरीर के सब अंग तो छोटे रह गये और सिर हाथी के सिर के बराबर बड़े हो गए हैं।"

मैं सोचता था बाल साहित्य के विषय में कुछ विचार विनिमय किया जाये, कुछ लिखा जाये। और इस सम्बन्ध में मैंने अपने कई साथी मित्रों से कहा भी। कुछ ने कुछ प्रयत्न भी किया पर जब कई वर्ष तक किसी ने कुछ लिखा नहीं तो मैं सोचने लगा शायद मुझे ही यह कार्य करना होगा। इसी बीच उत्तर प्रदेश राज्य के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'शिक्षा' के सम्पादक श्री० महेश्वरदयाल शर्मा से भेंट हुई। वह मेरे कालिज के पुराने साथी हैं। उन्होंने मुझसे 'शिक्षा' के लिए बाल साहित्य पर कुछ लेख लिखकर देने को कहा। मैंने दो-चार लेख लिखे। वह 'शिक्षा' में प्रकाशित हुए। उनकी सफलता से प्रोत्साहित होकर मैं और लिखता चला गया और 'शिक्षा' का प्रकाशन बन्द हो जाने के बाद भी यह इतने इकट्ठे होकर इस पुस्तक के आकार के हो गए।

हिन्दी में बालगीत साहित्य पर शायद यह पहिली पुस्तक है। इसलिए इसमें अनेक दोषों और त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। इसे लिखने के लिए बहुत कुछ सामग्री मुझे कई ऐसी पुस्तकों के अध्ययन से जुटानी पड़ी जिनका बाल-साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं था। और बहुत-सी बातें अपनी कल्पना और समझ के अनुसार भी लिख देना पड़ीं। मैं तो पिछले लगभग २०—२५ वर्ष से बच्चों के लिए केवल कविता ही लिखता रहा हूँ। और जैसा कि हंसी-हंसी में हिन्दी कवियों के लिए कहा जाता है मैं भी दूसरों की लिखी पुस्तकें पढ़ने के लिए कम ही समय पाता हूँ। वकालत का व्यस्त व्यवसाय मुझे किसी विषय का विधिवत अध्ययन को समय ही नहीं देता। यह पुस्तक लिखना भी मेरे लिए असम्भव ही होता यदि अब से २१, २२ वर्ष पूर्व मुझे एम० ए० पास करने के बाद बनारस विश्वविद्यालय में अध्यापन-कला की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर न मिला होता। उसके दो वर्ष पूर्व से दो वर्ष बाद तक मैं शिक्षा-संस्थाओं में अध्यापक रहा था। बच्चों के बीच रहने के कारण उनके स्वभाव, कार्य और चेष्टाओं को देखने समझने का अच्छा अवसर मिला। उनके प्रति मेरा सहानुभूति और प्रेमपूर्ण व्यवहार सदा से रहा है। छोटे-छोटे बच्चे मुझे हर समय घेरे रहते थे। उन्हें मेरे सामीप्य से एक सुख प्राप्त होता था और मुझे उनके। बच्चों के प्रति मेरे मन में आज भी वैसी ही सहानुभूति और प्यार की भावना है।

में जब अवसर मिले उनके साथ मिल बैठकर खेलना कूदना चाहता हूँ। पर अब मेरे बाल पक जाने के कारण बच्चे उतनी प्रसन्नता से मुझेअपने खेलों में सम्मिलित नहीं करते।

बनारस में अपने विशेष अध्ययन के लिए भी मैंने "बालगीत और उनकी शिक्षा" विषय ही चुना था। उन दिनों का लिखा वह थीसिस मेरे पास ज्यों का त्यों-त्यों अब भी रक्खा है। स्कूल कालिज के पाठ्य-क्रम में बंधकर अध्ययन करने की प्रवृत्ति भी मेरी कभी नहीं रही। परीक्षा में पास हो जाने भर के लिए पाठ्य-पुस्तकें पढ़ लेना आवश्यक समझता रहा। पर दुनिया के विभिन्न विषयों की पुस्तकों का स्वतंत्रतापूर्वक अध्ययन निरन्तर किये जाने में मेरी सदैव रुचि रही है। मैं सुना करता था अपने समय के सुप्रसिद्ध नाटककार आगा हश्र को सड़क पर चलते हुए यदि कोई फटा हुआ सड़ा गला कागज भी मिल जाता था तो वह उसे उठा झाड़-पोंछ कर रख लेते थे। अवकाश मिलने पर ध्यान से उसका अक्षर-अक्षर पढ़े बिना उसे फेंकते नहीं थे। पढ़ने में मेरी वैसी रुचि तो नहीं रही पर कोई भी अच्छी पुस्तक दिखाई दे जाने पर उसे प्राप्त कर पढ़ लेने के लिए मैं अपनी आदत से विवश था। उन दिनों पाठ्य-क्रम में निर्धारित पुस्तकों के प्रति उपेक्षा का भाव याद आते ही मुझे अपने कालिज जीवन की एक रोचक घटना याद आ जाती है। हमारी अर्द्ध वार्षिक परीक्षा दिसम्बर में हुई। तब तक मैंने निर्धारित पुस्तकों को पढ़ना तो दूर कदाचित् ठीक से देखा भी नहीं था। परीक्षा के कमरे में प्रतिदिन परीक्षा-पत्र और कापी लेकर जा बैठता था। समय से पूर्व अध्यापक निकलने नहीं देते थे और मेरे पास कापी पर लिखने को कुछ नहीं होता था। इसलिए प्रायः खाली बैठे किसी कागज पर कोई बाल गीत लिखने लगता था। एक दिन जब एक बाल गीत लिखने में अपने को भूला हुआ था जिसकी प्रथम पंक्ति थी—

तुम बनो किताबों के कीड़े, हम खेल रहे मैदानों में। उसी समय कालिज के प्रिंसिपल श्री मलकानी घूमते हुए अचानक वहाँ आ निकले। उन्होंने देखा मेरी कापी कोरी बन्द रक्खी है और मैं कविता लिखने में तल्लीन हूँ, तो क्रोधित होकर बोले—'तुम कुछ नहीं करते। अपना समय नष्ट करते हो। मैं तुम्हारी सारी कविता भुला दूँगा।" उस परीक्षा के सब प्रश्नपत्रों की कापियाँ मैं बिल्कुल कोरी रख कर चला आया था। परीक्षा फल घोषित करते हुए मेरे प्राध्यापक श्री सुब्रह्मण्यम ने मेरी कोरी कापी सब को दिखाते हुए कहा—'यह एक विद्यार्थी है जिसने अपनी कापी पर एक शब्द भी नहीं लिखा।' कक्षा में सब यह सुनते ही जोर से ठहाका मार कर हँस पड़े थे। मेरा मुँह लाज से लाल हो गया था। तभी दूसरे क्षण श्री सुब्रह्मण्यम ने कहा था— "पर मुझे ऐसे विद्यार्थी पसन्द हैं। यह कम से कम ईमान्दार तो है। कितने ही तो कुछ न पढ़कर भी व्यर्थ की बातें लिखकर मेरा और अपना दोनों का समय नष्ट करते हैं।" उसके बाद जनवरी से मैंने अपनी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ना प्रारम्भ की और सब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मार्च में होने वाली वार्षिक परीक्षा में मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण घोषित किया गया। बनारस में उन दिनों की

याद करते हुए मैं गुरुवर पं० सीताराम चतुर्वेदी तथा पं० लाल जी राम शुक्ल को नहीं भूल सकता जिन्होंने मेरी बाल साहित्य में रुचि को बहुत प्रोत्साहन दिया था।

इस प्रकार जिस व्यक्ति का अध्ययन विधिवत न रहा हो उसका यह पुस्तक लिखना एक दुष्प्रयास भी कहा जा सकता है। पर जहाँ राष्ट्रीय महत्व का होते हुए भी यह विषय सदा उपेक्षित ही रहा हो वहाँ उसे क्षम्य तो कहा ही जा सकता है।

यह पुस्तक लिखने में मुझे सामग्री एकत्रित करने में बहुत कठिनाई हुई है। लोक गीतों में बालगीत खोजते समय लोक गीत सम्बन्धी कुछ पुस्तकों से कुछ सामग्री मिल गई। पर पूरे देश में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरे पड़े सारे लोक गीतों का संग्रह अभी तक हिन्दी में नहीं हुआ है और जो संग्रह हुए हैं उनमें बालगीतों का उल्लेख नाम मात्र को भी नहीं है। भोजपुरी और ब्रज के लोक गीतों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में मुझे अलीगढ़ के श्री सत्यप्रकाश गोस्वामी तथा पटना के श्री नारायण 'भक्त' से सहायता लेनी पड़ी जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

इसी प्रकार हिन्दी तथा भारत की अन्य भाषाओं के बाल गीतों पर लिखने में भी कम कठिनाई नहीं हुई है। मैं हिन्दी तथा प्रत्येक भारतीय भाषा के बालगीत साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर अलग-अलग एक-एक लेख लिखना चाहता था। हिन्दी की ही तरह अन्य भारतीय भाषाओं में बाल साहित्य लिखा गया है। भाषा ज्ञान की कमी के कारण मैं अपनी उपरियुक्त इच्छा को पूरा नहीं कर सका। श्री० के० वी० एन० आप्पाराव प्रिंसिपल संस्कृत कालिज, कोव्वुर (आंध्र) श्री प्रणव बन्द्योपाध्याय बरेली, श्री० रत्नाकर जी संचालक डानपिटेदार आसार, जल पाइगुड़ी, पश्चिमी बंगाल, श्री० वल्लभ दास अक्कड़ सम्पादक गुजरात मित्र, सूरत, श्री० एन० एम० देसाई स्टेट बैंक, बरेली की सहायता से मेरे लिए तेलुगु, बंगाली और गुजराती बाल साहित्य पर ही कुछ लिख पाना सम्भव हो सका। मैं उनके प्रति अत्यन्त आभारी हूँ। अन्य भारतीय भाषाओं उर्दू, आसामी, तामिल, मराठी आदि में भी बहुत अच्छा बाल साहित्य लिखा जा चुका है पर अपनी अयोग्यता के कारण मैं उसपर कुछ लिख सकने में असमर्थ रहा। यदि कोई दूसरे लेखक इस ओर ध्यान देकर उस पर कुछ लिखने की कृपा करेंगे तो हिन्दी साहित्य का गौरव ही बढ़ेगा।

हिन्दी बालगीत साहित्य का इतिहास लिखने में भी बहुत कठिनाई हुई। भाषा या साहित्य के किसी इतिहास में बाल साहित्य पर कुछ भी लिखा हुआ मुझे नहीं मिला। प्राचीन तथा मध्य कालीन साहित्य में उद्धरण रूप में प्रस्तुत कुछ पद्यांश ऐसे अवश्य मिले जिन्हें देखकर ऐसा लगा कि यथोचित बाल साहित्य के अभाव में बालक उन्हें अपना साहित्य समझते रहे होंगे। उन्हीं सूत्रों के आधार पर कल्पना के सहारे मैंने 'हिन्दी बालगीत साहित्य के इतिहास की भूमिका' शीर्षक लेख लिखने का प्रयत्न किया। उसके बाद आधुनिक काल में लिखा गया बाल साहित्य तो देखने को मिल ही गया। फिर भी जिन लेखकों या कवियों का नामोल्लेख होने से छूट हो गया उनसे मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। हिन्दी बालगीत साहित्य के इतिहास का काल विभाजन मैंने

ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर किया है। उसके सृजन की प्रवृत्तियों के रूप अभी तक ठीक से उभर कर सामने नहीं आए हैं। सम्भव है आगे चलकर यह आधुनिक पूरा युग बाल-साहित्य के इतिहास में एक ही प्रारम्भिक काल माना जाये।

यों तो इस पुस्तक के अध्यायों में से कई के विषय ऐसे हैं जिनपर अलग-अलग एक पुस्तक लिखकर तैयार की जा सकती है। 'अलिखित बालगीत' या 'लोकगीतों में बालगीत' विषय ऐसे हैं जिनपर खोज का काफी काम अभी हो सकता है। 'शिक्षा' में प्रकाशित अपने कुछ लेखों में मैंने बाल साहित्य पर शोध कार्य करने के लिए भी विद्यार्थियों को सुझाव दिया था। मैं निश्चित रूप से नहीं जानता कि साहित्य के इस उपेक्षित अंग पर अभी तक किस-किस ने शोध कार्य किया है। पर इतना मुझे ज्ञात है कि बरेली के प्रो० विज्ञान गर्ग आगरा विश्वविद्यालय तथा भूपाल के श्री० हरिकृष्ण देवसरे विक्रम विश्व विद्यालय से बाल साहित्य विषय पर शोध कार्य करके ग्रंथ लिखने का प्रयत्न कर रहे हैं। मध्य प्रदेश के श्री० राष्ट्रबन्धु तथा हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की शोध छात्रा कुमारी शीतला सिंह भी इस क्षेत्र में कुछ कार्य कर रही हैं। मेरी सद्भावनायें उनके साथ हैं।

मैं उन सब विद्वान साहित्यकारों के आगे कर-बद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ जो आसानी से मेरे इन लेखों की भूलें पकड़ सकते हैं। और शिष्टाचार के नाते उन सब पाठकों के आगे भी विनयावनत हूँ जो इस पुस्तक में उद्धरण के लिए कुछ स्थानों पर दी गई मेरी अपनी ही रचनायें देखकर इसे ठीक नहीं समझेंगे। ऐसा करना मेरे लिए अपेक्षाकृत सरल था। दूसरे जब मैंने अब तक लगभग २३ बालगीत साहित्य की पुस्तकें हिन्दी जगत को दी हैं और उनका यथोचित स्वागत भी हो रहा है तो मैं यह अन्याय अपने प्रति कैसे करता कि उन पुस्तकों में से कोई उद्धरण कहीं भी नहीं दूँ।

यदि हिन्दी साहित्य के प्रेमी पाठकों ने मेरे इस प्रयास को पसन्द किया तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

१८१, सिविल लाइन्स
बरेली (उ० प्र०)

निरंकार देव सेवक

विषय-सूची

१ : बाल-स्वभाव

एक दिन भारत सम्राट अकबर के दरबार में बीरबल निश्चित समय से कुछ देर में पहुँचे। अकबर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आते ही उन्होंने देर में आने का कारण पूछा। बीरबल ने कहा—'मेरा छोटा बच्चा कुछ अनमना हो गया था उसे ही बहलाने में इतनी देर लग गई।' अकबर ने झुँझला कर कहा—'जरा से बच्चे को बहलाने में इतनी देर लग गई ? तुम झूठ बोलते हो।' बीरबल ने कहा—'नहीं जहाँपनाह ! यदि आपको विश्वास नहीं तो मैं बच्चा बन जाता हूँ। आप मुझे मना कर देख लीजिए।' अकबर ने कहा—'अच्छी बात है, बच्चे को बहलाने में कितनी देर लगती है।' बीरबल बच्चे की तरह मचल-कर ऊँ ऊँ करके रोने लगे। अकबर ने पूछा—'बच्चे ! क्यों रोते हो ?' बीरबल ने उसी प्रकार ऊँ ऊँ करते हुए कहा—'मैं तो गन्ना लूँगा।' अकबर ने एक गन्ना मँगवा कर बीर-बल को दिया। फिर भी उनका रोना बन्द न हुआ। अकबर ने कहा, 'बच्चे ! अब क्यों रोते हो ?' बीरबल ने उसी प्रकार रोते हुए कहा—'इस गन्ने को छील दो।' यह भी कुछ कठिन काम नहीं था। अकबर ने तुरन्त गन्ने को छील दिया। बच्चा बीरबल का रोना फिर भी बन्द न हुआ। अकबर ने फिर पूछा—'बच्चा ! अब क्यों रोते हो ?' बीरबल ने उसी प्रकार रोते-रोते कहा—'इसे काट दो।' अकबर ने गन्ने को काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। मगर बच्चा बीरबल का रोना जारी रहा। अकबर ने फिर प्रश्न किया—'बच्चा ! देखो गन्ना काट भी दिया। अब तुम क्यों रोते हो ?' बीरबल ने वैसे ही ऊँ ऊँ करते हुए कहा—'अब इन टुकड़ों को जोड़ दो।' अकबर यह सुनते ही खिलखिला कर हँस पड़े और बोले—'सच कहते हो बीरबल ! रोते हुए बच्चे को चुप कराना सरल काम नहीं।' रोते हुए बच्चे के मन में कब क्या भाव किस क्रम से उठते हैं इसे समझ पाना बड़े से बड़े विद्वान के लिए भी बहुत आसान नहीं।' इस कहानी में सच्चाई हो या न हो किन्तु इससे बालस्वभाव की एक अच्छी झाँकी हमें मिलती है। बच्चे के मन को समझ पाना अतल अन्धकारमय समुद्र में गोता लगा कर मोती खोजने के समान बहुत ही कठिन काम है।

बाल स्वभाव का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किए बिना श्रेष्ठ बाल गीत साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता। जो बड़े यह नहीं जानते कि बच्चों के मन में किन परिस्थितियों में किस प्रकार की भावनायें उठती हैं, कब कैसी-कैसी कल्पनाएँ वह करते हैं, वह स्वयं अपनी भावनाओं और कल्पनाओं के आधार पर बाल गीत रच सकते हैं पर बच्चे भी उनमें रस ले सकेंगे यह कहना कठिन है। बड़े मनुष्यों की अपनी भावनायें और कल्पनायें ही बच्चों का स्वभाव समझने के लिये उनके मार्ग में सबसे बड़ी बाधायें होती हैं। किसी मनुष्य का मन शून्य की स्थिति में कभी नहीं रहता। कुछ न कुछ भावनायें विचार या कल्पनायें उसके मन में हर समय विद्यमान रहती हैं; उन्हीं को लेकर वह बच्चों के मन

की भावनाओं और कल्पनाओं को समझने की चेष्टा करता है। बहुधा ऐसा करना रंगीन चश्मा लगा कर आकाश को देखने के समान होता है और अपनी भावनाओं के अनुसार बच्चों की भावनाओं को देखने से हम कभी-कभी ऐसे गलत परिणामों पर पहुँच जाते हैं जो वस्तुस्थिति के सर्वथा प्रतिकूल होते हैं। अपने मन को पूर्णतया वश में करके अभ्यास के फलस्वरूप कुछ मनुष्य दूसरों के मन की भावनाओं को ठीक-ठीक समझ लेते हैं। अध्ययन भी इसी अभ्यास में सहायक होता है। इसलिए कवियों से हम यह आशा करते हैं कि किसी भी दूसरे की मनोभावनाओं का चित्रण जब वह करेंगे तो सत्य के निकट होगा। कवियों में यदि इतनी भावुकता न हो कि वह दूसरे की भावनाओं को ठीक-ठीक समझ सकें तो वह कविता लिख ही नहीं सकते। मैथिलीशरण गुप्त में यदि यशोधरा के प्रति एक हार्दिक सहानुभूति न होती और वह कल्पना के द्वारा उसके मन की भावनाओं को अच्छी तरह समझ न गये होते तो यशोधरा नामक काव्य की रचना कर ही नहीं सकते थे। इसी प्रकार जो कवि बालगीत लिखते हैं उन्हें बच्चों से सच्ची सहानुभूति रख कर कल्पना की शक्ति के द्वारा उनकी भावनाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

यों तो बालक ही क्या किसी भी अवस्था के मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन करने में कठिनाइयों का सामना करना होता है किन्तु विशेष रूप से बाल-स्वभाव के अध्ययन में बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। मनोवैज्ञानिक अध्ययन को सुलभ बनाने के लिये अध्ययन के विषय मनुष्य में आत्मनिरीक्षण की शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। यह शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में विकसित नहीं होती पुस्तक ज्ञान इस शक्ति को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है किन्तु केवल उससे ही काम नहीं चलता। आत्मनिरीक्षण की इस शक्ति को प्राप्त करने के लिये अभ्यास से मन को इस प्रकार वश में कर लेना पड़ता है कि वह सुख-दुख, राग-द्वेष इत्यादि किन्हीं अवस्थाओं में विकसित न होकर एक रूप में स्थिर रह सके। बालक आत्मनिरीक्षण कर ही नहीं सकते इसलिये उनके स्वभाव के अध्ययन में हम एक बहुत बड़े सहायक तत्व से वंचित रह जाते हैं।

एक कुशल मनोवैज्ञानिक बनने के लिये स्वयं अध्ययनकर्त्ता में भी इस आत्मनिरीक्षण की शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। उसमें यह शक्ति होती है इसीलिये वह दूसरों की भावना वृत्तियों को अपनी भावना वृत्तियों की कसौटी पर कस कर ठीक-ठीक समझ सकता है। बालक के स्वभाव का अध्ययन हम तब करते हैं जब हम स्वयं बालक नहीं रहते इसलिये प्रायः वह कसौटी ही हमारे पास नहीं होती जिसके आधार पर हम उसकी भावना वृतियों का अध्ययन कर सकें। यह अध्ययन तभी ठीक प्रकार से किया जा सकता है जब अध्ययनकर्त्ता अभ्यास करके स्वयं बालकों जैसी भावना वृत्तियाँ अपने मन में उत्पन्न कर सकने में समर्थ हो। एक प्रौढ़ व्यक्ति अपने को किसी दूसरे प्रौढ़ व्यक्ति की स्थिति में रख कर उसके मनोभावों को कल्पना के द्वारा समझ सकता है। पर बचपन की अधिकतर बातें मनुष्य बड़ा होकर भूल जाता है इसलिये एक बालक की स्थिति में अपने को रखकर हमें उसकी मनोभावनाओं को समझने और उनका अध्ययन करने में विशेष कठिनाई होती है।

प्रौढ़ व्यक्ति अपने मन की बात स्वयं अपने मुख से और अपनी चेष्टाओं से कह देता है। इससे उसकी मानसिक स्थिति का ज्ञान आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। पर बालक अधिकतर किसी बात का अनुभव अपने मन में बहुत गहराई से करते हुए भी उसे उपयुक्त शब्दों और चेष्टाओं के द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते। दूसरे बालक बड़ों के सामने अपने अनुभवों के पिटारे को खोलने में संकोच भी करते हैं। प्रायः देखने में आता है कि छोटे बच्चे जहाँ आजादी से मनमाने खेल खेल रहे हों वहाँ यदि कोई बड़ी आयु का व्यक्ति पहुँच जाता है तो वह आजादी से खेलना बन्द कर देते हैं। वह किसी बड़े के सामने अपने मन की बात स्पष्ट खोल कर तब तक नहीं रखते जब तक वह उसे अपना परम हितैषी बिलकुल अपने जैसा ही न समझ ले।

आधुनिक काल के प्रायः सभी मनोवैज्ञानिकों ने किसी व्यक्ति के स्वभाव का अध्ययन करने में दो बातों का ज्ञान आवश्यक माना है—एक तो उस व्यक्ति के वंशानुक्रम का ज्ञान दूसरे उस वातावरण या उन परिस्थितियों का ज्ञान जिनमें उसके स्वभाव को विकसित होने का अवसर मिलता है। सभ्य सुसंस्कृत माता-पिताओं के बच्चे भी प्रायः सभ्य सुसंस्कृत होते हैं। पर यह भी देखा जाता है कि सभ्य सुसंस्कृत माता-पिताओं से उत्पन्न बच्चे यदि बुरी संगत में पड़ जाते हैं तो उनमें अपने माता-पिताओं के वह गुण नहीं आते। मनोवैज्ञानिकों में इन दोनों बातों को ले कर आपस में काफी विरोध भी रहा है। गैल्टन, गाडर्ड, डगडेल और वाईजमैन इत्यादि पाश्चात्य विद्वान वंशानुक्रम के महत्व के समर्थक रहे हैं और हेल्वासियस तथा लॉक इत्यादि ने परिस्थितियों के प्रभाव की महत्ता का प्रतिपादन किया है। लॉक का कथन है—"मनुष्य का मन एक स्वच्छ काले तख्ते के समान है जिस पर बिना लिखे कोई संस्कार अंकित नहीं होता। जिस प्रकार काले तख्ते पर लिखे जाने के कारण अनेक प्रकार के संस्कार अंकित हो जाते हैं। इसी प्रकार हमारे स्वच्छ मन पर वातावरण, जीवन अनुभवों के कारण अनेक संस्कार पड़ते हैं।" भारतवर्ष में पूर्व जन्म के संस्कार और इस जन्म के कर्मों के फलस्वरूप अगला जन्म होने के विषय में अनेक धारणायें और विश्वास बहुत जोरों से फैले हुए हैं किन्तु वैज्ञानिक सत्य यही है कि प्रत्येक बालक अपने माता-पिता से केवल अपना भौतिक शरीर पाता है। शरीर के विभिन्न अंगों की शक्तियाँ या दुर्बलतायें कुछ अंशों में वंशानुक्रमगत कही जा सकती है क्योंकि जन्म के बाद से तुरन्त ही वह उनका विकास या ह्रास अपनी परिस्थितियों के प्रभाव से करना प्रारम्भ कर देता है। उसके मन और बुद्धि की सारी विशेषतायें उसमें परिस्थितियों और वातावरण के प्रभाव से ही आती हैं। माता-पिता जिन्होंने उसे जन्म दिया होता है और जिनके गुण वह अपनाता या ठुकराता है वह भी उसके लिये उन परिस्थितियों का ही काम करते हैं जिनमें उसका विकास होता है। बालक अपने व्यक्तित्व का विकास करने के उद्देश्य से अपनी परिस्थिति से प्रतिक्षण किये जाने वाले संघर्ष और सामञ्जस्य के प्रभाव से निर्मित होता है।

बालक आयु में ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है उसके स्वभाव में परिस्थितियों और वातावरण के प्रभाव का स्वरूप और भी निखरता जाता है। कभी उसमें हमें विद्रोह और संघर्ष

के वर्णन होते हैं और कभी सामञ्जस्य के। इन्हीं दोनों के बीच उसके राग द्वेष, इर्ष्या, सुख-दुःख इत्यादि के भाव सुस्थिर होते जाते हैं। बाल स्वभाव का अध्ययन करने के लिये आयु की दृष्टि से उसके मनोविकास की अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टैनले हाल का कथन है कि बालकों के मनोविकास का क्रम मानव जाति के विकास क्रम की तरह ही होता है। जिस प्रकार मनुष्य जाति अपनी प्राकृतिक और बर्बर अवस्थाओं से निकल कर सभ्यता की ऊँची मंजिल तक आ पहुँची है उसी प्रकार बालक अपने जीवन में धीरे-धीरे प्राकृतिक आदि सारी अवस्थाओं को पार करके सभ्यता के उच्च शिखर तक पहुँच जाता है। इसी सम्बन्ध में हरबर्टस्पेन्सर का कहना है—The education of the child must accord both in mode and arrangement with the education of the man kind considered historically. In other words the genesis of knowledge in the individual must follow the same course as the genesis of knowledge in the race. बच्चे की शिक्षा अपनी प्रणाली और व्यवस्था में ऐतिहासिक दृष्टि से मनुष्य जाति की शिक्षा के अनुसार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में व्यक्ति के ज्ञान का बीज जाति के ज्ञान के बीज की तरह ही विकसित होना चाहिए। इसी सिद्धान्त के अनुसार बानल्यू ने मनोविकास की पाँच अवस्थाएँ बताई हैं : १. शिकारियों का जीवन, २. बंजारों का जीवन, ३. खेती बारी का जीवन, ४. छोटे व्यापार और दस्तकारी का जीवन, ५. बड़े व्यापार, बड़े नगरों और कल कारखानों का जीवन। उसके अनुसार मनुष्य का मन अपने विकास के क्रम में इन्हीं पाँच अवस्थाओं से गुजरता है।

मनोविश्लेषण विज्ञान के विशेषज्ञ अर्नेस्ट जोन्स ने बालक के मनोविकास की अवस्थाओं का क्रम प्रेम अथवा काम प्रवृत्ति के आधार पर निश्चित किया है। उनके अनुसार काम प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति की चार अवस्थाएँ होती हैं। पहिली अवस्था में बालक स्वयं अपने ऊपर ही मोहित होता है इसे नारसिसिजम (Narcisism) कहते हैं। इस अवस्था में बालक अपने आप में ही मगन रहता है। उसके खेल वैयक्तिक होते हैं। दूसरी अवस्था में उसका प्रेम अपने माता-पिता की ओर उन्मुख होता है। वह अपने प्रेमपात्र पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लेना चाहता है। अगर कोई दूसरा व्यक्ति उसके बीच में आता है तो उसके हृदय में ईर्ष्या के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। इस अवस्था में बालक प्रायः अपने समवयस्क छोटे या बड़े भाई बहिन से भी ईर्ष्या करता है। डम्बिल ने अपनी मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्त नामक पुस्तक में उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि परिवार का बालक नये बालक के जन्म से प्रसन्न नहीं होता। उसे अनेक प्रकार की मानसिक वेदनायें होने लगती हैं। तीसरी अवस्था में बालक अपनी ही अवस्था वाले बालकों से प्रेम करता है और अपने साथ खेलने वाले साथी के लिए कष्ट उठाने को तैयार रहता है। जिन बालकों को इस अवस्था में साथी नहीं मिल पाते वह काल्पनिक साथी बना कर उसके साथ रहने का आनन्द लिया करते हैं। इसी अवस्था में बालक के चरित्र का विकास हुआ करता है और जीवनादर्श के प्रति आकर्षण का प्रारम्भ भी हो जाता है। चौथी अवस्था में वह बालक नहीं रह जाता क्योंकि उसका आकर्षण प्रधान रूप से 'विजातीय' बालकों

के प्रति होने लगता है। लड़का लड़कियों और लड़की लड़कों की ओर आकर्षित होने लगती है।

रेवेरेन्ड जी० एच० डिक्स ने अपनी Child study (चाइल्ड स्टडी) पुस्तक में बालक की आयु को मनोविकास के क्रम से पाँच भागों में बाँटा है।

१. शिशु काल—यह तीसरे-चौथे वर्ष की आयु तक रहता है।
२. बचपन—आठवीं या नवीं वर्ष की आयु तक।
३. पूर्व किशोर अवस्था—११ या १२ वर्ष की अवस्था तक।
४. उत्तर किशोर अवस्था—१४ वर्ष की अवस्था तक।
५. कुमार अवस्था—बीस वर्ष की आयु तक।

डिक्स महोदय ने यह भी स्वीकार किया है कि इन अवस्थाओं के बीच कोई अमिट रेखायें नहीं हैं। बालक विशेष परिस्थितियों में इन रेखाओं का अतिक्रमण करते हुए भी पाये जाते हैं और एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचने पर एक संक्रान्ति काल तो प्रत्येक बालक की स्थिति में रहता ही है।

मनोविज्ञान के अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से डम्बिल ने बचपन को विकास की चार अवस्थाओं में विभाजित किया है :

पहिली अवस्था ढाई वर्ष की आयु से ६, ७ वर्ष की आयु तक—इस समय में बालक का ध्यान शारीरिक चेष्टाओं और क्रियाओं की ओर सबसे अधिक रहता है। वह ऐसे खेल खेलना पसन्द करता है जो एकान्त में ही सुख देने वाले होते हैं। किसी से स्पर्धा करने की भावना भी उसमें नहीं होती। इसी अवस्था के अन्तर्गत ५ वर्ष की आयु में बच्चे की मानसिक स्थिति का उल्लेख करते हुए नार्सवर्दी और हिव्टले ने कहा है—

Five years old love to jump, roll, slide, dig, climb, run, pound, throw, lift and use their whole bodies in large movements; but there is no desire to run fast, to throw hard, to jump high nor to excel the next child in these activities.

पाँच वर्ष के बच्चे कूदना, लुढ़कना, फिसलना, खोदना, चढ़ना, दौड़ना, घेरना, फेंकना, उठाना तथा अपने सारे शरीर को जोर से हिलाना पसन्द करते हैं किन्तु उनमें तेज दौड़ने, जोर से फेंकने, ऊँचा कूदने या इन बातों में दूसरे बच्चों से आगे निकलने की इच्छा नहीं होती। इस अवस्था में बालक की कल्पना शक्ति बहुत सजीव और प्रत्यक्ष ज्ञान बहुत स्पष्ट होता है। वह डंडे को अपने पैरों के बीच दबा कर यह अनुभव कर सकता है कि वह घोड़े पर सवार है। अनुकरण की प्रवृत्ति भी उसमें होती है। वह खेल खेल में अपने बड़ों की तरह अनुकरण करने लगता है। लड़कियाँ गुड़ियों के खेल में अपनी माता, चाची, ताई इत्यादि के कामों का अनुकरण करती हैं। वस्तुओं और घटनाओं के विषय में क्यों, कहाँ, कैसे ? इत्यादि प्रश्न उठाकर जानने की जिज्ञासा भावना ही उनमें बहुत प्रबल होती है नार्स वर्दी और हिव्टले ने इस तथ्य की ओर इस प्रकार संकेत किया है—

Though the previous year (4th year) may be more truely termed the age of questions, the tendency has lost but little of its strength and

as every parent desirous of living upto his responsibilities knows, even the latest encyclopedia and the child's book of knowledge combined some times fail to provide the necessary, satisfying answers. यद्यपि पिछली (चौथी) वर्ष को प्रश्नों की आयु कहा जा सकता है। पर इस वर्ष में भी यह प्रवृत्ति कम नहीं होती और जो माता-पिता अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हैं वह जानते हैं कि इस वर्ष में आधुनिकतम विश्व कोष का सारा ज्ञान और ज्ञान ग्रन्थ मिलकर भी उसकी जिज्ञासा को शान्त नहीं कर सकते।

दूसरी अवस्था ६, ७ वर्ष की अवस्था से ९ वर्ष की अवस्था तक होती है। इसमें बालक में ध्यान जमाने की शक्ति बढ़ जाती है। वह किसी कार्य में दक्षता पाने की ओर भी लालायित होता है। उसके विचारों का क्षेत्र भी पहिले से अधिक विस्तृत हो जाता है, वह दूसरे देशों के लोगों के बारे में जानने और महापुरुषों की जीवनियों को पढ़ने या सुनने में भी मन लगाता है। खेल में स्पर्द्धा की भावना भी प्रारम्भ होती है और वह अपने समवयस्क साथियों के बीच में भी सुख अनुभव करता है।

तीसरी अवस्था ११ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक रहती है। इस अवस्था में समाज में रहने की इच्छा बलवती हो जाती है। स्पर्द्धा की भावना भी एकान्त नहीं वरन् एक दल का आधार लेकर व्यक्त होने लगती है। उपर्युक्त नार्स वर्दी और ह्विटले ने इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा है--The kind of play enjoyed at 11 years old is almost never solitary but has a strong social characteristic. It is usually in the form of a game rather than a free play, with definite rules, a purpose, a beginning and an end. ११ वर्ष की आयु का बच्चा जो खेल पसन्द करता है वह कभी अकेले नहीं होता। उसमें मिल-जुल कर खेलने की तीव्र प्रवृत्ति होती है। इस आयु का खेल स्वतन्त्र खेल नहीं एक नियमबद्ध खेल होता है जिसमें निश्चित नियम, उद्देश्य आदि और अन्त होते हैं और कभी-कभी अप्राकृतिक दबाव के कारण विद्रोह और क्रान्ति की भावना भी मन में उठने लगती है। बालक में अपनत्व का भाव भी बढ़ता है और वह पत्थर, तसवीरें और टिकट इत्यादि इकट्ठे करने लगता है। उसे अपनी बुद्धि का प्रयोग करके कोई काम करने में आनन्द आता है। इसीलिये इस आयु के बालक पहेलियाँ बुझाने में आनन्द लेने लगते हैं। उनकी अनुकरण की प्रवृत्ति भी एक नया रूप धारण करने लगती है। वह अपने परिवार के परिचित और देखे-सुने लोगों का ही अनुकरण नहीं करते बल्कि दूर के कुछ विशेष व्यक्तियों की बातों का अनुकरण करने लगते हैं। बालकों की रुचि वीरता और साहसपूर्ण गाथाओं और रहस्यपूर्ण कहानियों में बढ़ती है। वह इतिहास भूगोल की बातों का ज्ञान भी प्राप्त करने लगते हैं। भाषा के नये-नये शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा भी उनमें जागृत होती है। उनकी स्मरण शक्ति भी बढ़ जाती है और वह एक ही विषय पर कुछ देर तक ध्यान जमा कर सोचने भी लगते हैं।

चौथी अवस्था चौदह वर्ष के बाद प्रारम्भ होती है। उसका सम्बन्ध बालगीत साहित्य

से बिल्कुल नहीं है इसलिये उस पर विचार करके हम विषय को विस्तार देना अनावश्यक समझते हैं।

बालक की मानसिक विकास की अवस्थाओं का यह वर्गीकरण मोटे तौर पर ही किया गया है। इससे अध्ययन करने वालों को कुछ उपयोगी संकेत सुझाव ही मिल सकते हैं। विदेशों में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने बच्चों के स्वभाव का अध्ययन करके उनके स्वभाव में ६-६ महीने और साल-साल भर का अध्ययन करके उनकी प्रवृत्तियों, रुचियों, भावनाओं और कल्पनाओं में ऐसे सूक्ष्म अन्तरों का पता लगाया है कि उपर्युक्त कई-कई वर्षों को एक साथ लिये हुए अध्ययन के परिणाम अब इतने महत्वपूर्ण नहीं रह गये हैं। उनके अध्ययन के आधार पर १८ महीने से ढाई वर्ष तक, साढ़े तीन से पाँच और साढ़े ६ से ९, ९ से १२ और १२ से १४ वर्ष तक की अवस्थाओं का अलग-अलग अध्ययन करके हम कुछ निश्चित रूप से सही परिणामों पर पहुँच सकते हैं। फिर भी आयु के अनुसार किये हुए किसी विभाजन को पत्थर की लकीर समझ कर स्वीकार नहीं किया जा सकता। बच्चों का स्वास्थ्य, माता-पिता और अपनी मनोभावनाओं को विकसित करने की अपनी सुविधाओं के कारण एक ही वातावरण और परिस्थितियों में रहने वाले एक ही आयु के बालक सदा एक ही तरह का स्वभाव रखने वाले नहीं मिलते। स्वभाव एक व्यक्तिगत तत्व है और उसे प्रत्येक बालक के अलग-अलग अध्ययन के आधार पर ही ठीक-ठीक समझा जा सकता है। फिर भी मोटे तौर से इन उपर्युक्त प्रकार के अध्ययनों के आधार पर बड़े लोग बहुत से ऐसे तथ्य प्राप्त कर सकते हैं जिनका उपयोग बच्चों के लिये साहित्य की रचना में किया जा सकता है।

उपर्युक्त अवस्थाओं के अनुसार मनोविकास के अध्ययन के आधार पर कुछ तथ्य हमें ऐसे प्राप्त होते हैं जिन पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। प्रत्येक प्राणी की भाँति बालकों में भी सुख-दुःख की मूल भावनायें जन्म से ही विद्यमान होती हैं। अपने अनुकूल परिस्थितियों में वह प्रसन्न रहता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में रोता है। अनुकूल परिस्थितियाँ उनको कहते हैं जिनमें वह कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट का अनुभव नहीं करता। यों तो बालक को प्रारम्भ से सभी कुछ अपने प्रतिकूल दिखाई देता है। वह अपने माता-पिता को भी अपना नहीं समझता। बचपन की इस अवस्था में ही मानव समाज में सच्चे साम्यवाद के दर्शन होते हैं। इस छोटी अवस्था में भी बच्चे में दो मनोवेग बहुत प्रबल होते हैं--एक क्रोध का और दूसरा भय का। बच्चे को प्रतिकूल परिस्थिति में क्रोध आता है इसी प्रकार भय की भावना भी प्रतिकूल परिस्थितियों से ही उत्पन्न होती है। किन्तु बच्चे को यदि बचपन से ही अधिक सुरक्षित रख कर उसके मनोवेगों को व्यक्त होने का अवसर ही नहीं दिया जाता तो वह ऐसी मानसिक दुर्बलता का शिकार हो जाता है जिससे बाद के जीवन में यह मनोवेग और भी भयंकर और उग्र होकर सताते रहते हैं। इसलिये बच्चे की, सुरक्षा और देख-भाल उतनी ही करना आवश्यक होती है जितनी उसके स्वाभाविक विकास के पथ में बाधक न हो।

बच्चों का प्रत्यक्ष ज्ञान भी प्रारम्भ में नहीं के बराबर होता है। अंग्रेजी के एक लेखक जेम्स ने प्रारम्भिक अवस्था में बालमन की व्याख्या करते हुए उसे a great blooming buzzing confusion (एक बहुत तेजी से उठकर गूँजती हुई गड़बड़झाला) कहा है। कल्पना, पूर्वानुभव और विवेचना शक्ति के अभाव में वह प्रत्यक्ष ज्ञान भी पहले अपने संवेगों के प्रकाश में प्राप्त करता है। अँधेरे कमरे में लटके हुए ओवरकोट को वह भूत समझ कर उससे डरने लगता है। पर वही ओवरकोट वह जब अपने पिता को पहिने हुए देखता है तो उसके मन का भय निकल जाता है। धीरे-धीरे वह अपने घर के अन्दर अपने आस-पास की वस्तुओं तथा माता-पिता आदि सगे सम्बन्धियों का ज्ञान प्राप्त करता है। वह ज्ञान भी पहिले स्थूल पदार्थों तक ही सीमित होता है। उदाहरण के लिये परियों की कहानी में वह परी की जो कल्पना करता है वह उसकी अपनी माता, बहिन या दूसरी देखी हुई स्त्री की तरह ही होती है। जो लोग बच्चों के प्रत्यक्ष ज्ञान की सीमाओं और उनके परिचित स्थूल पदार्थों की महत्ता को नहीं समझते वह उनसे ठीक से बात भी नहीं कर सकते। उनके लिये उपयुक्त साहित्य लिख कर दे सकना तो बहुत दूर की बात है।

बच्चों का मन बहुत चंचल होता है। वह किसी भी विषय पर थोड़ी भी देर के लिये अपने मन को एकाग्र नहीं कर सकते। उनमें कौतूहल और जिज्ञासा की प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि नई-नई वस्तुओं को देखने, पूछने, समझने की इच्छा सदैव होती रहती है। चटकीली चमकदार और रंग-विरंगी वस्तुओं की ओर वह अधिक आकर्षित होते हैं। गीत भी उनके ध्यान को अधिक आकर्षित करती है। अपने मकान या कक्षा के सामने वाली सड़क पर तेजी से दौड़ कर जाने वाली बस को वह उत्सुकतापूर्वक बिना देखे रह नहीं सकते। शिक्षा और उनके उपयुक्त साहित्य की ओर उनकी रुचि को मोड़ कर उन्हें एकाग्र चित्त होना सिखाया जा सकता है पर यह शिक्षा उन्हें इस प्रकार से देना चाहिये कि उन्हें रुचि के मुड़ने में कोई कष्ट न हो क्योंकि ऐसा होने से उनके मानसिक विकास की स्वाभाविक गति मन्द हो जाती है। बालकों के विषय में एक यह भी महान सत्य है कि बालक जिस वस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है उसे बहुत बारीकी से देखता है। प्रौढ़ और बालक के ध्यान में एक अन्तर यह भी है कि प्रौढ़ एक साथ कई विषयों की ओर अपने ध्यान को केन्द्रित रख सकता है; पर बालक एक समय में एक ही विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित रख सकता है। इसलिये जिन बालगीतों में बच्चों के स्वभाव की इन विशेषताओं का ध्यान रखा जाता है वह ही बच्चों को अधिक प्रिय होते हैं।

प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा बच्चों में कल्पना शक्ति कई गुना अधिक होती है। वस्तुओं के सम्पूर्ण विकसित ज्ञान के कारण बड़ों को कल्पना करने के लिये कम गुंजायश होती है। पर बच्चे अल्प ज्ञान की कमी को कल्पना के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न करते हैं इसीलिये आकाश में बादलों को देखकर वह उनमें हाथी, घोड़े, मकान ही नहीं दो लड़ते हुए बच्चों और चार भागते हुए हाथियों तक की कल्पना कर लिया करते हैं। जो बालक अकेला रहता है वह प्रायः अपने खिलौनों को ही विभिन्न काल्पनिक साथियों के नामों से पुकारने लगता है और उनमें से किसी को तनिक भी क्षति पहुँचाने पर उसी प्रकार

कष्ट का अनुभव करता है जिस प्रकार कोई बड़ा व्यक्ति अपने सच्चे साथी की क्षति पर कष्ट का अनुभव करता है। बड़ों की अपेक्षा बच्चों में अधिक कल्पना-शक्ति होने का एक कारण यह भी है कि बड़े तर्क और विवेक-बुद्धि के कारण अपनी जिज्ञासा वृत्ति को तुरन्त शान्त कर देने की क्षमता रखते हैं। किन्तु बच्चों के पास वह तर्क और विवेक-बुद्धि नहीं होती। इसलिए वह अपने मन के कौतूहल जिज्ञासा को शान्त करने के लिए भी कल्पना से ही काम ले लिया करते हैं। अत्यधिक कल्पना प्रधान होने के कारण ही बालकों को काल्पनिक कथा कहानियाँ अधिक प्रिय होती हैं। परी या देवों की जिन कहानियों को पढ़ कर बड़े हँस देते हैं उनमें बच्चे अत्यन्त गंभीरतापूर्वक रस लेते हैं। कल्पना-शक्ति के अधिक तीव्र होने के कारण ही वह कहानियों में मेढक, बिल्ली, बन्दर आदि तक को मनुष्यों की तरह बात-चीत और व्यवहार करने वाला समझ लेते हैं। हमारे देश के प्राचीन विद्वान बालकों के स्वभाव की इस विशेषता से भली-भाँति परिचित थे इसीलिये हमें पंचतन्त्र आदि पुस्तकों में पशुओं की कहानियाँ बहुतायत से मिलती हैं। बालगीतों को लिखने में भी बच्चों की इस कल्पना-शक्ति से विशेष लाभ उठाया जाता है। सुप्रसिद्ध शिक्षा विशेषज्ञ मैडम मान्टसरी ने बच्चों को कल्पना प्रधान साहित्य पढ़ने को देने का विरोध किया है उनका कहना है—"बालक काल्पनिक कथाओं के पढ़ने से बड़े होकर भी कल्पना में ही उड़ते रहने की टेव वाले हो जाते हैं। संसार के पदार्थों को देख कर उसका सामना डट कर करने के बजाय वह पलायन भाव धारण कर लेते हैं और इसके फलस्वरूप एक प्रकार की भीरुता का भाव सदा के लिये उनके हृदय में घर कर लेता है।" पर समुचित कल्पना-शक्ति हुए बिना कोई बालक बड़ा होकर सफल वैज्ञानिक, डाक्टर या इन्जीनियर भी नहीं बन सकता। बच्चों की कल्पना-शक्ति को यदि अपने विकास के समय में उचित दिशाओं में उन्मुख रहने दिया जाये तो उनका मानसिक संतुलन सदा बना रहता है। अभिनय और बालगीतों से इस कार्य में बहुत सहायता ली जा सकती है। बच्चों की मनोकूल कल्पनाओं के आधार पर लिखे गये बालगीत अगर उन्हें पढ़ने को मिलते रहें तो वह मन से बहुत सबल सशक्त बन सकते हैं।

बच्चे अपने बालगीतों को पढ़ सुनकर यदि उन्हें समझ सकें और वह उनकी रुचि के अनुकूल हों तो उनमें अपने आप पर्याप्त आनन्द ले सकते हैं। पर जो बड़े बालगीतों का अध्ययन करना चाहें उन्हें बाल-स्वभाव के विषय में जानकारी रखने की बहुत आवश्यकता होती है। इस जानकारी के बिना बालगीत भी उन्हें उतने ही निरर्थक, नीरस और सारहीन लगेंगे जैसे बच्चों को बड़ों के लिये लिखित बड़ी-बड़ी गम्भीर और कठिन शब्दों से युक्त रचनायें लगा करती हैं और बाल स्वभाव के अध्ययन के बिना तो बालगीत लिखना सर्वथा असम्भव ही है।

———

२ : बड़ों और बच्चों की कविता

कविता, चित्र कला और संगीत का जीवन से बहुत गहरा और अटूट सम्बन्ध है। जीवन व्यक्ति का हो या समाज का, इन साधनों के बिना अभिव्यक्ति नहीं पा सकता। कला और जीवन की तरह ही व्यक्ति और समाज के जीवन का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो मनुष्य सामाजिक मान्यताओं और मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करने की प्रवृत्ति रखते हैं उन्हें भी उनका ध्यान रखना पड़ता है। सामाजिक वातावरण का प्रभाव ज्ञात या अज्ञात रूप में उसकी अभिव्यक्ति पर पड़ता है। मनुष्य जो कुछ प्रत्यक्ष देखता है उसे कविता में शब्दों और कला में तूलिका द्वारा चित्रित कर देता है। और जो भाव उसके मन में अभिव्यक्ति पाने के लिये बेचैन होकर उमड़ते हैं उन्हें वह कविता या संगीत के माध्यम से स्वर शब्दों में व्यक्त कर सन्तोष का अनुभव करता है। संगीत और कविता दोनों ही मुख से उच्चारित हो कर व्यक्त होते हैं। और कानों से सुने जाकर दूसरे के मन को द्रवित या प्रभावित करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में गीत भी कविता के ही अंग माने जाते हैं। गीत उस कविता का ही दूसरा नाम है जो संगीत के स्वरों में गति लय स्वर के साथ गाई जा सके। पर प्रत्येक गाई जा सकने वाली कविता को भी गीत नहीं कहा जा सकता। गीत में मनुष्य के अपने निजी सुख-दुख की अनुभूति व्यक्त होती है और कविता में वह सब के सुख-दुख को व्यक्त कर सकता है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियत्री महादेवी वर्मा ने गीत की परिभाषा इस प्रकार की है--'गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुखदायक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।' गीत काव्य विषय प्रधान नहीं विषयी प्रधान होता है। उसमें कवि की व्यक्तिगत अनुभूति ही अत्याभिव्यक्ति का विषय बन जाती है। उसमें जितना भावों का उद्वेग होता है उतना विचारों का नहीं। दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विचारों की ऊहापोह गीत के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है।

कविता का भाव क्षेत्र बहुत व्यापक और निस्सीम है। संसार में मनुष्य जो कुछ देख सुनं, सोच-समझ या कल्पना कर सकते हैं वह सब उनकी कविता का विषय हो सकता है। आज तक संसार में जो कुछ भी देखा सुना या समझा गया है उस सभी को कविता के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। और आगे जहाँ तक मनुष्य की कल्पना जा सकती है वह सब उसके भाव क्षेत्र में समा सकता है। सारे सामाजिक सम्बन्ध मान्यतायें मर्यादायें आदर्श धर्म सिद्धान्त आर्थिक तथा राजनैतिक मूल्यों और प्रकृत जगत के नाना रूपों तथा उनके क्रिया कलापों को काव्य जगत की सीमा में समाया जा सकता है। पर गीतों की परिधि इतनी व्यापक तथा विस्तृत नहीं होती। गीत में कवि के अन्तर्जगत का चित्रण ही सम्भव हो सकता है। जिन भावों का कवि ने कभी स्वयं अनुभव नहीं किया है उन्हें वह गीत के रूप में व्यक्त कर ही नहीं सकता। गीत की रचना करने के लिये सबसे

आवश्यक और पहली शर्त यह है कि स्वयं कवि के हृदय में एक दर्द टीस, सिहरन, पुलकन ऐसी हो जिससे बिना गीत गाये उससे रहा ही न जा सके। गीत मन की एक विशेष स्थिति में अपने आप ध्वनित होते हैं। प्रयत्न से एक-एक शब्द जोड़ कर रखने और उन्हें अलंकारों का परिधान पहनाने से गीत नहीं लिखा जा सकता। गीत सामाजिक नियम और मर्यादा के बन्धन भी स्वीकार नहीं करते। जो छटपटाहट, बेचैनी या प्रफुल्लता कवि के मन में होती है वह सारे विचार पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो कर व्यक्त हो जाना चाहती है। मीरा यदि लोक लाज कुल मर्यादा का ध्यान रखती तो भक्ति में वैसी तन्मय होकर मधुर गीत नहीं गा सकती थी। कबीर, तुलसी दास और सूर के जिन गीतों में उनके सिद्धान्त दार्शनिक विचार इत्यादि की पुट जितनी कम है वह उतने ही मधुर हैं। गीत में कवि की अन्तरात्मा के स्वर झंकृत होते हैं। उनमें वर्ण्य विषय और कवि की भावना का ऐसा तादात्म्य हो जाता है कि दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। रचना की दृष्टि से गीत लिखना कविता लिखने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन साधना का काम है। कम प्रतिभा और अधिक अभ्यास के बल पर कविता लिख कर महाकवि बना जा सकता है। हिन्दी के केशवदास आदि अनेक रीतिकालीन कवि इसके उदाहरण हैं। पर अपने सुख-दुख के अनुभवों और विशेष प्रतिभा के बिना गीत नहीं लिखे जा सकते।

कविता की अनेक परिभाषायें पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने की हैं। अंग्रेजी के कवि वर्डसवर्थ ने उसे Sponteneous overflow of Powerful feelings अर्थात् तीव्र मनोभावों का अनायास उफान कहा है। कालरिज का कहना है कि कविता एक Musical thought (संगीतमय भाव) है। शैली का कथन है कि Poetry is the very image of life expressed in its eternal truth अर्थात् कविता शाश्वत सत्य में ढाल कर व्यक्त किया हुआ जीवन का प्रतिरूप ही है। वाल्टेयर ने कविता को Music of soul (आत्मा का संगीत) कहा है। पर भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही जितनी सूक्ष्म व्याख्या कविता के विषय में की गई उतनी शायद ही किसी दूसरे देश के साहित्य में मिलती हो। संस्कृत के आचार्य अत्यन्त प्राचीन काल से कविता की व्याख्या करते आये हैं। किसी ने रीति को कविता की आत्मा माना है। किसी ने वक्रोक्ति को और किसी ने अलंकार को। आचार्य मम्मट ने रस को काव्य की आत्मा माना है। उनका मत है 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है और हिन्दी में आज तक यही सर्वमान्य मत रहा है। रस की परिभाषा इस प्रकार की गई है—"रस्यते स्वाद्यते अनेन सः रसः" अर्थात् जिससे स्वाद या आनन्द प्राप्त हो सके वही रस है। स्वाद या आनन्द यहाँ लौकिक अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुये हैं। आनन्द किसी वस्तु के वास्तविक उपभोग से भी प्राप्त हो सकता है। पर कविता में रस से प्राप्त होने वाले आनन्द का तात्पर्य उस आनन्द से है जो किसी भी वस्तु के रोचक या आनन्दप्रद वर्णन से प्राप्त होता है। यह आनन्द वस्तु के अभाव में भी प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिये जब हम किसी सुन्दर स्त्री के सौंदर्य का वर्णन करने वाली कविता पढ़ते और सुनते हैं तो वह नारी प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने नहीं होती। उसे न हम देख सकते हैं न उसके सामीप्य के सुख का अनुभव कर सकते हैं। फिर

भी उस वर्णन से हमें आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द अपार्थिव और अलौकिक होता है इसीलिये इस आनन्द की तुलना आचार्यों ने 'ब्रह्मानन्द' से की है और काव्य के रस से प्राप्त होने वाले आनन्द को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है। नाट्य शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भरत मुनि ने रस निष्पत्ति के विषय में इस प्रकार लिखा है—'विभावानुभाव संचारि योगाः' रस निष्पत्ति अर्थात् विभाव अनुभव और संचारि के योग से रस का सृजन होता है। उनके आधार पर शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त और वात्सल्य दस रस माने जाते हैं। यों तो यह सभी रस बालगीतों या बच्चों की कविता में भी हो सकते हैं पर वात्सल्य रस से बालगीतों का विशेष सम्बन्ध है। छोटे बच्चों के प्रति प्रेम होने से इस रस का आविर्भाव होता है। बालगीतों के रस और वात्सल्य में क्या अन्तर है इसे हम आगे चल कर यथास्थान स्पष्ट करेंगे। यहाँ रस परिपाक की प्रक्रिया पर भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। कवि जब कविता लिखता है तो उसके मन में कुछ विशेष भावों का उद्वेग होता है वह अपने चारों ओर के वातावरण को भूल कर वर्ण्य विषय से ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि उसे उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु का कोई अनुभव उस समय नहीं होता। वह यह भी नहीं सोचता कि किस दूसरे व्यक्ति के लिये वह काव्य रचना कर रहा है। उस समय उसकी स्थिति एक ऐसे मनुष्य की-सी होती है जो भावनाओं में इतना खोया हुआ हो कि पागल दिखाई दे। मिल्टन ने इसी लिये प्रेमी, पागल और कवि को एक ही श्रेणी में रखते हुए कहा—The lover, the lunatic and the Poet are Imagination all compact. कवि उस समय मन की एक ऐसी स्थिति में होता है जैसा वह चाहता है वैसा ही बन जाता है। मजदूर होते हुए भी वह महलों के स्वप्न देख सकता है। अपनी ऐसे ही समय की मनोभावनाओं को वह शब्द शक्ति के द्वारा व्यक्त करके सब के लिये सुलभ बना देता है। सहृदय पाठक या श्रोता उसे पढ़-सुन कर द्रवित होते हैं और उनके भी मन में वैसी ही भावनायें उठने लगती हैं। साधारणीकरण की इसी प्रक्रिया में जो व्यक्ति अपनी भावनाओं के साथ जितना तादात्म्य कर सकता है उतना ही सरस काव्य वह लिख सकता है। उसकी अपनी चिन्ता या विचार शक्ति ही उसके इस कार्य में बाधक होती है। वह तर्क या विवेक बुद्धि से बच कर भावनाओं में जितनी गहराई से डूब सकेगा उतनी ही दूसरे को प्रभावित करने की शक्ति उसकी रचना में आ सकेगी। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि एजरा पांड ने इसी बात को इस प्रकार से कहा है Poetry is not greatly concerned with what a man thinks, but what is so embedded in his nature that it never occurs to him to question it, not a matter of which idea he holds but of the depth at which he holds it. अर्थात् कविता का बहुत अधिक सम्बन्ध मनुष्य क्या सोचता है इससे नहीं है बल्कि उसका सम्बन्ध उस प्राकृतिक स्वभाव से है जिससे उसे यह आभास ही नहीं होता कि उसके विषय में कोई प्रश्न कर सके। उस यथार्थ से उसका उतना सम्बन्ध नहीं होता जिसका भाव उसके मन में आता है जितना इस बात से कि कितनी गहराई से वह उस भाव में उतर कर उसे अपना सका है।

साधारणीकरण की जिस स्थिति का उल्लेख ऊपर किया गया है उसकी व्याख्या मनोवैज्ञानिक आधार पर भी की जा सकती है। मनुष्य के मस्तिष्क में यह शक्ति है कि वह अपने मन की सब प्रवृत्तियों को किसी एक विषय पर इस प्रकार केन्द्रित कर ले कि किसी भी दूसरी वस्तु या विषय का भाव उसके मन में आ ही न सके। महामुनि पतंजलि के अनुसार यही योग है जिसे उन्होंने 'योगः चित्त वृत्ति निरोधः' कहा है। अभ्यास से मनुष्य ध्यानावस्थित हो कर एकाग्र चित्त हो सकता है। इस अवस्था में जब अपने-पराये का कोई भाव उसके मन में नहीं रहता तब वह कोई विशिष्ट व्यक्ति न हो कर एक साधारण मनुष्य की स्थिति में पहुँच जाता है। दर्शन शास्त्र में इसे ही ब्रह्म में लीन होना कहते हैं। पर आधुनिक काल में बहुत से विद्वान लेखक काव्य में रस परिपाक की महत्ता को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि काव्य की परख रस सिद्धान्त के आधार पर नहीं की जा सकती। विभाव, अनुभाव और संचारी आदि की व्याख्याओं पर सिर खपाने से कोई लाभ नहीं। आधुनिक कविता का रूप ही अब ऐसा हो गया है कि कविता की पुरानी व्याख्यायें और सिद्धान्त उस पर लागू नहीं होते। आधुनिक कवि मन पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न क्षणिक उद्वेगों को प्रतीकों के प्रयोग से व्यक्त करते हैं। उनके लिये यह आवश्यक नहीं कि वह किसी विषय का सांगोपांग वर्णन ही करें। वह यह समझते हैं कि बड़े से बड़े दृश्य का संश्लिष्ट चित्रण वह एक लघु प्रतीक के द्वारा कर सकते हैं। उनकी समझ में कादम्बरी के लम्बे-लम्बे वर्णनों की कला अब समय की दौड़ में इतनी जीर्ण जर्जर हो चुकी है कि उसे सीने से लगाये रहने में कोई सुख नहीं। उन्हें पढ़ने का अब न तो किसी को अवकाश है और न कोई विकसित रुचि का व्यक्ति उन्हें पढ़ने का धैर्य ही ला सकता है। जहाँ संकेत के रूप में एक दो शब्द कह देने से ही काम चल सकता है वहाँ बात को विस्तार दे कर अपना और दूसरों का समय नष्ट करना मूर्खता नहीं तो और क्या है। कहावत प्रसिद्ध है कि बुद्धिमान के लिये संकेत पर्याप्त होता है। पर स्वयं अपनी भी समझ में न आ सकने वाली सांकेतिक भाषा का प्रयोग करके लोगों को व्यर्थ की भूल-भुलइयाँ में डाल कर मूर्ख बनाना ही यदि कविता है तो उसका उदाहरण देखिये:—

टप—— ——टप—— ——टप
—— —— —— —— ——
—— —— —— —— ——
टप टप————टप टप————टप टप
—— —— —— —— ——
—— —— —— —— ——

बस टप

इस कविता के भाव को समझ लेना किसी भी साधारण पाठक के वश की बात नहीं है। पर कोई भावुक और कलाप्रेमी इसका यह अर्थ भी लगा सकता है कि एक दुर्बल मजदूर बोझ से लदा हुआ आगे चलने का प्रयत्न कर रहा है कमजोर होने के कारण उसे पैदल चलने में काफी जोर लगाना पड़ रहा है। इसलिये सारे शरीर से पसीने की बूँदें चू रही

है। टप-टप उन्हीं बून्दों के धरती पर गिरने का शब्द है। टप-टप शब्द जिस क्रम से उपर्युक्त कविता में दिये हुए हैं उन्हें पढ़ने से ऐसा लगता है कि पहली बार जोर लगाने से दो बून्दें टप-टप पृथ्वी पर गिरीं। फिर जोर लगाते रहने से टप टप टप टप बराबर गिरती रही। और श्रम करते-करते अन्त में जब वह गिर कर मर गया तो कविता भी 'बस टप' कह कर वहीं समाप्त हो गई।

इस नई कविता में विभाव, अनुभाव, संचारी आदि के आधार पर रस खोजने के अभ्यस्त काव्य रसिकों को कोई आनन्द नहीं आ सकता। शब्दों से जो साधारण अर्थ बोध होता है उसे देखते हुए यह भी नहीं कहा जा सकता कि उपरियुक्त मजदूर की जो कल्पना कर ली गई है उसी को लेकर यह कविता लिखी गई थी या नहीं। पर यदि मजदूर की बात सही है तो इस कविता को सर्वथा नीरस भी नहीं कहा जा सकता। सब मनमाने की बातें हैं। यह रचना तुलसी की वह प्रभु मूरत है जिसके विषय में उन्होंने कहा था—'जेहि की रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' भारतवर्ष के अल्प शिक्षित और साधारण पाठक तो इस कविता को कविता ही नहीं समझ सकते। जो कविता में कही सीधी-सादी बात को सुन कर भी चकरा जाते हैं वह इस प्रकार की विचित्र सांकेतिक उक्तियों का अर्थ कैसे लगा सकते हैं।

बालगीतों के क्षेत्र में इस प्रकार के नये प्रयोग और प्रतीकवादी कविता के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। बालगीत जिन बच्चों के लिए लिखे जाते हैं उनके लिये सांकेतिक भाषा सहज सुबोध ही नहीं है। यह ठीक है कि बच्चों की कल्पना की गति बहुत तीव्र होती है और वह अनहोनी और असम्भव कल्पनायें भी आसानी से कर सकते हैं। दैत्य के सिर पर सींग और परियों के पंख बहुत प्राचीन काल से उनकी कल्पना में आते रहे हैं। पर अपनी अनहोनी कल्पनायें करने और दूसरे की कल्पना को समझ सकने की प्रक्रिया में अन्तर होता है। अपनी कल्पनायें असंगत और निराधार होते हुए भी वह किसी को अच्छी लग सकती है और उनसे उसका मनोरंजन भी हो सकता है। पर दूसरे की कल्पना युक्ति-संगत होते हुए भी सदैव वैसा ही मनोरंजन नहीं कर सकती। वह अपने को दूसरे की स्थिति में रख कर ही ठीक तरह से समझ में आ सकती है। बच्चों में अहं भाव बहुत प्रबल होता है। धीरे-धीरे शिक्षा और विकास के द्वारा सद्भावना सहानुभूति आदि गुणों को वह धारण करते हैं। इसलिये समझ-बूझ कर अपने को किसी दूसरे की स्थिति में रखने में वह सफल नहीं हो सकते। बन्दर और परी की कहानी में वह जो अपने को राजकुमार या बन्दर का बच्चा समझ लिया करते हैं वैसी ही बात कविता के विषय में नहीं कही जा सकती।

बच्चे छोटी तुकबन्दियाँ तो जोड़ सकते हैं पर अपने लिए गीत स्वयं नहीं लिख पाते। इसलिए उनके लिए उपयुक्त बाल गीत लिखने का कार्य बड़ों को करना पड़ता है। बाल स्वभाव के पारखी, बच्चों की रुचियों, भावनाओं और कल्पनाओं को अच्छी तरह से समझने वाले ही बालगीत लिख सकते हैं। उनमें अपने मन का बच्चों के मन से तादात्म्य स्थापित करने की शक्ति का होना भी आवश्यक होता है। यह तादात्म्य करते समय बड़ों की बड़ी-बड़ी बातों का कोई संस्कार या प्रभाव उनके मन पर नहीं होना चाहिये क्योंकि वह बच्चों के मन के प्रतिकूल होती हैं।

किसी कविता को गीत की संज्ञा देने के लिए उसमें गेय तत्व और स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होना आवश्यक है। गेय तत्व बड़ों और बच्चों के गीतों में एक से होते हैं। सब बालगीत राग रागिनियों में बाँध कर संगीत के स्वर लय के आधार पर भले ही न गाये जा सकें पर बच्चे उन्हें अपनी तरह से स्वर के उतार-चढ़ाव के साथ गा सकते हैं। किन्तु स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होने की दृष्टि से गीत और बालगीत में बहुत अन्तर होता है। बड़ों के गीतों की प्रेरणा कवि को स्वयं अपनी अन्तर्नुभूतियों से मिलती है। उसके अपने मन में भावनाओं के उत्थान-पतन उसे उन्हें गीतों में व्यक्त करने के लिए विवश कर देते हैं। पर बालगीतों की प्रेरणा कवि को स्वयं उसकी अपनी अनुभूतियों से नहीं मिलती। न उसकी भावनायें ही उसे व्यक्त करने के लिए विवश कर देती हैं। बच्चों की बातों, उनकी चेष्टाओं, उनके क्रिया-कलापों से वह प्रेरणा ग्रहण करता है और अवकाश उल्लास के क्षणों में वह उनके ही आधार पर बालगीतों की रचना किया करता है। यह प्रेरणा उसी प्रकार से होती है जैसी प्रकृति के किसी रूप व्यापार को देख कर किसी भी कवि को प्राप्त हो सकती है।

बालगीत लिखते समय भावुकता की लहरों में बहते हुए कवि को अपनी बाल स्वभाव की जानकारी के बन्धन को स्वीकार करना पड़ता है। इसलिए उसमें वर्ण्य विषय के प्रति तल्लीनता कभी नहीं आ पाती जैसी बड़ों के गीत लिखते समय स्वतः आ जाती है। उसे बालगीत लिखने के उपरान्त आत्म-सन्तोष का वह सुख भी प्राप्त नहीं होता जो उसे बड़ों के गीत लिखने से प्राप्त होता है। अपने मन के गीत लिखने के उपरान्त उसे लगता है भावनाओं का एक तेज तूफान जो उसके मन में उठा था शान्त हो गया है। पर बालगीत लिख कर उसे यही लगता है कि उसने उल्लसित हो कर एक खेल खेला था वह पूरा हो गया।

कवि जिस प्रकार किसी भी चरित नायक के विषय में कविता लिखते समय उसकी भावनाओं को समझ कर उन्हें अपनी शक्ति और समझ के अनुसार सच्चाई और ईमानदारी से व्यक्त करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार बालगीतों में वह बच्चों की भावनाओं को समझ कर उन्हें सच्चाई से व्यक्त करता है। कोई कवि यदि राम के बन गमन पर दशरथ की मनोव्यथा का वर्णन करे तो दशरथ के हृदय के वेदना कष्ट को वह कविता में व्यक्त करेगा। वह जितना अधिक दशरथ के दुःख को समझ सकेगा उतनी ही सफलता उसे व्यक्त करने में मिलेगी। ठीक इसी तरह यदि कोई कवि किसी विशेष स्थिति में बच्चों के मन की प्रसन्नता का वर्णन करे तो उसकी बाल मन की जानकारी जितनी अधिक होगी उतनी ही सफलता उसे उसको व्यक्त करने में मिलेगी। दूसरे की भावनाओं को व्यक्त करने वाली रचना को हम गेय तत्व होते हुए भी गीत नहीं कह सकते। इस दृष्टि से बालगीत को भी वास्तव में 'गीत' नहीं कहा जा सकता। यह भी कविता की ही परिभाषा में लिये जायेंगे। पर हिन्दी में बच्चों की कविता के लिये बालगीत शब्द अब इतना प्रचलित

हो चुका है कि उसे बालगीत न कह कर कोई दूसरा नाम दे सकना भी कठिन है। हिन्दी के सारे बालगीतों को हम बच्चों की भावनाओं की अनुरूपता की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। १—वह बालगीत जो बच्चों की भावनाओं के बहुत निकट हैं। २—वह बालगीत जो बच्चों की भावनाओं से बहुत दूर हैं पर जो बच्चों का मनोरंजन करते हैं। इसलिए बालगीतों की श्रेणी में ही रखे जाते हैं। ३—वह बालगीत जो उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के बीच के बालगीत हैं। इन तीनों श्रेणियों के बालगीत कविता ही हैं। गीत तो केवल उन बालगीतों को कहा जा सकता है जिन्हें बच्चों ने स्वयं अपनी अन्तरप्रेरणा और आत्मानुभूति के आधार पर गाने के लिये लिखा हो। ऐसे गीत उन छोटी-छोटी तुकबन्दियों के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकते जिन्हें वे खेल-खेल में स्वयं बना लिया करते हैं जैसे:—

बरसो राम धड़ाके से।
बुढ़िया मर गई फाके से।। इत्यादि

बड़ों के द्वारा लिखे और पुस्तक तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित सारी कवितायें, कवितायें ही हैं बालगीत नहीं।

बाल साहित्य के अन्तर्गत आने वाली लोरियों और प्रभातियों को भी बालगीत ही कहा जाता है। उनमें गीतात्मकता के साथ-साथ सहानुभूति-निरूपण भी हमें मिलता है। उनकी प्रेरणा के आधार भी गाने वाली माँ के मन के अपने भाव ही होते हैं। स्वर लय से गाई जाने के कारण वह बच्चों को भी मधुर तथा कर्णप्रिय लगती है। पर उनमें बच्चों की अपनी भावनाएँ और अनुभूतियाँ व्यक्त नहीं होतीं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित लोरी और प्रभाती की पंक्तियाँ देखिये:

निंदिया कहाँ देर तूने लगाई।
मुन्ना की आँखों में अब तक न आई।।
या
मुन्ना की आँख खुली सूर्य निकल आया।
चिड़ियों ने गीत मधुर गाया मन भाया।।

इस प्रकार की लोरियों और प्रभातियों में माँ की ममता, स्नेह, लाड, दुलार, प्यार सब कुछ फूटा पड़ता है। उन्हें हम वात्सल्य रस के गीत कह सकते हैं; पर बालगीत नहीं।

बालगीत और वात्सल्य रस के गीत या कविता में अन्तर यह है कि बालगीत में बच्चे स्वयं अपनी भावनाएँ व्यक्त देख कर प्रसन्न होते हैं। वह सोचते हैं कि उनके पास उपयुक्त शब्द स्वर होते तो वह भी इसी प्रकार के गीत लिखते। वह उन्हें बार-बार पढ़ना और दुहराना चाहते हैं। और अच्छे लगने के कारण पढ़ते या सुनते ही याद कर लेते हैं। पर जिस गीत में बच्चों के प्रति बड़ों के स्नेह, मोह, ममता का वर्णन होता है, उसे वात्सल्य रस की कविता ही कहा जा सकता है। वात्सल्य रस का स्थायी भाव स्नेह माना गया है। सूरदास ने अनेक ऐसे पद लिखे हैं जिनमें कृष्ण के बाल-रूप के साथ-साथ यशोदा माता के मन की ममता की अभिव्यक्ति हमें मिलती है। जैसे—

सुत मुख देखि यसोदा फूली।
हर्षित देख दूध की दतियाँ प्रेम मगन तन की सुधि भूली।।
या
जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलराई दुलराई मल्हावै जोई सोई कछु गावै।।

सूर के ऐसे पदों को हम बालगीत नहीं कह सकते। वह बच्चों की अपेक्षा बड़ों का मनोरंजन अधिक करते हैं। इसी प्रकार लोरियों ओर प्रभातियों में व्यक्त मनोभावों से जितना मनोरंजन माताओं का होता है उतना बच्चों का नहीं। फिर भी लोरियों में जहाँ माँ सीधी अपने बच्चे से बात करती है वहाँ वह बाल-मन की भावनाओं के अपेक्षाकृत अधिक निकट होती हैं और बच्चे उन्हें सुन कर कम प्रसन्न नहीं होते जैसे:

आ मैं तुझे थपकियों से सुलाऊँ।
आ मैं तेरे पास निंदिया बुलाऊँ।।

माँ की ममता से ओत-प्रोत हो बच्चे उन्हें सुनते-सुनते सुख से सो जाते हैं।

हिन्दी में लिखी बड़ों की कविताएँ ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित रूपों में हमें मिलती हैं:

(१) **कथानक काव्य**—जिसमें नायक के चरित्र को लेकर एक पूरी कथा कविता में लिखी गई हो। उसमें प्राकृतिक चित्रण के साथ-साथ कई पात्रों की मनोदशाओं तथा घटनाओं इत्यादि का वर्णन होने से अनेक रसों का आनन्द पाठक को प्राप्त हो जाता है। महाकाव्य और खण्ड काव्य इस प्रकार की कविता के ही दो रूप हैं। यह काव्य अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दी में लिखे जाते रहे हैं। पृथ्वीराज रासो, राम चरित मानस, पद्मावत, कामायनी, प्रिय प्रवास, नूरजहाँ, पंचवटी इत्यादि इसी काव्य रूप के उदाहरण हैं। बच्चों के लिये कथानक को कविता में तो लिखा जा सकता है; पर वह महाकाव्य या खण्ड काव्य की परिभाषा में नहीं आ सकते। उनके घटनास्थलों या प्रकृति के वर्णनों को विस्तार देने की उतनी स्वतन्त्रता कवि को नहीं दी जा सकती। छोटे बच्चों के लिये तो ईसप या पन्चतन्त्र की जैसी छोटी-छोटी कहानियाँ ही कविता में सरल ढंग से लिखी जा सकती हैं।

(२) **गीत काव्य**—गीत गाये जा सकने वाले उन अलग-अलग पदों या कविताओं को कहते हैं जिनमें लिखने वाले की अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हों। खण्ड-काव्य या महाकाव्य जैसी कथानक की एक क्रमबद्धता उनमें नहीं होती। हिन्दी में विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, भारतेन्दु, महादेवी वर्मा, निराला, बच्चन, इत्यादि अनेक कवियों ने गीत लिखे हैं। प्राचीन कवियों के अधिकतर गीत भक्ति के आवेश में लिखे गये वह गीत या पद हैं जिनमें उनके आराध्य देव के महत्व का वर्णन किया गया है। सूरदास के सूरसागर और तुलसी की गीतावली में तो कृष्ण या राम की कथा का सांगोपांग वर्णन है। इसलिये उन्हें गीत या पद की शैली में लिखा कथानक काव्य ही कहा जायेगा। आधुनिक कवियों में जिन कवियों के गीतों में गीत के सारे तत्व एक साथ पाये जाते हैं वह महादेवी, निराला और बच्चन हैं। सूरदास के लिखे कुछ पद या गीत इस प्रकार के भी हैं जो बच्चों की भावनाओं के अधिक अनुरूप होने के कारण बालगीतों की श्रेणी में प्रायः ले लिये जाया करते

हैं। पर सूर ने उन्हें अपने इष्ट देव कृष्ण की लीलाओं का वणन करने के विचार से ही लिखा था अतएव भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से उनमें वह स्वाभाविक सरलता नहीं जो बालगीत के लिये अपेक्षित होती है। सूरदास के अधिकांश पदों में बाल-रूप, चेष्टाओं और बाल-स्वभाव का वर्णन तो है पर उनमें बच्चों की भावनाओं और कल्पनाओं का वर्णन उनके अनुरूप गीतों के रूप में नहीं हुआ है। अतएव उन्हें बालगीतों की श्रेणी में रख सकना कठिन है।

(३) **मुक्तक**—हिन्दी में लिखे गये मुक्तकों में कवित्त, सवइये, दोहे, छन्द, चतुष्पदियाँ और वह सभी छोटी-छोटी कवितायें आती हैं जो किसी एक छोटे से भाव को व्यक्त करने के लिये लिखी गई हों। इस श्रेणी में मतिराम, देव, भूषण, विहारी, रहीम, गिरधर तथा आधुनिक काल के प्रसाद, पन्त, निराला, दिनकर, इत्यादि सभी की फुटकर कवितायें आती हैं। बालगीत भी अलग-अलग एक-एक भाव को लेकर लिखे जाने के कारण इसी श्रेणी के अन्तर्गत लिये जा सकते हैं। मुक्तकों के भाव और भाषा यदि सरल हों तो सभी प्रकार के मुक्तकों की शैली में बच्चों की कवितायें लिखी जा सकती हैं।

(४) **मुक्त छन्द और प्रयोगवादी शैली की कवितायें**—इस श्रेणी में उन सब कविताओं को लिया जा सकता है जो कवितायें पिंगल शास्त्र के परम्परागत नियमों और रस सिद्धान्त तक की अवहेलना करके आधुनिक काल में लिखी गई हैं। निराला जी को इस शैली की रचनाओं का जन्मदाता माना जाता है। मुक्त छन्द में गति, लय, स्वरों का ध्यान तो प्रायः रखा भी जाता है पर तुकों का बन्धन स्वीकार नहीं किया जाता। मुक्त छन्द की कविता में कुछ पंक्तियाँ दो-दो और कुछ २०–२० शब्दों की होती हैं। प्रयोगवादी शैली में भावों की तारतम्यता का बन्धन भी स्वीकार नहीं किया जाता। प्रतीकवादी कविताओं में प्रतीकों के सहारे भावों का संकेतमात्र कर दिया जाता है। हिन्दी में इस शैली के कवियों में निराला, अज्ञेय और धर्मवीर भारती इत्यादि हैं। बच्चों के लिये कवितायें इस शैली में नहीं लिखी जा सकतीं क्योंकि बच्चों के कान गति, लय, स्वर और तुकों से युक्त कविता को ही कविता समझते हैं। उनको इतना ज्ञान ही नहीं होता कि प्रतीक और प्रयोगवादी शैली की कविताओं को समझ सकें। मुक्त छन्द के उतार-चढ़ाव में उनके भावों से विमुख हो जाने का भय भी सदा बना रहता है। पर सम्भव है भविष्य में बड़ों की तुकान्त कविताओं की तरह बाल गीतों के बजाय मुक्त छन्द में ही बच्चों की कवितायें लिखी जाने लगें। वह बच्चों का कितना मनोरंजन कर सकेगीं यह समय ही बतायेगा।

बड़ों की तरह बच्चों के पास न तो अपना कोई पूर्वसंचित ज्ञान-कोष होता है, न शब्द भण्डार। वह शब्दों के अभिधेयार्थों को ही समझ सकते हैं, लाक्षणिक और व्यंगार्थों को नहीं। अतएव अलंकारों को सजा कर लाक्षणिक व्यंगार्थों से पूर्ण कविता उनके लिये लिखना वैसा ही है जैसा किसी अनजान व्यक्ति के लिये ग्रीक लैटिन भाषा में कविता लिखना। बच्चों के लिये सीधी-सादी इतिवृत्तात्मक कविताएँ ही लिखी जा सकती हैं। बड़ों के काव्य मर्मज्ञों के बीच भले ही उन्हें निम्न श्रेणी की कविता समझा जाये। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने बड़ों की इसी प्रकार की कविता की ओर संकेत करते हुए अपनी पुस्तक कविता कौमुदी की भूमिका में लिखा था—'आज-कल की हिन्दी कविता की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो बहुत निराश होना पड़ता है। कोरी तुकबन्दी को कविता का नाम दिया जा रहा है। बक, कोयल,

और कौवे को मोर बताया जा रहा है। जिस पद्य में न रस है न माधुर्य, न प्रसाद, न अलंकार उसे कविता की उपाधि से विभूषित किया जा रहा है। आज की कविता में काव्य के गुण न होने से पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानों जीभ के मैदान पर शब्द लट्टू चला रहे हैं।' पर हिन्दी के बाल पाठकों की दृष्टि से इस निम्नकोटि की शैली में लिखी कविता भी उनकी रुचि की सर्वश्रेष्ठ कविता हो सकती है।

बच्चों का संसार उनके आस-पास की वस्तुओं, व्यापारों और मनुष्यों तक ही सीमित होता है। बड़ों के सामने पूर्व इतिहास की महत्वपूर्ण घटनायें परम्परागत मान्यतायें, विश्वास और दृष्टिकोण सपनों की तरह नाचा करते हैं। पर बच्चों की दृष्टि उन सब से मुक्त और निर्मल होती है। वह सांसारिक राग-द्वेष, माया-मोह इत्यादि से भी निर्लिप्त होते हैं। अपने मन के सारे अज्ञान और अभावों को अपनी कल्पना से ही पूरा कर लेने की अद्भुत शक्ति उनमें होती है। कभी-कभी वह कल्पना को यथार्थ से भी अधिक सत्य और प्रत्यक्ष मान लेते हैं। इसलिये बच्चों की कविता बड़ों की कविता से आकार-प्रकार, रूप-रंग और भावना-कल्पना में भिन्न होती है। बड़ों की मान्यताओं के आधार पर हम बच्चों की कविता की विवेचना ही नहीं कर सकते। उसके लिये हमें अध्ययन, आलोचना और प्रशंसा के कुछ नये ही सिद्धान्त तथा मापदंड स्थिर करने होंगे तभी हम उनके मर्म को भली भाँति समझ सकते हैं।

३ : अलिखित बालगीत

पृथ्वी पर जिन स्थूल पौधों को बड़े यत्न से उगा कर क्रम से काट-छाँट कर सजाया जाता है उनकी छटा आकर्षक होती है पर वह वन-फूल भी कम आकर्षक और अपनी नैसर्गिक छटा में कम लुभावने नहीं होते जो बिना किसी के सींचे-सँवारे अपने-आप खिल जाया करते हैं। साहित्यिक गीत प्रत्येक पढ़े-लिखे सुरुचिसम्पन्न व्यक्ति का मनोरंजन करते हैं पर लोकगीत जिनमें न कोई आकर्षक शब्द-विन्यास होता है न अलंकार और न अद्‌भुत कल्पना, वह अधिकांश जनता के गलहार बन शोभा बढ़ाते रहते हैं। लोक गीतों में मनोभाव सरल स्वाभाविक और मार्मिक ढंग से व्यक्त हमें मिलते हैं। उन के सामने साहित्यिक गीतों का रस ही फीका पड़ जाता है। इसी प्रकार जो बालगीत बड़ों के द्वारा लिखे जाते हैं और सुन्दर-सुन्दर पत्रिकाओं और पुस्तकों में प्रकाशित होकर नन्हें-मुन्नों का मनोरंजन करते हैं उनसे वह बालगीत कम मनोरंजक नहीं होते जिन्हें बच्चे स्वयं सरल तुकबन्दियों के रूप में बिना किसी प्रयास के गढ़ लिया करते हैं। बच्चों के मन की धड़कन सबसे स्पष्ट रूप में उन्हीं में सुनाई पड़ती है। इसीलिये वह उन्हें पुस्तकों और पत्रिकाओं में प्रकाशित बालगीतों से भी अधिक प्रिय लगते हैं।

बच्चों के समाज में ऐसे अनेक बालगीत प्रचलित मिलते हैं जिनके रचयिता या रचना-काल के विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं। किसी पुस्तक के पन्ने पर सुन्दर चित्र बना कर जो कभी प्रकाशित नहीं किये गये, पर जो परम्परा से बाल-समाज में प्रचलित हैं। वह किसी पाठशाला या कक्षा में उन्हें कभी पढ़ाये नहीं गये और न उन्हें किसी ने परीक्षा का भय बेंत मार-मार कर याद कराया। पर जो बच्चों को अपने आप कहीं न कहीं से सुनने को मिल गये और सुनते ही याद हो गये हैं। वह उन्हें बार-बार दुहराते और गाकर सुनाते हैं। उन्हें गाते-दुहराते समय उनके शरीर का रोम-रोम रस से सराबोर हो जाता है। उनके बड़े अध्यापकों या अभिभावकों को उनमें कोई रस भले ही न मिले पर बच्चों के मन के असली भाव गीत वही होते हैं। कोई भी युक्ति-संगत कल्पना या मनोभाव न होते हुए भी बच्चों को उनमें अपने मन का पूरा भाव व्यक्त या कल्पना चित्रित मिल जाती है।

हिन्दी में लोक गीतों की तरह इन बच्चों द्वारा अपने मनोरंजन के लिये अपने आप गढ़ लिये जाने वाले बालगीतों के संचय या संकलन की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया। बच्चों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाले बड़ों के समाज में यह अप्रकाशित बालगीत यदि प्राचीन काल से संकलित किये जाते रहे होते तो नैसर्गिक साहित्य का एक कितना बड़ा कोष हमारे पास होता। समय-समय के बच्चों के मन के स्वर उनसे झंकृत होते और हमें उनकी परिस्थितियाँ, कल्पनाओं और भावनाओं के अनेक सुन्दर-सुन्दर चित्र उनके द्वारा उपलब्ध हुए होते। हम उनके द्वारा यह समझ सकते कि किन विशेष परि-

स्थितियों में पल कर वह बड़े हुए, उनकी क्या-क्या प्रतिक्रियायें उनके भोले मनों पर हुई और उन्होंने किस प्रकार की भाषा में उन्हें व्यक्त किया।

संसार में जब लिखने-पढ़ने और प्रकाशित करने के साधनों का अभाव था तो नैसर्गिक बालगीत ही बच्चों की साहित्यिक भूख को तृप्त किया करते थे। यह नैसर्गिक बालगीत प्रत्येक समाज और समय के बच्चों में किसी न किसी रूप में प्रचलित रहे होंगे। आज भी हम इन्हें गाँव-गाँव और नगर-नगर में प्रत्येक वर्ग और समाज के छोटे बच्चों में प्रचलित देखते हैं। भारत देश का कोई भी भू-भाग ऐसा नहीं हो सकता जहाँ के बच्चे कुछ न कुछ तुकबन्दियों को समय-समय पर अपने उत्साह उमंगों के क्षणों में गाते या दोहराते न रहे हों, अपने वातावरण पक्षियों, पेड़ों, फूलों, फसलों, कपड़ों खेल-खिलौनों, अभिभावकों और अध्यापकों से सम्बन्धित ऐसी अनेक भावभरी पद्यात्मक पंक्तियाँ आज भी हमें खोजने से प्राप्त हो सकती हैं जिनकी भाषा कैसी भी हो कोई युक्तिसंगत अर्थ भाव उनमें मिलता हो या नहीं पर जो बच्चों के मनोरंजन के मुख्य विषय हैं। इन पद्य पंक्तियों पर या जिन्हें हम बच्चों के बाल गीत भी कह सकते हैं, अपने विशेष वातावरण का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होना अत्यन्त स्वाभाविक है। बच्चे अपनी दृष्टि की सीमा से बाहर कल्पना की सहायता से दूर की वस्तुओं को देखकर समझ नहीं सकते। उनकी भावनाओं का विस्तार भी ऐसा नहीं होता कि दूरस्थ अपरिचितों से वह कोई रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकें। आदर्श और सिद्धान्तों की बात भी वह नहीं जानते अतएव उनके अल्प ज्ञान के आधार पर जिन आस-पास की वस्तुओं को वह देखते-सुनते-जानते हैं उन्हीं से प्रेरणा पाकर उत्तेजना या उत्साह के समय वह ऐसी पंक्तियाँ गढ़ लिया करते हैं जो उनके अलिखित साहित्य का रूप धारण कर लिया करती है।

बच्चों के यह अलिखित नैसर्गिक बालगीत यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो उनकी शारीरिक चेष्टाओं की प्रेरणाओं के आधार पर अधिक लिखे गये हैं। उनकी भावमयता और गीतात्मकता के साथ-साथ जहाँ उनमें शारीरिक चेष्टाओं को उत्तेजित करने की शक्ति होती है वहाँ पर वह बच्चों के लिये और भी अधिक रोचक लगते हैं। बच्चे परिस्थितियों का ज्ञान सबसे पहिले देख-सुन और समझ कर उतना प्राप्त नहीं करते, जितना शारीरिक चेष्टाओं और संस्पर्श के आधार पर प्राप्त करते हैं। वह जिस वस्तु को देखते है उसे हाथ में लेकर तोड़ कर, नोच कर या खोल कर भी देखना चाहते हैं। देखनेमात्र से उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती। बड़े लोग फूल को बाग में खिला हुआ देख कर ही प्रसन्न हो सकते हैं पर बच्चे इस प्रसन्नता के साथ-साथ उसे तोड़ कर हाथ में लेने की स्वाभाविक इच्छा को रोक नहीं सकते। भले ही वह उसे डाली पर से तोड़ कर तुरन्त नोच-नाच कर धरती पर फेंक दें। बाल कृष्ण के चाँद को देख कर उसे पकड़ लेने के लिये मचलने की बात साहित्य में प्रसिद्ध है ही। शारीरिक चेष्टायें करने की प्रवृत्ति उनमें इतनी तीव्र और स्वाभाविक होती है कि वह कभी-कभी निरर्थक ही उछलते-कूदते, घूमते-झूमते और चलते-फिरते थकते नहीं। उनकी इस प्रकार की चेष्टाओं से ही उनके गढ़े हुए उस बालगीत साहित्य का निर्माण होता है जो न कभी छपता है न प्रकाशित होता है पर निरन्तर गाया-दुहराया जाने के कारण वह धीरे-धीरे बच्चों के समाज में फैल जाता है और शताब्दियों तक उनका

मनोरंजन करता रहता है। इस साहित्य को यदि हम चाहें तो बच्चों के श्रम से उत्पन्न साहित्य भी कह सकते हैं।

खड़ी बोली हिन्दी में भी बहुत-सी ऐसी बालगीतों की पंक्तियाँ हमें मिलती हैं जो पता नहीं कब से बाल-समाज में प्रचलित रही हैं और आज भी वह पुरानी नहीं हुई हैं। बादलों को देख कर कृषि प्रधान देश भारतवर्ष में बड़ों ही नहीं बच्चों को भी बहुत प्रसन्नता होती है। वर्षा ऋतु के सांगोपांग विशद वर्णनों से बड़ों के काव्य साहित्य के अनेक ग्रन्थ भरे हुए हैं। तुलसी दास ने भी राम चरितमानस में कहा है—'घन घमंड नभ गरजत घोरा। पियाहीन डरपत मन मोरा।' लिखित और प्रकाशित बालगीत साहित्य में भी बादलों और वर्षा से प्रेरित होकर बहुत से गीत मिलते हैं—

क्या सुन्दर वर्षा ऋतु आई, लगती है सब को सुखदाई।
मेढक टर्र टर्र चिल्लाते, झींगुर झनन झनन झन गाते॥
काले काले बादल आये, सागर से जल भर भर लाये।
रिमझिम रिमझिम पानी बरसा, आज खुलेगा नहीं मदरसा॥

पर जो स्वाभाविक मनोभावों की तीव्र कल्पना मिश्रित अभिव्यक्ति हम अलिखित बालगीतों की इन दो पंक्तियों में पाते हैं वैसी हमें लिखित बालगीत साहित्य में देखने को नहीं मिलती—

बरसो राम धड़ाके से।
बुढ़िया मर गई फाके से॥

इन पंक्तियों का एक-एक शब्द ध्यान देने योग्य है। बादल का कहीं नाम भी नहीं लिया गया और उसे राम कह कर सम्बोधित किया गया है। राम सब जानते हैं सर्व शक्तिमान हैं वह बंजर धरती को हरा-भरा एक क्षण में कर सकते हैं। गरमी से तपी हुई धरती को जल से सींच कर फसलों को उगाने वाले बादल के लिये उन सर्व शक्तिमान राम से अधिक उपयुक्त और कौन-सा सम्बोधन हो सकता है। बादल के बरसने का भाव रिम-झिम, झर-झर, गड़-गड़ आदि आदि शब्दों से कविता में व्यक्त किये जाते हैं पर धड़ाके शब्द में जो ओज और भाव भरा हुआ है वह उनमें से किसी भी शब्द में नहीं। धड़ाका शब्द का साधारण अर्थ जोर का शोर होता है बादल जोर का शोर करके तो बरसते ही हैं और जब मूसलाधार पानी बरसता है तो बरसने का शोर और भी अधिक होता है। अतएव बरसने के लिये साहित्यिक मधुर प्रिय और समीचीन वाचक शब्द न होते हुए भी वर्षा के शोर का सारा भाव, धड़ाके शब्द से व्यक्त हो जाता है। दूसरा संकेत इस शब्द के प्रयोग से यह भी मिलता है कि बादल निस्संकोच निर्भय होकर बरसें।

बादल से बरसने को कहते समय और भी प्रकार से अनुनय-विनय की जा सकती थी। धरती सूरज की गरमी से तप कर बेहाल हो रही है खेत सूखे और पेड़ पौधे मुरझाये पड़े हैं, गरमी के मारे पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं को पल भर चैन नहीं। उनके प्राण संकट में हैं इत्यादि। पर बालक की कल्पना इधर-उधर की सब वस्तुओं की ओर नहीं जाती। उसने सुन रक्खा है कि बादल न बरसने से नाज पैदा नहीं होता, लोग भूखों मरने लगते हैं और मरने वालों में सबसे पहिले बूढ़े और बुढ़िया मरते हैं जो बहुत कमजोर होते हैं। इसलिये उसने बादल से यह कहा कि बुढ़िया फाके से मरी जा रही है। फाका इस-

लिए कि बरसात न होने से फसलें सूखी पड़ी हैं, नाज होने की आशा नहीं। इस भावभरी उक्ति को सुन कर पत्थर के देवता का मन भी पिघल कर पानी हो सकता है। जल से भरे बादलों की तो बात ही क्या है। खूसट दुर्बल बुढ़िया पर भला कौन तरस नहीं खायेगा। छोटे बच्चे इन पंक्तियों को जितने प्रेम और उत्साह से वर्षा आने से पूर्व चिल्ला-चिल्ला कर गाते-दुहराते हैं वह देखते ही बनता है।

बच्चों के इन अलिखित गीतों में कुछ ऐसे हैं जिनमें भावों का कोई पारस्परिक तारतम्य नहीं है फिर भी वह बच्चों का पर्याप्त मनोरंजन करते हैं ऐसा ही एक बाल-गीत है—

हाथी घोड़ा पालकी।
जय कन्हैया लाल की॥

इसे बच्चे गाँव-गाँव में जोर-जोर से उछल-कूद कर गाते हैं जहाँ पालकी की तरह झूलने वाली वस्तु को उन्होंने देखा यह पंक्तियाँ उन्हें याद हो आती हैं। पालकी के साथ हाथी और घोड़े का उल्लेख करने में तारतम्य इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कि यह तीनों सवारियाँ हैं जिन पर चढ़ना उन्हें अच्छा लग सकता है। पर इन सब के साथ 'जय कन्हैया लाल की या जय गिरधर गोपाल की' कह देने से ऊपर की पंक्ति से भावों का कोई साम्य नहीं बैठता। कन्हैया या गिरधर गोपाल का जब विवाह हुआ होगा तो बरात के जलूस में भले ही हाथी, घोड़े और पालकी एक साथ रहे हों उन्हें ही देख कर कदाचित यह कल्पना की गई हो। या किसी भी बरात को देख कर इस प्रकार की कल्पना की जा सकती है। और कन्हैया लाल या गिरधर गोपाल के नाम उसके दूल्हा के प्रतीक समझ कर यों ही ले लिये गये हों। आधुनिक काल के बहुत-से बच्चे छोटी-छोटी झंडियाँ हाथ में लिए भारत माता या महात्मा गाँधी की जय बोलते हुए मिल सकते हैं। इसी प्रकार की किसी भावना से प्रेरित होकर उपर्युक्त बालगीत की पंक्तियाँ गढ़ी गई होंगी।

निम्नलिखित बालगीत में भी गोपी चन्दर कहने का कोई भाव समझ में आ सकना कठिन है—

भरा समन्दर
गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कितना पानी
कितना पानी
कितना पानी।

इस बालगीत को बच्चे गली या खुले मैदान में यह कल्पना करके गाते हैं कि वहाँ सर्वत्र पानी भरा हुआ है और गहरा समन्दर है। बच्चे किसी वस्तु के अभाव में भी उसकी कल्पना करके उसकी वास्तविकता का अनुभव जितनी तीव्रता से करते हैं उतनी तीव्रता से बड़े लोग नहीं कर पाते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों को गाते हुए वह सचमुच यह समझने लगते हैं कि वह बीच समुद्र में हैं। बार-बार डुबकी मार कर ऊपर उठते हुए वह चिल्लाते रहते हैं कितना पानी, कितना पानी, कितना पानी। तभी कुछ दूसरे बच्चे घुटनों, कमर, गरदन और सिर के ऊपर क्रमशः हाथ रख कर चिल्लाना प्रारम्भ कर देते हैं इतना पानी,

इतना पानी, इतना पानी, इतना पानी। चिल्लाने, उठने-बैठने और हाथ-पाँव हिलाने व आँखों तथा मुखाकृतियों से अपने मनोभावों को व्यक्त करते हुए वह बहुत देर तक इस खेल को खेलते रहते हैं। पर भरा समन्दर के साथ गोपी चन्दर कह देने का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। बच्चों ने चीर हरण के चित्रों में गोपियों को जल में खड़े देखा होगा इसलिए जल के खेल में गोपियों की याद हो आना सम्भव हो सकता है पर गोपी चन्दर कैसे कहा गया यह बड़ों के समझ के बाहर की बात है। सम्भव है समन्दर की तुक जोड़ने के लिए ही ऐसा कह दिया गया हो।

पहिले के समय में तख्तियों पर नेजे की कलम और खरिया से लिखवा कर बच्चों को लिखने का अभ्यास कराया जाता था। मोटी कलम से लिखने के कारण छोटी-सी तख्ती तनिक सी देर में पूरी भर जाती थी। प्रत्येक बच्चे को उसे धोकर फिर साफ करके तैयार करना पड़ता था। लिखने का क्रम अधूरा टूट जाने के कारण उन्हें तख्ती के सूखने की जल्दी होती थी पर वह सूखती तो अपने समय से ही। अतएव इस बीच के खाली समय को बिताने के लिए बच्चों ने एक विचित्र गीत गढ़ लिया है:

सूख सूख पट्टी
चन्दन गट्टी
राजा आया
महल चुनाया
झंडा गाड़ा
बजा नगाड़ा
रानी गई रूठ
पट्टी गई सूख।

इस बालगीत में पट्टी सूखने और रानी के रूठने का कोई सम्बन्ध नहीं पर कल्पना में जब राजा आ ही गया तो राजा के साथ जितनी भी बातें सम्बन्धित हैं उन सभी का वर्णन इस बालगीत में हो सकता था और इस बालगीत की विशेषता ही यह है कि इसमें दो-दो तुकबन्दियाँ जोड़ कर कितनी ही देर तक गाया जा सकता है जब तक पूरी पट्टी सचमुच सूख न जाए। अन्तिम दो पंक्तियों में राजा के सम्बन्ध से ही रानी के रूठ जाने की ओर संकेत किया गया है। रूठने से सारे काम बिगड़ जाते हैं। बालगीत का प्रसंग इससे अधिक नहीं चलता और वहीं उसका अन्त हो जाता है। बात को कहने का कैसा सरल मनोवैज्ञानिक ढंग इसमें अपनाया गया है। साहित्यिक या कवि होने का अभिमान लेकर लिखे गये किसी बालगीत में वह रोचकता नहीं आ सकती जो इसमें विद्यमान है।

बच्चों की दृष्टि को साधारण मनुष्यों की अपेक्षा असाधारण मनुष्य अधिक आकर्षित करते हैं। लंगड़े, लूले, अपंग, अधिक दुर्बल, पतले या अधिक मोटे, बौने या अधिक लम्बे मनुष्य उन्हें विशेष आकर्षण के विषय लगते हैं। और वह उन्हें केवल देखते ही नहीं रह जाते उनके मन में उन्हें देखकर दया, सहानभूति या व्यंग विनोद के भाव भी जागृत होते हैं। इसीलिए सरकस की विचित्र वेष-भूषा वाले और पैरों में बाँस बाँध कर चलने वाले या दूसरे काम करने वाले बौनों को देखकर जितना आनन्द छोटे बच्चों को आता है उतना

बड़ों को नहीं। यों ही कहीं किसी असाधारण रूप से मोटे आदमी को देखकर बच्चों के लिए अपनी हँसी रोक पाना कठिन हो जाता है। इसीलिए उनमें एक गीत की यह दो पंक्तियाँ बहुत दिनों से प्रचलित चली आई हैं—

मोटे लाला पिल पिले।
बहू को लेके गिर पड़े॥

पहिली पंक्ति में एक भाव को व्यक्त किया गया है पर दूसरी पंक्ति में बहू को लेकर गिर पड़ने की बात बच्चों के मस्तिष्क में कैसे आई इसे कह सकना कठिन है। घर के बड़े-बूढ़े प्रायः छोटे बच्चों से उनके जल्दी व्याह करने, सुन्दर चन्दा-सी बहू व्याह कर लाने, उसे हाथी या मोटर पर बैठाने या खाना खिलाने इत्यादि की बातें किया करते हैं। किसी बहुत मोटे आदमो को देख कर कोई बच्चा इसी प्रकार की सुनी-सुनाई बातों के प्रभाव से उसकी बहू की कल्पना करता है। बार-बार दोहराये जाते रहने के कारण अब यह पंक्तियाँ प्रत्येक थोड़े भी मोटे कक्षा या स्कूल के सहपाठी की हँसी बनाने के लिए प्रयोग में आने लगी हैं। पर यहाँ प्रश्न यह उठता है कि ऐसे बालगीत गाने-दोहराने के लिए बच्चों को बढ़ावा देना कहाँ तक उचित है। बच्चों के लिए बड़ों द्वारा निश्चित आचार संहिता के यह प्रतिकूल है। ऐसे गीत गाने से बच्चों में सुरुचि उत्पन्न नहीं होती और न उनकी भावनायें ही परिष्कृत होती हैं। उचित-अनुचित का प्रश्न उठाना बड़ों की दृष्टि से अपनी जगह ठीक है। उनका यह कर्त्तव्य भी है कि उन्हें गन्दी बातें न सीखने दें। पर यह काम बच्चों को नकारात्मक आदेश देने या ताड़ना से नहीं होगा। उनकी भद्दी हँसी-मजाक की प्रवृत्ति को यदि रोकना है तो शिष्ट सभ्य हँसी-मजाक का वातावरण बड़ों को ही समाज में बनाना होगा जिससे हँसी-हँसी में भी शिष्ट सभ्य बातें ही वह मुख से बोल सकें।

कभी-कभी बच्चे अपने बहुत निकट होने वाले को ही अपनी तुकबन्दियों का शिकार बना लिया करते हैं। सुनते हैं ब्रिटिश शासन काल में एक स्कूल के हेड मास्टर थे टेम्पिल-टन। वह बच्चों पर बहुत कठिन अनुशासन रखते थे और स्कूल की घन्टी बज चुकने के बाद बच्चों का स्कूल में आना उन्हें किसी प्रकार भी सह्य नहीं था। बच्चे भय और आतंक के मारे उनसे कुछ कह तो सकते नहीं थे पर उस कठोर अनुशासन के विरुद्ध मनोभावनाओं को दबा कर रख सकना भी उनके वश की बात नहीं थी। अतएव उन्होंने अपनी विद्रोही मनोभावना को व्यक्त करने के लिए एक तुकबन्दी गढ़ ली—

घंटी बोली टन टन टन।
उसमें निकले टेम्पिल टन॥
टेम्पिल टन ने मारी लात।
उल्टी कुर्सी मेज दवात॥

यह तो कहना कठिन है कि इन पंक्तियों को जब टेम्पिल टन महोदय ने सुना होगा तो वह बच्चों के देर में जाने पर अपना सारा आक्रोश भूल गये होंगे क्योंकि शायद वह हिन्दुस्तानी भाषा ही इतनी नहीं पढ़े होंगे कि इन पंक्तियों का अर्थ समझ सकें। पर बच्चों को इस रचना को बार-बार दुहराते रहने में कितना सुख मिलता होगा इसकी कल्पना ही की जा सकती है। यह भी हो सकता है कि बच्चे टेम्पिलटन के प्रति अपने जिस क्रोध को कक्षा में

बिल्कुल न जाकर प्रकट करते उसका परिष्कार हो गया होगा और वह हँसी-हँसी में इन्हीं पंक्तियों को गाते हुए कक्षा में ठीक समय से पहुँचने लगे होंगे।

इसी प्रकार एक और बाल गीत में बच्चों की भावनाओं का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण हमें मिलता है। जिस गली के बच्चे एक साथ मिलकर पैदल ही या किसी एक सवारी पर स्कूल जाते हैं वह घर से निकल कर स्कूल पहुँच जाने की शीघ्रता में यह सहन नहीं कर सकते कि उनका कोई साथी चलने की तैयारी में देर लगाये। जब किसी को देर लगती है तो उनके मन में उस पर क्रोध का भाव आना भी स्वाभाविक ही है। ऐसे ही किसी क्रोध के क्षण में एक लड़की शान्ती को देर करते हुए देख कर उन्होंने निम्न-लिखित पंक्तियाँ गढ़ ली होंगी—

शान्ती मन मान्ती।
कहना क्यों नहीं मानती ॥
पंडित जी बुलाने आए।
बस्ता क्यों नहीं बाँधती ॥

शान्ती को मन मानती कहकर उन्होंने अपना पूरा क्रोध उसके ऊपर प्रकट कर दिया है और जब बच्चों ने इन पंक्तियों को बार-बार गाया होगा तो निश्चय ही शान्ती का देर करना छूट गया होगा।

शैतान लड़के प्रायः अकारण भी जब उन्हें कोई दूसरा नहीं मिलता तो अपने सुप-रिचित गुरुजनों से ही हँसी-मजाक करने की चेष्टा करते हैं। इस हँसी-मजाक का सब से सरल ढंग यह होता है कि वह किसी के नाम को ही बिगाड़ कर लेने लगें। ऐसे ही किसी व्यंग्य विनोद के क्षण में किसी शैतान लड़के ने पंडित जी को पंडाख्ता कहते हुए एक पंक्ति कही होगी "पंडित जी पंडाख्ता" फिर इसी पर कुछ और शैतान लड़कों की जंगली कल्पना कुलाचें मारने लगी होगी और दूसरी पंक्ति बनी होगी "गोली मारी फाखता।" स्वच्छन्द कल्पना की उड़ान फिर भी न रुकी तो किसी ने कह दिया होगा "गोली गई रेल में" जब तीन पंक्तियाँ इस प्रकार बन गईं तो एक चौथी पंक्ति को भी किसी ने जोड़ दिया होगा "पंडित जी गए जेल में" इस प्रकार चार ऊटपटाँग पंक्तियों का एक बाल गीत बन गया—

पंडित जी पंडाखता।
गोली मारी फाखता ॥
गोली गई रेल में।
पंडित जी गए जेल में ॥

इन चारों पंक्तियों में कोई युक्तिसंगत भाव नहीं व्यक्त किया गया है, न चारों को मिला कर पढ़ने से किसी निश्चित भाव का बोध होता है। पर बच्चों के मनोरंजन के लिए यह अर्थहीन पंक्तियाँ भी वह काम करती हैं जो समझदारी, होशियारी से लिखा हुआ कोई रस-पूर्ण बाल गीत।

हरिद्वार के छोटे-छोटे बच्चों को मैंने स्वयं गलियों में चीख-चीख कर चिल्लाते सुना है—

बोलो गंगा जी की जै।
लड्डू चार कचौरी छै ॥

हरिद्वार गंगा का नगर है। गंगा के बिना उसका कोई महत्व नहीं। कदम-कदम पर वहाँ भक्तों के मुँह से गंगा माई या गंगा मैया की जय और स्तुति गान सुनने को मिलते हैं। अतएव छोटे बच्चे भी इस वातावरण में आप से आप चिल्लाने लगते हैं बोलो गंगा जी की जै। पर बच्चे स्वाभाविक रूप से किसी भावभरी बात या अन्य किसी वस्तु की बजाय अपने खाने-पीने की वस्तुओं को ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। खेलने के खिलौने के प्रति भी उनका प्यार दूसरे नम्बर पर ही आता है। हरिद्वार में जगह-जगह ब्राह्मण पंडे जिमाये जाते हैं और उन्हें लड्डू पूरी कचौरी खाने को दी जाती हैं इसलिए बच्चों को खाने की वस्तुओं में उनका ही ध्यान हो जाना भी नितान्त स्वाभाविक है। जै की तुक छै से जोड़ी जा सकती है और वह कचौरी या पूरी ही हो सकती है जो परोसे में गिन कर दी जाती हैं। अतएव बच्चों ने लड्डू चार कचौरी छैः कह कर इस तुकबन्दी को पूरा कर लिया होगा।

किसी विशेष भू-भाग नहीं भारतवर्ष में प्रायः सभी भू-भागों के बच्चों में प्रचलित एक अलिखित गीत की दो पंक्तियाँ हैं—

एक जानवर ऐसा।
जिसकी दुम पर पैसा ॥

यह बच्चों के मन में सरल कौतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए दो अत्यन्त भावपूर्ण पंक्तियाँ हैं। मोर के पंखों पर बने गोल-गोल रंगीन चिह्नों की उपमा पैसे से देकर बच्चों को मोर का बोध कराया गया है। देखने में यह पंक्तियाँ पहेली जैसी लगती हैं पर जिन बच्चों ने मोर या मोर का चित्र देखा है उन्हें इनका भाव ग्रहण करने में तनिक भी देर नहीं लगती। कुछ बच्चों ने इन्हीं पंक्तियों को बरसात के दिनों में बार-बार चमक कर छिप जाने वाले जुगनू पर घटित करके इस प्रकार बना लिया है—

एक जानवर ऐसा।
जिसकी दुम में गैसा ॥

जुगनू को जिन्होंने पास से देखा है वह यह समझते हैं कि उसकी दुम में होने वाली चमक की कितनी सजीव कल्पना उसे गैस कह देने से की जा सकती है। गैस को गैसा कह देना छन्द शास्त्र की दृष्टि से कोई अनहोनी बात नहीं। संस्कृत में किसी कवि ने कहा है 'अपि माषं मषं कुर्यात छन्दो भंगं न कारयेत' अर्थात् माष को चाहे मष कर दिया जाए पर छन्द भंग नहीं करना चाहिए और तुलसी दास ने तो रामचरित मानस में ऐसा पूरी स्वतन्त्रता के साथ किया है।

इसी प्रकार और भी बहुत से अलिखित बाल गीत की पंक्तियाँ हैं जिन्हें बच्चे मनोरंजन के लिए खेल-खेल में गाते दुहराते रहे हैं। बच्चों का एक खेल कोड़ा जमाल साई होता है जिसमें बच्चे एक घेरा बना कर बैठ जाते हैं। एक लड़का हाथ में कपड़े का एक हंटर लिए हुए सब के पीछे-पीछे घूमता है। वह किसी एक के पीछे उस हंटर को चुपके से रख देता है। घेरे में से कोई बच्चा यदि पीछे मुड़ कर देखता है तो वह उसी हंटर की मार खाता है। इसी भाव को लेकर बच्चे इस खेल में जब बारीबारी से हंटर लेकर घूमते हैं तो इन पंक्तियों को दुहराते जाते हैं। 'कोड़ा जमाल साई पीछे देखा मार खाई' यह कोड़ा

जमाल साईं क्या है इसे तो कोई इतिहास की खोज करने पर ही बता सकता है। पर जमाल साईं जमाल शाही का बिगड़ा हुआ रूप है जिसका अर्थ होता है शहंशाह का जमाल (प्रताप या तेज) धारण करने वाला।

बच्चों का एक खेल कबड्डी भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है। अब तो इसकी प्रथा उठती जा रही है पर किसी समय यह बड़े उत्साह-उमंग के साथ खेला जाता था। इस खेल में बच्चों के दो दल एक सीमा-रेखा के दोनों ओर डट कर खड़े हो जाते थे। एक दल का एक बालक कुछ ऊटपटाँग शब्द बोलता हुआ सीमा को पार कर दूसरी ओर जाता था और दूसरे दल के लोग उसे घेर कर पकड़ लेने का प्रयत्न करते थे। वह यदि किसी को छू कर फिर अपनी सीमा में लौट आता था तो उस छू जाने वाले को खेलने का अधिकार नहीं रहता था। पर यदि वह पकड़ा जाता था तो उसका दल अपनी पराजय स्वीकार कर लेता था। जो एक व्यक्ति सीमा का उल्लंघन करके दूसरे की सीमा में जाता था वह कुछ अनोखी पंक्तियाँ कहता जाता था—

छल कबड्डी आल ताल
मेरी मूछें लाल लाल
मर गये बिहारी लाल

इन पंक्तियों का कोई अर्थ न हो पर खेल में एक समा बाँध देती थीं। बिहारीलाल यहाँ किसी विशेष बिहारीलाल नाम के व्यक्ति के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। प्रत्येक वह व्यक्ति जो छुआ जा कर खेल से निकाल दिया जा सकेगा बिहारी लाल नामधारी हो सकता है और उसके मर जाने का अर्थ भी चिता सँजोकर मर जाने का नहीं है। मर जाने का अर्थ खेल से बहिष्कृत हो जाना ही है।

बच्चों का एक ऐसा ही बाल गीत है—

डुन्दी लाल
चने की दाल
उड़ गई चुटिया
नैनी ताल
सर पर रह गये
बाल ही बाल

यह बाल गीत कब और कैसे बना लिया होगा यह कहना कठिन है पर भावों का कोई तारतम्य न होते हुए भी यह बच्चों का उतना ही मनोरंजन करता है जितना कोई भी भावपूर्ण बाल गीत।

इसी प्रकार 'चूहा भाग बिल्ली' आई तथा 'तेरी धूप मेरी छाया' बच्चों के खेलों के बाल गीतों की ही प्रथम पंक्तियाँ हैं। नव दुर्गा के दिनों में जब उत्तर प्रदेश, राजस्थान और पंजाब के कुछ प्रदेशों के बच्चे टेसू को हाथ में लिए शाम के समय घर-घर गाते फिरते हैं तो इस प्रकार के बाल गीत गाते हैं जिनकी पंक्तियाँ हैं—

टेसू राजा आए द्वार।
खोलो रानी झमम किवार ॥ इत्यादि

अथवा

आसमान में उड़े पतंग।
जिसमें नौ सौ नब्बे रंग॥

बच्चों में बहुत प्राचीन एक दो पंक्तियों की कविता और है जिसे बच्चों के मुख से प्रायः सुना जाता है—

खेलोगे कूदोगे होगे खराब।
पढ़ोगे लिखोगे होगे नवाब॥

यह पंक्तियाँ इस बात को प्रकट करने वाली हैं कि जब देश में नवाबों का शासन-काल था बच्चे यह समझते थे कि पढ़ने-लिखने से ही वह नवाब के समान प्रतापी शासक हो सकते हैं और खेलने-कूदने में मन लगाने से वह खराब हो जायेंगे। इन्हीं पंक्तियों को शैतान बालक उलट कर इस प्रकार से दुहराते पाये जाते हैं—

पढ़ोगे लिखोगे होगे खराब।
खेलोगे कूदोगे होगे नवाब॥

आधुनिक काल में नवाब की वह सामाजिक स्थिति नहीं जो प्राचीन काल में थी। राजा-नवाबों को जनता के प्रजातन्त्र राज्य में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा है। सामन्तशाही मिट गई राजा-नवाब जनसाधारण या उनसे भी हीन मनुष्यों की स्थिति में पहुँच चुके हैं। अतएव आज-कल के बच्चों को पढ़-लिख कर नवाब बनने की कोई आकांक्षा नहीं। इसीलिये बच्चों को पढ़-लिख कर नवाब बनने की बात कोई प्रेरणा नहीं दे सकती और उन्होंने मूल पंक्तियों का यह उल्टा कर दिया है।

बच्चों के लिए लिखी जाने वाली लोरियों के क्षेत्र में भी बहुत सी पंक्तियाँ ऐसी हैं जो जाने कब से बाल-समाज में प्रचलित चली आई हैं। आज भी वह उनकी लोरियों के लिए बहुत उपयुक्त और प्रेरणा देने वाली पंक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए हम इन पंक्तियों को ले सकते हैं—

निंदिया कहाँ देर तू ने लगाई।

या

चन्दा मामा दूर के।
बड़े पकाये बूर के॥ इत्यादि

अलिखित बाल गीतों की यह परम्परा समाज में सदा से प्रचलित रही है और जब तक मनुष्य समाज संगठित रूप में पृथ्वी तल पर विद्यमान है हमारे समाज में प्रचलित रहेगी। जो कुछ यत्न करके लिखा जाता, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होता या पुस्तकों में संकलित होकर सामने आता है केवल वही बाल गीत साहित्य नहीं है। बाल गीतों का क्षेत्र लिखित बाल गीतों के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक और भरा-पुरा है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अलिखित बाल गीतों का क्षेत्र अपने अलग-अलग वर्ग, समाज और सीमाओं के प्रभाव से अलग-अलग रूप लिए हुए होता है। आवश्यकता यह है कि हम उस अलिखित बाल गीत साहित्य का उसी प्रकार से संकलन अध्ययन करें जैसे हमने लोक गीत साहित्य का किया है। बिना इसके हमारा बाल गीत साहित्य अधूरा ही रहेगा।

४ : बहुत छोटे बच्चों के लिए कविता

बहुत छोटे बच्चों के लिए मनोरंजक कविता लिख लेना बड़े बच्चों के लिए कविता लिखने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। छोटे बच्चों का स्वभाव इतना चंचल और मनोभावनाएँ इतनी उलझी हुई होती हैं कि बड़े उन्हें प्रायः आसानी से समझ भी नहीं पाते। उन उलझी हुई भावनाओं में रमकर और अपने गंभीर स्वभाव में उनके स्वभाव की जैसी चंचलता भरकर, उनके राग-द्वेष को उनकी-सी अस्फुट भाषा में व्यक्त कर सकना सरल कार्य नहीं है। बड़े बच्चों की भावनाएँ अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होती हैं। वह भावना और विचारों का तारतम्य भी कुछ-कुछ समझने लगते हैं। उनके मन इतने चंचल भी नहीं होते कि एक विषय पर पल भर से अधिक टिक न सकें। इसलिए उनकी भावनाओं को बहुत छोटी आयु के बच्चों की भावनाओं की अपेक्षा आसानी से आत्मसात करके उनकी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। बड़े बच्चों को सुसंस्कृत और शिक्षित बनाने की भावना से प्रेरित कविताएँ भी लिखी जा सकती हैं क्योंकि उनमें थोड़ी बहुत समझ का आना प्रारम्भ हो जाने से वह उनसे लाभ उठा सकते हैं। पर कविता का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही होता है। और बड़े बच्चे भी उपदेशात्मक या ज्ञानवर्धन करने वाली कविताओं को उतना पसन्द नहीं करते जितना सरल मनोरंजन करने वाली कविताओं को। बड़ों को ही जब कविता या उपन्यास में भले से भले सिद्धान्त, ज्ञान और उपदेश की बातें उतनी अच्छी नहीं लगतीं जितनी रस और राग की बातें लगती हैं तो बहुत छोटे बच्चे भला किस प्रकार अपने स्वभाव और मन के प्रतिकूल कविता द्वारा उपदेश-ज्ञान की बातों को ग्रहण कर सकते हैं। बहुत से शिक्षाशास्त्री जिन्हें बच्चों को माँ के गर्भ से ही गीता, रामायण, कुरान या बायबिल के वाक्य कंठस्थ करा देना शिक्षा की पहली सीढ़ी मालूम होता है, उन्हें मेरी इस प्रकार की बातें, सम्भव है, अच्छी न लगें। पर आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के अध्ययन ने यह सिद्ध कर दिया है कि जो शिक्षा बालक की विकास की स्थिति का बिना विचार किये दी जाती है वह पत्थर पर ढुलक गये वर्षा के पानी की तरह कुछ भी उपजाने में समर्थ नहीं होती। जिस आयु के बच्चों के लिए कविता का उल्लेख मैं यहाँ कर रहा हूँ वह बच्चों के खेल-कूद, खा-पीकर अपने तन-मन को स्वस्थ बनाने और अपने में मन को एकाग्र करने की शक्ति उत्पन्न करने की अवस्था है। इसलिए इस अवस्था में असंगत और अनर्गल होते हुए भी जिस कविता में बच्चे का मन रमे वही कविता उसके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हितकारी और उसमें मन को एकाग्र करने की शक्ति का विकास करने वाली होती है। ऐसे बच्चे के लिए लिखते समय कवि अधिक से अधिक इस बात का ध्यान रख सकता है कि उसकी लिखी कविता बच्चे में कुरुचि या कुटेव उत्पन्न करने वाली न हो।

हिन्दी में बच्चों के लिए लिखा गई कविताओं को देखने से ज्ञात होता है कि वह अधिकतर बड़े बच्चों के लिए लिखी गई कविताएँ हैं। जो बच्चे स्कूलों में साल दो साल पढ़कर एक-दो परीक्षाएँ पास कर चुके होते हैं, जिन्हें भाषा और व्याकरण का भी प्रारम्भिक ज्ञान होता है वही बच्चे उन कविताओं को पढ़ या सुनकर उनमें रस ले सकते हैं।

लेकिन जो बच्चे किसी स्कूल में प्रविष्ट नहीं हुए, न किसी शिक्षक से पढ़े, जिन्हें अभी पुस्तक भी सीधी ओर से खोलना नहीं आता, वह उन कविताओं में कोई आनन्द नहीं पा सकते। उन बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए जिस प्रकार की कविताएँ चाहिये उनकी पहली विशेषता यह है कि वह आकार-प्रकार में छोटी से छोटी हों। बड़ी होते ही पढ़ते या सुनते हुए उनका मन उचटने लगता है और उनका ध्यान कहीं से कहीं चला जाता है। उनके लिए सबसे उपयुक्त कविता वह है जो अधिक से अधिक चार पंक्तियों की हो। जो एक मिनट में सुनते ही आनन्द देने का अपना कार्य समाप्त कर दे। उस कविता के भाव या भाषा में कोई चमत्कार होने की आवश्यकता नहीं। वह उतनी ही सरल होना चाहिये जितना उनका चंचल स्वभाव होता है। कोई उपमा उत्प्रेक्षा वह अपनी इच्छा से खोज नहीं सकते। सीधी-सादी बात सीधे-सादे ढंग से कही हुई ही उन्हें अपनी बात मालूम पड़ती है। उनकी कविता के विषय भी नदियाँ, पहाड़, जंगल और आसमान नहीं हो सकते। इन चीजों से उनका अपना कोई रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता। वह अपने घर के कुत्ते, बिल्ली, चूहे, बन्दर और चिड़ियों से ही परिचित होते हैं और उन्हीं के बारे में कही गई बात उनकी समझ में आ सकती है।

हिन्दी में बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए लिखी गई पुस्तकें नहीं के बराबर हैं। बच्चों की पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके लिए उपयुक्त कविताएँ नहीं छपतीं। जब विद्वान सम्पादक ही उनका मूल्य आँक सकने में असमर्थ होते हैं तो केवल पैसे वाले प्रकाशक उनको प्रकाशित करने का साहस कैसे कर सकते हैं। इस दृष्टि से हम आज जब हिन्दी में बाल कविता साहित्य को देखते हैं तो लगता है कि बड़े बच्चों के लिए इतना अधिक साहित्य प्रकाशित हो रहा है कि पढ़ते-पढ़ते उन्हें कहीं अपच न हो जाय और बहुत छोटी आयु के नन्हें-मुन्ने अपने मनोरंजन करने वाले साहित्य के लिए भूखे-प्यासे तड़प रहे हैं।

कुछ इने-गिने कवि ऐसे हैं जिन्होंने बहुत छोटे बच्चों के उपर्युक्त अभाव की ओर कुछ ध्यान दिया है। पुरानी पीढ़ी के बच्चों के कवियों—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्री कामता प्रसाद गुरु, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री सुदर्शनाचार्य, श्री मुरारी लाल शर्मा 'बाल बन्धु', प्रो० मनोरंजन एम० ए०, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पं० ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल, ठाकुर श्री नाथ सिंह, पं० सोहन लाल द्विवेदी, श्री स्वर्ण सहोदर इत्यादि में से केवल दो-चार ही ऐसे हैं जिन्होंने दो-चार पंक्तियाँ उन अबोध बच्चों के लिए लिखने की कृपा की है। और दो-चार पंक्तियाँ भी कोई एक सम्पूर्ण कविता के रूप में नहीं बल्कि उनकी बड़ी-बड़ी कविताओं में कहीं-कहीं पर दो-चार पंक्तियाँ ऐसी आ गई हैं जिन्हें बहुत छोटे बच्चे अपनी पूरी कविता कह सकते हैं। हरिऔध जी की पूरी पुस्तक 'चाँद सितारे' में कहीं दो-चार पंक्तियाँ भी ऐसी नहीं जिन्हें छोटे बच्चे अपनी कविता कह सकें। पं० राम नरेश त्रिपाठी के बाल गीत संग्रह 'मनमोहन' में कहीं-कहीं कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं जो भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से बहुत छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। जैसे—

बिन्नू की गाड़ी।
बिन्नू अनाड़ी॥
ले चला अगाड़ी।

आ गई पहाड़ी ।।
छूट गई गाड़ी ।
लुढ़की पिछाड़ी ।।
पड़ी एक झाड़ी ।
फँस गई साड़ी ।।
रुक गई गाड़ी ।
लाओ कुल्हाड़ी ।।
काटेंगे झाड़ी ।

इस कविता की अंतिम दो पंक्तियाँ लेखक का संदेश देने वाली और बच्चों में आत्म-विश्वास उत्पन्न करने वाली हो सकती हैं, पर जिन बच्चों के लिए यह लिखी गई हैं उनकी कविता में यह अगर न होती तो भी कोई कमी न होती। ठाकुर श्रीनाथ सिंह की पुस्तक 'पिपहरी' में बरात शीर्षक कविता की यह पहली चार पंक्तियाँ बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए उपयुक्त होतीं यदि इसके आगे की पंक्तियाँ बिल्कुल लिखी ही न गई होतीं—

मुन्नू मुन्नू छत पर आजा।
बजने लगा द्वार पर बाजा ।।
पीं पीं पीं पीं ढम ढम ढम ढम ।
खिड़की पर से देखेंगे हम ।।

इसी प्रकार बिल्ली शीर्षक कविता की भी पहली चार पंक्तियाँ बहुत छोटे बच्चों के लिए अपने में पूर्ण एक पूरी कविता है—

ओ री बिल्ली बड़ी चिबिल्ली
क्या तूने देखी है दिल्ली ?
क्यों करती है म्याऊँ म्याऊँ ?
क्या मैं चला यहाँ से जाऊँ ?

भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से बहुत छोटे बच्चों के लिए उपर्युक्त कविता के यह पद उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पंडित सोहन लाल द्विवेदी की 'शिशु भारती' पुस्तक की चिड़ियाँ शीर्षक कविता की अन्तिम चार पंक्तियाँ भी ऐसी ही एक सम्पूर्ण कविता है—

फुदक फुदक कर आतीं चिड़ियाँ।
चह चूँ चह चूँ गातीं चिड़ियाँ ।।
फर फर पर फैलातीं चिड़ियाँ।
फुर फुर फुर उड़ जातीं चिड़ियाँ ।।

द्विवेदी जी ने यदि इससे पूर्व की तमाम पंक्तियाँ लिखने का कष्ट न किया होता तो भी यह चार पंक्तियाँ बच्चों के लिए अमर कविता बनकर सदैव याद की जातीं।

हिन्दी के पुराने बाल गीतकार कवियों में डा० विद्याभूषण 'विभु' ने सबसे पहिले विशेष रूप से छोटे बच्चों के लिए कुछ सरल तुकबन्दियाँ लिखीं। उनके संग्रहों 'चन्दा' तथा 'बबुआ' की अनेक रचनायें इसकी प्रमाण हैं। उनमें वह सरल मनोरंजक

तत्व विद्यमान हैं जिनके कारण वह बच्चों को अच्छी लग सकती हैं। उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

कू कू कू कू कोयल बोली ,
राजा जी के बाग से।
कू कू कू कू कोयल बोली ,
मीठे मीठे राग से।।

या

गली गली में भों भों भों भों ,
बिगुल बजाता भोला।
भड़की गैया—भों भों भों भों ,
उड़ी चिरैया—भों भों भों भों ,
चौंका भैया—भों भों भों भों ,
कुत्ता भों भों बोला।।

या

जिसने मेरा चना चबाया।
और नहीं कुछ उसको भाया।।
मेरी है मशहूर दुकान।
खाता सारा हिन्दुस्तान।।
चना जोर गरम है।
चुर मुर।।

श्री स्वर्ण सहोदर जी ने भी इस क्षेत्र में कुछ सुन्दर प्रयोग किये हैं। उनकी पुस्तक 'चगन मगन' के तो सारे बाल गीत मात्रा रहित शब्दों में ही लिखे गये है।

बन चगन मगन।
रह चगन मगन।।
उठ कसरत कर।
आलस मत कर।।
तन मन गरदन।
रख चगन मगन।।
बन चगन मगन।
रह चगन मगन।।

उनके 'गिनती के गीत' संग्रह का पहला गीत है—

एक खिलाड़ी तगड़ा है।
एक पैर से लँगड़ा है।।
बूढ़ा एक पुराना है।।
एक आँख से काना है।

एक बिलैया ऊँची है।
एक कान से बूँची है।।

इसी संग्रह का एक दूसरा गीत है—

एक खवैया दो परसैया,
एक परोसे बड़ा सुहारी।
एक परोसे सब तरकारी।।
राम भरोसे खाय खवैया।
एक खवैया दो परसैया।।
एक परोसे दायें बायें।
एक परोसे बायें दायें।।
हँसे देख कर लोग लुगैया।
एक खवैया दो परसैया।।

विभु जी तथा स्वर्ण सहोदर जी के इन गीतों में बच्चों का मनोरंजन तो होता है किन्तु इन्हें पढ़-सुनकर ऐसा अवश्य लगता है कि किसी बड़े ने इन्हें बच्चों के लिए लिखा है।

नई पीढ़ी के कवियों में बहुत छोटे बच्चों की कविता के क्षेत्र में जिन्होंने कुछ आगे कदम बढ़ाया है वह श्री रामकृष्ण शर्मा खद्दरजी, स्वर्गीय डा० सुधीन्द्रजी, श्री सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ, श्री अंशुमाली, श्रीमती शकुन्तला सिरौठिया तथा श्रीमती कामिनी दीदी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सब कवियों में खद्दरजी का अपना एक अलग विशिष्ट स्थान है। वह बच्चों के लिए लिखते नहीं और न अपनी कविताओं के प्रकाशन की ओर ही अधिक ध्यान देते हैं। बच्चों के साथ रहते बसते उनकी हँसी-खुशी में शामिल होकर वह कभी-कभी कुछ तुकबन्दियाँ जोड़ दिया करते हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में वह स्वाभाविक सरलता परिव्याप्त मिलती है जो बहुत छोटे बच्चों की कविता की प्राण हैं। बच्चों के मनोभावों की उलझन और उनके स्वभाव की चंचलता उनकी कविताओं में अत्यन्त मनोरंजक ढंग से व्यक्त हुई हैं—

आलू की पकौड़ी दही के बड़े।
मुन्नी की चुन्नी में तारे जड़े।।
मूँग की मगौड़ी कलमी बड़े।
मंगू की छत पर दो बन्दर लड़े।।
खस्ता कचौड़ी काँजी के बड़े।
गप्पू जो फिसले तो उलटे पड़े।।

एक दूसरी कविता है—

छुट्टी हुई खेल की।
चढ़ी कढ़ाई तेल की।।
सुर सुर उठता बुलबुला।
छुन छुन सिकता गुलगुला।।

भुरभुरा और पुलपुला।
बड़े मजे का गुलगुला।
गुलगुला जी गुलगुला।
मीठा मीठा पुलपुला।।

इन कविताओं में न भावों का कोई तारतम्य है न भाषा का सौष्ठव, पर चंचल अबोध हृदय की भावनाओं की जितनी सुन्दर अभिव्यक्ति इन कविताओं में है उतनी अन्यत्र मिल सकना कठिन है।

इसी प्रकार बच्चों के सरल मनोभावों को सरलता के साथ छूती हुई कुछ कवितायें श्री टीकाराम सिंह सूर्यवंशी 'अंशुमाली' तथा श्री सत्य प्रकाश कुलश्रेष्ठ की हैं। श्री सत्य प्रकाश कुलश्रेष्ठ की एक लम्बी कविता की प्रथम कुछ पंक्तियाँ हैं—

गिल्ली डंडा गेंद न गोली।
नहीं साथ बच्चों की टोली।।
तब तो चलो कबड्डी होली।
अब क्या खेलें यह बतलाओ।।
एक बात है हाल की,
डोली डंडा पालकी,
जय कन्हैया लाल की।

यह भी छोटी आयु के बच्चों के लिये एक पूरी कविता मानी जा सकती हैं। सत्य प्रकाश जी के कुछ और भी बहुत सफल प्रयास इस दिशा में हुए हैं—

गया खेत में बन्दर भाग।
चुट्टर मुट्टर तोड़ा साग।।
आग जलाकर चट्टर मट्टर।
साग पकाकर खद्दर बद्दर।।
सापड़ सूपड़ खाया खूब।
पोंछा मुँह उखाड़ कर दूब।।
चलनी बिछा ओढ़कर सूप।
डटकर सोये बन्दर भूप।।

मैंने भी बहुत छोटे बच्चों के लिये लिखने में कुछ प्रयास किये हैं—

माँ, मैं पढ़ने जाऊँगा।
लौट देर में आऊँगा।।
तब मैं खाना खाऊँगा।
खा पीकर सो जाऊँगा।।
चिड़िया कहती टी टुट टुट।
मुझको भी दे दो बिस्कुट।।

भूखी हूँ में खाऊँगी।
खा पीकर उड़ जाऊँगी।
एक शहर है टिम्बक टू।
लोग वहाँ के हैं बुद्धू॥
बिना बात के ही ही ही।
बिना बात के हू हू हू॥

हिन्दी में फिर भी बिल्कुल प्रारम्भिक अवस्था के बहुत छोटे बच्चों के हृदयों को प्रफुल्लित करने वाली छोटी-छोटी कविताओं का बड़ा अभाव है। लोग बड़ों की बड़ी-बड़ी बातों में फँसकर प्रायः छोटे बच्चों की आवश्यकताओं को भूल जाते हैं। पर आज जब हमारे देश के कलाकार भिन्न-भिन्न कला क्षेत्रों में आगे बढ़कर अपनी-अपनी कलाओं का विकास कर रहे हैं तो बच्चों के लिये लिखने वाले कवि छोटी-से-छोटी आयु के बच्चों के लिये लिखकर छोटी-छोटी कविताओं का ढेर क्यों नहीं लगा देते।

———

५ : चान्द तारों के बालगीत

आकाश के चान्द तारे अनादि काल से पृथ्वी के मनुष्यों के लिये कौतूहल और जिज्ञासा के विषय रहे हैं। संसार की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में कवियों ने हजारों-लाखों प्रकार की कल्पनाएँ उनके विषय में की हैं। ज्योतिष के विद्वानों ने उनकी गति-विधियों का अध्ययन करके उनके शुभाशुभ परिणामों का वर्णन किया है। पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार—"आज से करोड़ों वर्ष पूर्व सूर्य अकेला ही आकाश में चक्कर लगा रहा था। अचानक उससे भी बड़ा एक सूर्य घूमता-फिरता उसके पास से आ निकला। उसके पास से निकलने के कारण हमारे सूर्य की सतह से कुछ गैस एक बड़ी लहर के रूप में उठी और सूर्य से अलग हो गई। बड़ा सूर्य उस लहर को अपने साथ न ले जा सका और उसे छोड़ कर आगे बढ़ गया। धीरे-धीरे वह लहरें जो गैसों की शक्ल में थीं और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही थीं टूट कर अलग होती और ठंडी पड़ कर जमती गईं। आखीर में वह उन ग्रहों के रूप में बदल गईं जिन्हें हम अपने सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हुए देखते हैं। उन्हीं ग्रहों में से पृथ्वी एक है।

चान्द हमारी पृथ्वी का ही एक टुकड़ा है। अब से कई करोड़ वर्ष पहले जब पृथ्वी भयानक तेजी से घूमती हुई सूर्य के चारों ओर चक्कर लगा रही थी धीरे-धीरे वह सिकुड़ने लगी और नारंगी की शक्ल की बन गई। उसी समय में उसका एक टुकड़ा टूट कर अलग हो गया मगर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उसे रोके रही। वही टूटा हुआ टुकड़ा चान्द है जो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति में बँधा हुआ हर समय उसके चारों ओर घूमता रहता है। वह पृथ्वी से लगभग ढाई लाख मील दूर है। आज के तेज से तेज वायुयान यदि आकाश की ऊपरी सतहों पर लगातार उड़ते रह सकें तो लगभग एक महीने में चान्द पर पहुँच सकते हैं। चान्द हमारी पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है किन्तु वह इस तरह से घूमता है कि उसका एक ही रुख पृथ्वी की ओर रहता है। उसका दूसरा रुख आज तक कोई नहीं देख सका। सूरज की भाँति चान्द में भी काले धब्बे दिखाई देते हैं। बड़ी दूरबीन से देखने पर मालूम होता है कि यह धब्बे वास्तव में बड़े-बड़े मैदान हैं, जिनमें बड़े-बड़े गड्ढे और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। चान्द का घेरा पृथ्वी के घेरे के लगभग पचासवें भाग के बराबर है। उसका वजन पृथ्वी के वजन के ८०वें भाग के बराबर है। उसकी आकर्षण शक्ति भी पृथ्वी से बहुत कम है। यदि चान्द पर किसी दो मन वजन के आदमी को ले जाकर तोला जावे तो उसका वजन दस सेर होगा। चान्द पर जो पहाड़ हैं वह पृथ्वी के पहाड़ों की तरह ही ऊँचे हैं। आदमी अगर चान्द पर पहुँच भी जाये तो जिन्दा नहीं रह सकता क्योंकि वहाँ साँस लेने तक के लिये हवा नहीं है। हवा न होने से वहाँ कुछ सुनाई भी नहीं देगा। चान्द पर पहुँच कर आदमी जीवित रह भी जाये तो वह इतना हलका होगा कि मामूली कदम भी उठायेगा तो उसके डग १५–१६ फुट के होंगे और जरा-सी छलांग में वह पचास फुट की ऊँचाई तक उछल जायेगा। चान्द के जिस भाग पर

सूरज का प्रकाश पड़ता है वहाँ गर्मी बहुत होती है और जो भाग सामने नहीं होता वहाँ बहुत ठंडक होती है। वहाँ दिन में कड़ी गर्मी और रात में खून जमा देने वाली सर्दी पड़ती है।

सूरज और चान्द के अतिरिक्त जो चमकते हुए पिण्ड हमें आकाश में दिखाई देते हैं उन सब को तारे कहते हैं। वैज्ञानिकों ने उन्हें ग्रह, उपग्रह और तारों की श्रेणियों में बाँटा है। ग्रहों और तारों में यह अन्तर है कि तारे एक दूसरे के आकर्षण में बँध कर नहीं चलते पर ग्रह तारों के आकर्षण में बन्ध कर चलते-फिरते हैं। वे कभी एक तारे के पास पहुँच जाते हैं कभी दूसरे तारे के; और एक दूसरा अन्तर यह भी है कि तारे हमारे सूरज की तरह ही तपते रहते हैं और स्वयं अपनी चमक से चमकते हैं। ग्रह ठंडे होते हैं। उन पर जब सूर्य का प्रकाश पड़ता है तभी वह हमें दिखाई देते हैं। सूरज एक तारा है क्योंकि वह आप किसी तारे के आकर्षण में बँधकर नहीं चलता। पृथ्वी ग्रह है क्योंकि वह सूर्य के आकर्षण में बँध कर सूरज के ही चारों ओर चक्कर लगाती है। चान्द न ग्रह है न तारा वह पृथ्वी का एक टुकड़ा है और पृथ्वी के चारों ओर ही चक्कर लगाता है इसलिये उसे उप-ग्रह कहा जाता है।"

वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर चान्द तारों के विषय में अनेक तथ्य उपलब्ध होते हुए भी संसार के मनुष्यों में अनेक धारणायें और विश्वास अनादि काल से ही प्रचलित हैं। यह तो संसार के मनुष्यों का एक सर्वमान्य विश्वास-सा है कि चान्द-तारे अपनी गति-विधि से मनुष्यों के भाग्यों का निर्माण करते हैं। जो विद्वान मनुष्य उनकी गति-विधि का विशेष ज्ञान रखते हैं वह भाग्यों के उस लेखे को पढ़ सकते हैं और इसीलिये मनुष्यों के भविष्य के विषय में भी पहले से ही बता सकते हैं। भारतवर्ष में बच्चे के पैदा होते ही पण्डित लोग उसका जन्म-पत्र बना देते हैं। और फिर उसके जीवन भर के सारे महत्वपूर्ण कार्य उसी पर विचार करके किये जाते हैं। चान्द-तारों की गति-विधियाँ संसार के मनुष्यों को प्रभावित करती हैं इससे इनकार नहीं किया जा सकता। पर यदि उन्हीं के अध्ययन के आधार पर प्रत्येक मनुष्य के भविष्य के विषय में निश्चित रूप से पहले से ही बता दिया जा सके तो उनके नित नये साहसपूर्ण कार्यों को करते हुए जीने का उत्साह ही फीका पड़ जाये और जीवन जीने योग्य ही न रहे।

इसी प्रकार तारों के विषय में एक यह विश्वास भी भारतवर्ष में बहुत प्रचलित है कि प्रत्येक अच्छे कार्य करने वाला व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त तारा बन कर आकाश में चमकने लगता है और मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के कारण पुनर्जन्म के बन्धन से छूट जाता है। इसी विश्वास के आधार पर ध्रुव तारे के विषय में यह कहा जाता है कि वह वही ध्रुव है जिसने बचपन में ही कठिन तप कर के मोक्ष पद प्राप्त किया था। लोगों का यह विश्वास उन्हें सच्चरित्र और धर्मपरायण बनाने के लिये बहुत उपयोगी है, पर यह किस वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है यह नहीं कहा जा सकता।

चन्द्रमा के उद्‌भव और जन्म के विषय में भी महाभारत इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में एक कथा अमृतमन्थन के नाम से हमें मिलती है। उसके अनुसार जब सागरमन्थन प्रारम्भ हुआ तब विष्णु भगवान ने कहा--"सब लोग पूरी शक्ति लगा कर मन्दराचल को घुमावें।" यह सुनते ही देवता और असुरों का बल खूब बढ़ गया। वह और भी वेग से सागर का मन्थन करने लगे। सारा समुद्र क्षुब्ध हो उठा। उस समय समुद्र से अगणित किरणों वाला शीतल प्रकाश से युक्त चन्द्रमा प्रकट हुआ। चन्द्रमा के बाद भगवती लक्ष्मी और सुरा देवी निकलीं। महाभारत की इस कथा का आधार भी कवि-कल्पना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और प्रमुख बालगीतकार श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय ने निम्नलिखित चन्दा मामा शीर्षक बाल गीत लिखा है--

मेरे प्यारे बड़े दुलारे।
ऐ मेरी आँखों के तारे॥
आ मैं तेरा जी बहलाऊँ।
तुझे अनूठी बात बताऊँ॥
जो है दूध समुद्र कहाता।
कढ़ीं उसी से लछमी माता॥
प्यारा चान्द चान्दनी वाला।
उसमें से ही गया निकाला॥
इसी लिये दोनों मन भाये।
जग में भाई बहन कहाये॥
जगत पिता जो माना जाता।
वह लछमीपति है कहलाता॥
इस नाते हैं सभी उमगते।
चन्दा को मामा हैं कहते॥

बड़ों की तरह बच्चों के साहित्य में भी हमें चान्द-तारों के विषय में अनेक विश्वास अभिव्यक्त मिलते हैं। चन्द्रमा में जो मैदानों और पहाड़ों के कारण पृथ्वी पर से देखने में काले-काले धब्बे मालूम होते हैं उनके आधार पर की गई अनेक कल्पनायें साहित्य में परम्परा से चली आई हैं। कहीं उन्हें सागर की परछाईं कहा गया है और कहीं बच्चों को प्रिय लगने वाला चंचल खरगोश। कहीं यह कल्पना की गई है कि चन्द्रमा में एक बुढ़िया रहती है, जो जब चान्द आकाश में निकलता है तो बैठी सूत कातती हुई दिखाई देती है और कहीं चन्द्रमा में उन धब्बों को देख कर एक हरी-हरी घास चरने वाले हिरन की कल्पना की गई है। पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने इसी कल्पना के आधार पर एक बच्चे के मुख से कहलवाया है :

मेरे पास चान्द तू आ जा।
आकर अपना खाना खा जा॥
मुझको अपना हिरन दिखा जा।
मीठी मीठी बात सुना जा॥
या
चन्दा मामा दौड़े आओ।
दूध कटोरा भर कर लाओ॥

उसे प्यार से मुझे पिलाओ।
मुझ पर छिड़क चाँदनी जाओ॥
मैं तेरा मृग छौना लूँगा।
उसके साथ हँसूँ खेलूँगा॥
उसकी उछल कूद देखूँगा।
उसको चाटूँगा चूमूँगा॥ इत्यादि

मैंने अपने एक बाल गीत में चान्द में रहने वाली बुढ़िया की कल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है:——

बूढ़ी माई, बूढ़ी माई।
उतर चान्द से नीचे आई॥
मुन्ना के घर दावत खाई।
लड्डू पूरी खीर मलाई॥
सारी चीजों को खा पी कर।
वह चल दी उड़ कर अपने घर॥
हमने उसको आते देखा।
हमने उसको जाते देखा॥
अब हम भी उड़ कर जायेंगे।
उसके घर दावत खायेंगे॥

चन्द्रमा संसार के सब देशों और सब स्थानों से एक ही रूप में सबको दिखाई देता है और सबको उसे देख कर एक ही प्रकार की प्रेरणा प्राप्त होती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में चन्द्रमा पुल्लिग है अंग्रेजी में वह स्त्रीलिंग माना जाता है। इग्लैण्ड में अधिक सर्दी पड़ने और अधिकतर रातों के कुहरे से ढके रहने के कारण वहाँ के बच्चों के लिये चन्द्रमा उतना अधिक आकर्षण का विषय नहीं है जितना भारतीय बच्चों के लिये है। इसीलिये अंग्रेजी बाल साहित्य में न तो चन्द्रमाविषयक इतने अधिक बाल गीत लिखे गये हैं जितने हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में और न कल्पनाओं की वैसी रंगीनी ही उनमें आ पाई है। भारतवर्ष तो मानो चन्द्रमा और चान्दनी के लिये ही बना हो। इतना खुला हुआ साफ चन्द्रमा कम ही देशों के आकाश में दिखाई देता होगा। यहाँ की जैसी शरद पूर्णिमा की रात तो विशेष आकर्षक होती है। वर्षा ऋतु के बाद जब आकाश धुल कर साफ हो जाता है, धूल के कण का निशान भी उसमें कहीं शेष नहीं रहता पूर्ण चन्द्र जब अपनी सोलहों कलाओं के साथ आकाश में चमकता है तो लोग घर-घर रात-रात भर जाग कर हर्षोत्सव मनाते और कथा कीर्तन करते हैं। कहते हैं कि जो उस रात की चान्दनी के प्रकाश में सुई पिरो लेता है फिर उसकी नयन ज्योति साल भर तक क्षीण नहीं होती। लोगों का यह भी विश्वास है कि उस रात को चन्द्रमा से अमृत की वर्षा होती है इसीलिये लोग सफेद चांदी के बर्तनों में खीर या दूसरी कोई सफेद खाने की वस्तु खुली छत पर या मैदान में ठीक चन्द्रमा के नीचे रख देते हैं, जिससे उस रात बरसने वाला सारा अमृत जम कर उनके बरतन में आ जाये। इसी प्रकार चैत की चान्दनी रातें भी भारतवर्ष में अत्यन्त सुहावनी और मादक हुआ करती है।

चान्दनी रातों में भारत में गांव और शहरों के [illegible] कर अपने-अपने घरों में बन्द होकर नहीं बैठ जाते। वह अपने [illegible], गलियों, सड़कों में मस्ती से भरे खेलते फिरते हैं। भारतवर्ष में बच्चों के बहुत से खेल ऐसे हैं जो केवल चान्दनी रातों में ही खेले जाते हैं। बन तीती, शाह चोर, ढाई ढप्पा और धूप छाया बच्चे प्रायः रात में चान्द निकल आने पर ही खेला करते हैं।

हिन्दी में बाल गीतों को लिखने की प्रेरणा देने वाले चन्द्रमा को अत्यन्त प्राचीन काल से चन्दा मामा कहा जाता रहा है। इस चन्दा मामा कहे जाने का क्या इतिहास है यह कह सकना तो कठिन है पर घर की स्त्रियों को अपने भाइयों के प्रति प्रेम और उसके कारण अपने बच्चों को प्रिय लगने वाले चान्द को अपने भाई का प्रतीक बना कर एक काल्पनिक सुख का अनुभव करना ही इसका मनोवैज्ञानिक कारण हो सकता है। चन्द्रमा के प्रति बच्चों के मन में होने वाले स्वाभाविक आकर्षण का वर्णन हमें प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में इसका वर्णन किया। उनका एक पद है:

बार बार जसुदा सुत बोधति आउ चन्द तोहि लाल बुलावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपुन खैहैं तोहिं खवावै॥
हाथहि पर तोहिं लीन्हें खेले नहिं कबहूँ धरती बैठावै।
जल भाजन कर लै जु उठावति याही में तनु धरितू आवै॥
जल पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो वह चन्द दिखावै।
सूरदास प्रभु हंसि मुस्काने बार बार दोऊ कर नावै॥

इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी बाल गीतों में बच्चों के चन्द्रमा को देख कर उत्सुकतापूर्वक अपने पास बुला लेने के मनोभाव बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किये गये हैं। ऊपर हम पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय के एक बाल गीत का उद्धरण दे ही आये हैं। शकुन्तला सिरोठिया जी अपने एक बाल गीत में इसी प्रकार बच्चे की ओर से आग्रह करती हैं:

झाँक रहा बादल से चन्दा अम्मा उसे बुला ले तू।
तुझको ही वह देख रहा है अपने पास सुला ले तू॥
सुबह उठेंगे एक साथ फिर मिल कर दोनों खेलेंगे।
जो कुछ भी खाने को दोगी बाँट बाँट कर ले लेंगे॥

पर इससे भी अधिक भावभरा बाल गीत श्रीमती शान्ति अग्रवाल का है जिसमें एक बच्चा माँ से बुलाने को कहने के बजाय सीधा चन्द्रमा से आने के लिये कहता है और उसे माखन रोटी खिलाने का ही नहीं नानी से परियों की कहानियाँ सुनवाने का भी लालच देता है:

चन्दा आओ माखन रोटी तुमको खूब खिलाऊँगा।
अपनी नानी से परियों की कथा तुम्हें सुनवाऊँगा॥

अपनी सबसे प्रिय दो वस्तुओं——माखन रोटी और नानी के मुख से कही गई परियों की कहानियाँ चन्द्रमा को अर्पण कर देने का वचन देने के बाद उसे ध्यान आता है कि जाड़े की इस रात में यदि चान्द सचमुच आकाश से उतर कर नीचे आ गया तो उसे अपने पास ही सुलाने का भी उसे प्रबन्ध करना होगा।

सुनते सुनते तुम सो जाना, ले लेना मेरा बिस्तर।
तुमको रोज मिठाई दूँगा फिर तुम मत जाना ऊपर॥
लाल लाल गद्दा है मेरा और रजाई है मोटी।
पँच रंगे रेशम की मेरे पास दुलाई है छोटी॥

इस पर भी जब चन्द्रमा पास आने का नाम नहीं लेता तो वह कहता है:

मुझको छोटा जान कहो क्या मेरे पास न आते हो।
कहीं न तुमसे लड़ बैठूँ क्या इसीलिये घबराते हो॥

वह फिर लालच देता है:

आओ अपने हाथी घोड़े रथ मोटर तुमको दूँगा।
अपनी फूलों की बगिया में साथ तुम्हारे खेलूँगा॥

खाने पीने की वस्तुओं के अतिरिक्त अपनी सबसे प्रिय वस्तु खिलौना भी उसे अर्पित करने का लालच देने के बाद फिर बच्चे के पास लालच देने के लिये और कोई अपनी प्रिय वस्तु नहीं रहती। पर शान्ति जी का बच्चा कलाप्रेमी होने के साथ-साथ यह भी जानता है कि चन्द्रमा को बादलों में छिप जाना अधिक अच्छा लगता है। इसीलिये वह अन्त में कहता है:

चन्दा, अम्मा ने तकिये पर बादल खूब बनाये हैं।
आँख मिचौनी करने वाले तारे भी छिटकाये हैं॥
यदि तुमको अच्छा लगता हो बादल दल में छिप जाना।
तो आओ मेरे तकिये के बादल दल में छिप जाना॥

बच्चे की मनोभावनाओं का इतना स्वाभाविक और मधुर चित्रण जैसा कि इस बाल गीत में है वैसा हमें कम ही देखने को मिलता है।

चन्द्रमा को जैसे भी हो अपने पास बुला लेने की यह भावना बच्चे की स्वयं चन्द्रमा तक पहुँच जाने की भावना के रूप में भी कुछ बाल गीतों में व्यक्त हुई है। श्री अशोक एम० ए० ने इसे अपने निम्नलिखित बाल गीत में व्यक्त किया है:

चन्दा मामा चन्दा मामा अपने पास बुलाओ।
मुझे बिठा कर अपने रथ में नभ की सैर कराओ॥
चन्दा मामा जल्दी से अब मुझे दिखाओ तारे।
चमक रहे हैं दमक रहे हैं लगते हैं जो प्यारे॥ इत्यादि

बच्चों की चान्द तक पहुँचने की इसी भावना को श्री विष्णु कान्त पाण्डेय ने इस प्रकार से व्यक्त किया है:

दौड़ो चुन्नू, आओ मुन्नू कर लो अब तुम सब तैयारी।
देखो नभ के चन्दा मामा के घर जाने की अब है बारी॥
अब तुम भी नभ में जा सकते हो, राकेट बनाया जाता।
आसमान के चन्दा जैसा नभ में चान्द उड़ाया जाता॥
चन्दा मामा खुश हैं तुमको हँस कर गले लगायेंगे वे।
चन्द्र लोक की अच्छी चीजें तुमको खूब खिलायेंगे वे॥

यह बाल गीत उन बड़े और समझदार बच्चों के लिये है जो यह जानते हैं कि राकेट में बैठ कर अन्तरिक्ष में उड़ा जाता है, और अब कृत्रिम चान्द बना कर उड़ाये जाने लगे हैं।

संसार के वैज्ञानिक अब यह दावा करने लगे हैं कि निकट भविष्य में ही मनुष्य आसानी से चान्द तक पहुँच जायेगा। अमरीका में तो चान्द की ओर उड़कर सबसे पहिले जाने वाले वायुयान में अपना स्थान सुरक्षित कराने के लिये लोगों ने पेशगी देना भी स्वीकार कर लिया है। लोग अब इस बात की कल्पना करने लगे हैं कि वह चान्द पर सबसे पहिले पहुँच कर एक नई दुनिया बसायेंगे। अपनी इस दुनिया की अव्यवस्था और उसके कारण उत्पन्न दुख-कष्टों का वहाँ नाम-निशान भी न होगा। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता होगा। भगवान और धार्मिक विश्वासों के लिये भी वहाँ शायद ही कोई स्थान हो। समय और दूरी के माप-दण्ड भी वहाँ यहाँ से भिन्न होंगे। मनुष्य को एक नया धरातल आकाश और वातावरण मिलेगा। इसलिये अब बच्चों को चान्द तक पहुँचने की काल्पनिक प्रसन्नता को व्यक्त करने वाले गीतों की ही आवश्यकता है और भविष्य में वही लिखे जायेंगे।

हिन्दी के कुछ बाल गीतों में चन्दा मामा के साथ एक मामी की भी कल्पना की गई है। प्रत्येक मामा की एक जीवनसहचरी होती है जिसे मामी कहा जाता है तो चन्दा मामा के भी एक मामी होगी ही। श्री बाबू लाल शर्मा 'प्रेम' ने यह कल्पना पूनम मामी के नाम से की है:

चन्दा मामा पूनम मामी, मामी मेरी बड़ी सुहानी।
रोज उतर परियों के रथ पर दूध नदी में भरती पानी॥
तुम्हीं कहो माँ बड़े सबेरे कहाँ ठहरती नींद नयन में।
मुझे जगा देना माँ जब चन्दा मामा चमके आँगन में॥
चन्दा मामा पूनम मामी, दोनों हैं दुनियाँ में नामी।
माँ इनके जैसा ही उजला मैं हूँगा इनका अनुगामी॥
क्या माँ यह दोनों सब को ही प्यारे लगते हैं बचपन में ?
मुझे जगा देना माँ जब चन्दा मामा चमके आँगन में॥

पूनम मामी की कल्पना निस्सन्देह बहुत मधुर है पर इस गीत में बाल स्वभावोचित सरलता और कोमलता की कमी है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने निम्नलिखित बाल गीत में मामी की कल्पना निशा के रूप में की है:

चन्दा मामा गये कचेहरी घर में रहा न कोई।
मामी निशा अकेली घर में कब तक रहती सोई॥
चली घूमने साथ न ले कर कोई सखी सहेली।
देखी उसने सजी सजाई सुन्दर एक हवेली॥
आगे सुन्दर पीछे सुन्दर सुन्दर बायें दायें।
नीचे सुन्दर ऊपर सुन्दर सुन्दर सभी दिशायें॥
देख हवेली की सुन्दरता फूली नहीं समाई।
आओ नाचें उसके जी में यह तरंग उठ आई॥
पहले वह सागर पर नाची फिर नाची जंगल में।
नदियों पर नालों पर नाची पेड़ों की ओझल में॥

फिर पहाड़ पर चढ़ चुपके से वह चोटी पर नाची ।
चोटी से उस बड़े महल की छत पर जा कर नाची ॥
वह थी ऐसी मस्त हो रही आगे क्या गति होती ।
टूट न जाता हार कहीं जो बिखर न जाते मोती ॥
टूट गया नौलखा हार जब मामी रानी रोती ।
वहीं खड़ी रह गई छोड़ कर यों ही बिखरे मोती ॥
पाकर हाल दूसरे ही दिन चन्दा मामा आये ।
कुछ शरमा कर खड़ी हो गई मामी मुँह लटकाये ॥
चन्दा मामा बहुत भले हैं बोले क्यों है रोती ।
दीया ले कर घर से निकले चले बीनने मोती ॥

इस बाल गीत में अन्धेरी रात के आने, तारों के चमकने और चन्द्रमा के उदय होने की कल्पना एक सांगोपांग कथानक के रूप में बहुत सुन्दर की गई है। कल्पना की बात को इतने मनोवैज्ञानिक और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि कोई भी बच्चा इसे रुचि से पढ़े बिना नहीं रह सकता। इसीलिये यह बाल गीत चन्द्रमा और चान्दनी से सम्बन्धित हिन्दी बाल गीतों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है और इस विषय पर लिखे गये संसार के श्रेष्ठतम बालगीतों की पंक्ति में रखा जा सकता है।

हिन्दी बाल गीतों में कुछ और भी बहुत सुन्दर कल्पनाएँ चन्द्रमा के विषय में की गई हैं। चन्द्रमा पर पड़ने वाले सूर्य के प्रकाश के कारण पूरा चान्द आकाश में चमकता हुआ हमें प्रति दिन दिखाई नहीं देता है। वह उस प्रकाश के क्षेत्र के अनुसार ही प्रतिदिन घटता-बढ़ता हुआ मालूम होता है। इसी घटने-बढ़ने की बात को ले कर श्री रामधारी सिंह दिनकर ने निम्नलिखित बाल गीत लिखा है :

एक बार की बात चन्द्रमा बोला अपनी माँ से ।
कुर्ता एक नाप का मेरी माँ मुझको सिलवा दे ॥
नंगे तन बारहों मास मैं यों ही घूमा करता ।
गर्मी वर्षा जाड़ा हर दम बड़े कष्ट से सहता ॥

इस बाल गीत में यह कल्पना की गई है कि चन्द्रमा एक बालक है। वह गर्मी, वर्षा, जाड़े में बारहों महीने नंगा रह कर कष्ट सहन करता है इसलिये अपनी नाप का कुरता सिलवा देने के लिये अपनी माँ से कहता है। चन्द्रमा के विषय में यह बालक के कुरता सिला देने की कल्पना कोई सिद्धहस्त कवि ही बच्चों के लिये कर सकता है। फिर भी यह कल्पना ऐसी है जिसे बच्चे आसानी से समझ सकते हैं। बालक चन्द्रमा की बात सुन कर माँ उसे उत्तर देती है :

माँ हँस कर बोली सिर पर रख हाथ चूम कर मुखड़ा ।
बेटा खूब समझती हूँ मैं तेरा सारा दुखड़ा ॥
लेकिन तू तो एक नाप में कभी नहीं रहता है ।
पूरा कभी कभी आधा बिलकुल न कभी दिखता है ॥

अन्त में बालक चन्द्रमा अपनी माँ से प्रसन्न हो कर कहता है :

आहा माँ फिर तो हर दिन की मेरी नाप लिवा दे ।
एक नहीं पूरे पन्द्रह तू कुरते मुझे सिला दे ॥

आकाश में चन्द्रमा को देखते हुए जब बच्चे पृथ्वी पर चलते हैं तो चान्द भी उन्हें अपने साथ-साथ चलता हुआ मालूम होता है। वह जहाँ कहीं भी जाते हैं चान्द उन्हें चलता हुआ मालूम होता है और जब रुक जाते हैं तो उन्हें मालूम होता है चान्द भी रुक गया है। बच्चों को इस बात में बड़ा कौतूहल होता है। वह यह समझते हैं कि चन्द्रमा सचमुच ही उनके साथ चलता या रुकता है। श्री आरसी प्रसाद सिंह बच्चों के इसी कौतूहल के आधार पर लिखे हुए एक बाल गीत में कहते हैं :—

हमारे साथ देखो तो अरी माँ चाँद चलता है।
निशा की गोद में मानों चपल बालक मचलता है ॥
जिधर जाते उधर ही हम उसे हँसता खड़े पाते ।
लजाता है नहीं वह तो तनिक भी सामने आते ॥
न देखा था कभी ऐसा विनोदी धृष्ट सा बालक ।
अरे वह माँगता हमसे कलम पेन्सिल घड़ी पुस्तक ॥
तनिक भी हम जहाँ उछले वहाँ वह भी उछलता है ।
हमारे साथ देखो तो अरी माँ चान्द चलता है ॥

किन्तु इस बाल गीत में निशा की गोद की कल्पना बच्चों के लिए कुछ कठिन है। चांद के सामने आते लजाने की बात भी बच्चे साधारणतया अपने मन से नहीं सोच सकते। चांद को लगातार अपनी ओर देखते रहने के कारण बच्चों का यह कहना कि वह हम से कलम, पेंसिल, पुस्तक मांग रहा है, बहुत स्वाभाविक कल्पना है। इससे ज्ञात होता है कि कवि को बालमनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान है।

चन्द्रमा की तरह ही तारों के विषय में भी बहुत से बाल गीत हिन्दी में लिखे गये हैं। पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपने तारे शीर्षक बाल गीत में तारों के विषय में अनेक कल्पनाएँ की हैं :

बिखरे मोती न्यारे हैं।
या चमकीले तारे हैं ॥
सुथरी नीली चादर पर,
सुन्दर फूल पसारे हैं।
नीले किसी चंदोवे में,
बूटे सजे सँवारे हैं।
या सुरमई बिछौने में,
टँके अमोल सितारे हैं।
हरग बाग के पौधों के,
चमक रहे फल सारे हैं।
या है बहकी आग कहीं,
फैल रहे अंगारे हैं ॥ इत्यादि

हरिऔध जी के इस गीत की भाँति और भी अनेक कल्पनायें तारों के विषय में की जा सकती है। किन्तु इस बालगीत की सब कल्पनायें बच्चों के अपने मन की कल्पनायें हैं, यह कहना कठिन है। इसी प्रकार डा० सुधीन्द्र एम० ए० ने तारों पर एक बालगीत लिखा है जो बहुत प्रसिद्ध हुआ है:

ओ किसने गिरा दिये हैं यह मधुर दही के छींटे।
धो अम्मा इन्हें नहीं तो आते ही होंगे चींटे॥
फैला दी ऊपर किसने मेरी दादी की साड़ी।
है किसने यहाँ लगाई सुन्दर फूलों की बाड़ी॥
किसने बिखेर डाले ये मेरे अनार के दाने।
चिड़ियों ने यदि देखा तो वह आ जायेंगी खाने॥
किसने बिखेर दी जा कर बादल में मेरी खीलें।
यदि इन्हें देख पायें तो आ अभी बीन ले चीलें॥ इत्यादि

पर इस बाल गीत की तारों के विषय में सारी कल्पनायें बच्चों की अपनी नहीं। मालूम होता है कवि ने बच्चों के लिये लिखने के उद्देश्य से स्वयं अपनी विचित्र कल्पनाओं को बाल गीत के रूप में बाँध दिया है।

तारों पर एक सुन्दर बाल गीत पण्डित सोहन लाल द्विवेदी का लिखा हुआ है:

प्यारे प्यारे तारे चमको।
नीचे चमको ऊपर चमको॥
नभ पर चमको, भू पर चमको॥
नदी और लहरों में चमको।
तुम लहरों लहरों में चमको।
दूर करो दुनिया के तम को।
प्यारे प्यारे तारे चमको॥
रहने दो न कहीं अँधियाली।
फैलाओ घर घर उजियाली॥
रहे न कोई कोना खाली।
रोज मनाओ तुम दीवाली॥
लाख लाख दीपों से दमको।
प्यारे प्यारे तारे चमको॥
चमको चमक लिये तुम ऐसे।
हीरे जैसे मोती जैसे॥
चमको ऐसे नील गगन में।
जैसे फूल खिले हों बन में॥
अपनी चमक लुटाओ हमको।
प्यारे प्यारे तारे चमको॥ इत्यादि

इस बाल गीत की अधिकतर कल्पनायें बाल स्वभावोचित और सरल हैं। पर तारे को चम-

कने का आदेश देने की बात कोई बड़ा ही सोच सकता है बच्चे नहीं। कवि ने शायद ऐसा इसलिये कहा है कि वह बच्चों को भी तारों के समान चमकने का आदेश देना चाहता है। इसीलिये उसने इस बाल गीत के अन्त में यह कहा ही है:—

दिखलाओ बच्चों को सपना।
प्यारा देश हमें हो अपना॥
तुम-से ही बच्चे बन जायें।
जगमग जगमग ज्योति जगायें॥
जी भर प्यार करें हम तुमको।
प्यारे प्यारे तारे चमको॥

तारे बच्चों की कविता के लिये एक ऐसा विषय हैं जिन पर बाल गीतों का लिखा जाना कभी समाप्त नहीं हो सकता। तारों के सम्बन्ध में इतनी अधिक कल्पनायें की जा सकती हैं कि जितने भी बाल गीत उनसे प्रेरणा पाकर लिखे जायें थोड़े हैं। बच्चों के मन में उठने वाली तारों के विषय में कितनी ही बातें कही जायें फिर भी एक विचित्र प्रकार की कौतूहल और जिज्ञासा का भाव सदा बना रहेगा। प्रत्येक बच्चा तारों को देख कर उन तक पहुँचना और उन्हें सुन्दर फूलों की तरह चुन कर या चमकीले पत्थरों की तरह उठा कर अपने साथ ले आना चाहता है। इसी मनोभाव को मैंने अपने निम्नलिखित बालगीत में व्यक्त किया है:

नन्हें नन्हें प्यारे प्यारे।
आसमान में बिखरे तारे॥
चुन्नू मुन्नू टुन्नू सारे।
इन को गिनते गिनते हारे॥
चमक रहे हैं चम चम चम चम।
इनके पास पहुँच जाते हम॥
तोड़ तोड़ कर जेबों में भर।
हम उन सब को ले आते घर॥
हम उनसे घर द्वार सजाते।
नहीं रात में दीप जलाते॥
तारों के उजियाले में पढ़।
हम सबसे आगे जाते बढ़॥
पूरा पाठ याद हो जाता।
कौन हमें तब डाँट बताता॥
प्यार हमें करते टीचर जी।
जिनका नाम सुभाष मुकरजी॥

आकाश गंगा और ध्रुव तारा भी तारों से ही सम्बन्धित दो ऐसे विषय हैं जिन पर बच्चों की कल्पनाओं के अनुरूप सुन्दर बाल गीत लिखे जा सकते हैं। पर आकाश गंगा पर हमें एक भी सुन्दर बाल गीत हिन्दी में लिखा हुआ नहीं मिलता। 'ध्रुवतारा' पर एक बाल गीत पं० सोहनलाल द्विवेदी का लिखा हुआ है:

सब तारे नभ पर चलते हैं किन्तु न चलता ध्रुव तारा।
सब तारे प्रण से टलते हैं किन्तु न टलता ध्रुव तारा॥
सब तारे भय से डरते हैं किन्तु न डरता ध्रुव तारा।
आसमान में लगा अचल आसन तम हरता ध्रुव तारा॥

किन्तु तारों का कौन सा वह प्रण है जिससे ध्रुव तारे के न टलने की बात इस बाल गीत में कही गई है या वह कौन सा भय है जिससे तारे डरते हैं, यह बच्चे इस बाल गीत को पढ़ कर नहीं समझ सकते। इसलिये इसे इस विषय पर लिखा उनके लिये मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रोचक बाल गीत नहीं कहा जा सकता। अपने प्रण पर अटल रहने की शिक्षा इससे बच्चों को अवश्य दी जा सकती है।

चान्द और तारों के सम्बन्ध में अनादि काल से तरह-तरह की कल्पनाओं और भावनाओं को व्यक्त करने वाले गीत लिखे गये होंगे और आगे भी लिखे जायेंगे। इन विषयों पर एक ओर कविगण नित्य नई कल्पनायें करते आये हैं और उनके आधार पर अनेक प्रकार की धारणायें और विश्वास मानव समाज में फैलते रहे हैं उसी प्रकार दूसरी ओर वैज्ञानिक लोग तरह-तरह के प्रयत्न करके नये-नये सत्यों की उपलब्धियाँ भी करते रहे हैं। चान्द-तारों, उनकी गति विधियों और इस सौर मण्डल तथा अखिल ब्रह्मांड के विषय में जितने वैज्ञानिक सत्यों की जानकारी हमें अब प्राप्त हो चुकी है उतनी अब से पहले के समय में प्राप्त नहीं थी। इन वैज्ञानिक सत्यों की पहुँच ज्यों-ज्यों संसार के बच्चों तक होती जायेगी त्यों-त्यों उनका विश्वास चान्द तारों के विषय में प्रचलित उन कल्पित कहानियों और भ्रमपूर्ण धारणाओं पर से उठता जायेगा। आज का जो बच्चा चान्द में होने वाले मैदानों, गड्ढों और पहाड़ों के कारण पृथ्वी पर से दिखाई देने वाले धब्बों के बारे में जानता है उसे चान्द में होने वाले खरगोश, हिरन या बुढ़िया की कल्पनायें सर्वथा निरर्थक और सारहीन मालूम होंगी। इसी प्रकार अमृत मंथन के समय चन्द्रमा के सबसे पहले निकलने और उसके बाद लक्ष्मी और सुरा देवी के निकलने की कपोलकल्पित कथा में भी इस वैज्ञानिक युग के बच्चों को कोई आनन्द नहीं आ सकता। यह परम्परागत कल्पनायें, धारणायें और विश्वास सार्वभौमिक भी कभी नहीं हो सकते। भारतवर्ष के बाहर के बच्चे उनके आधार पर लिखे गये बलगीत पढ़ना भी पसन्द नहीं कर सकते। भविष्य के चान्द तारों के विषय में उपलब्ध वैज्ञानिक सत्यों का आभास भी पा जाने वाले उन सत्यों के आधार पर की गई कल्पनाओं को ही अपने बाल गीतों में व्यक्त देख कर अधिक पसन्द करेंगे। इसलिये बच्चों के लिये लिखने वाले कवियों को भी उनकी आज की युग की भावना और कल्पना के अनुरूप बाल गीत ही लिख कर देना होगा तभी वह उन्हें अपनायेंगे और अपना मनोरंजन उनसे कर सकेंगे।

---

६ : हिन्दी के राष्ट्रीय बालगीत

एक भारतीय माता अपने छोटे बच्चे को निम्नलिखित पंक्तियाँ बार-बार कह कर याद करा रही थी :

भारत देश हमारा है।
हमें प्राण से प्यारा है॥
हम इस पर बलि जायेंगे।
जीवन पुष्प चढ़ायेंगे॥

बच्चा भी उन्हें माँ के साथ-साथ दुहराता जाता था। एक बार जब माँ ने कहा—'भारत देश हमारा है।' तभी बच्चे ने प्रश्न किया—'माँ! देश किसे कहते हैं?' माँ ने उसे बताया—'हम सब जिसमें रहते हैं वही हमारा देश है।' बच्चे ने तुरन्त कहा—'हम तो अपने घर में रहते हैं।' अगर कोई दूसरा मुझे यह बात सुनाता तो एकाएक विश्वास करने को मन नहीं करता। पर अपनी प्रत्यक्ष देखी और कानों से सुनी बात पर अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। मैंने माँ-बच्चे की उन बातों को सुन कर उन चार पंक्तियों में कुछ और पंक्तियाँ जोड़ दीं :

यह सुन कर मुन्ना बोला।
अज्ञानी बालक भोला॥
देश किसे कहते हैं, माँ?
हम जिसमें रहते हैं माँ?
पर वह तो अपना घर है।
या फिर यह दुनिया भर है॥

पंक्तियाँ तो लिख दीं पर सोच में पड़ कर रह गया कि जो बच्चे यह भी नहीं जानते कि देश किस चिड़िया का नाम है उन्हें देश का गुण गान करने वाले गीतों को तोते की तरह से रटा देने से क्या लाभ है? गीत गाने योग्य कविता को कहते हैं। गीत और कविता में भेद ही यह होता है कि गीत में गाने वाले की भावनाओं का साधारणीकरण इस प्रकार से होता है कि प्रत्येक सुनने वाले को वह भावनाएँ स्वयं अपनी जैसी लगने लगती हैं। कविता में कवि और श्रोता की भावनाओं की वैसी एकरूपता प्रायः नहीं भी आ पाती है। बच्चे बाल गीत में अपनी भावनाओं को बड़ों से भी अधिक आग्रह के साथ अभिव्यंजित देखना चाहते हैं। उनमें इतना धैर्य ही नहीं होता कि वह अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति न पाकर भी किसी गीत को सुनना या पढ़ना पसन्द कर लें। इसलिये जिन गीतों में उन्हें अपने मन की बात सीधे सरल ढंग से व्यक्त नहीं मिलती उन्हें बाल गीत कहना ही व्यर्थ है।

बच्चों का पंजाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंगाल, हिमाचल, यमुना-गंगा इत्यादि से कोई संवेदनात्मक सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि वह उनके विषय में कुछ जानते ही नहीं। उनका देश या राष्ट्र तो वास्तव में उनके अपने घर, मुहल्ला, उनके आस-पास

की गलियों, सड़कों, बाजारों, खेतों, मैदानों या कुछ उन दूसरे गाँव, नगरों तक ही सीमित होता है जिनके बारे में उन्होंने कुछ देखा-सुना होता है और जिनसे वह काल्पनिक भावुकता का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। उनके उस देश के निवासी थोड़े से वही लोग होते हैं जिनसे वह कोई रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ हो लेते हैं। अपने देश की उन सीमाओं के बाहर के मनुष्यों या स्थानों को वह विदेशी न समझते हुए भी उनसे अपने मन का कोई सम्बन्ध नहीं रखते। उनकी सारी दुनियाँ जिस छोटे से दायरे में सीमित होती है उसे भी वे चाहे अपना देश कह लें या दुनिया। राष्ट्रीय भावना या देश-प्रेम उनके लिये बड़ों के दिये हुये आदर्श हैं। बार-बार दुहराये या समझाये जाने से उनके कुछ संस्कार उनके मन पर अंकित हो जाते हैं। अच्चों को अपनी जन्म-भूमि या जहाँ वह रहते-बसते हैं उस स्थान और उसके वातावरण से कुछ न कुछ मोह अवश्य होता है। इसी मोह को उनका देश-प्रेम कहा जा सकता है। राष्ट्र और देश की बड़ाइयों की बड़ी-बड़ी बातें और उनके प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाली तीव्र और उग्र भावनायें और उनसे पूर्ण बाल गीत उन्हें तभी प्रभावित करते हैं जब वह बड़ों के साहचर्य से उनकी देखा-देखी उन्हें थोड़ा बहुत समझने लगते हैं। बड़े जिस प्रकार विश्व-मानवता के ही एक अंग होते हुए भी बिना प्रयत्न कर पर्याप्त समझदारी विकसित किये हुए संसार के सब देशों के सब मनुष्यों से एकसमान काल्पनिक सहानुभूति नहीं रख सकते उसी प्रकार छोटे बच्चे भी राष्ट्र या देश के प्रति प्रेम की भावनाओं को आसानी से आत्मसात नहीं कर पाते। बच्चों के लिये उनके अपने राष्ट्र के भी अधिकतर भाग उसी प्रकार विदेशी होते हैं जैसे हम बड़ों के लिये अपने देश के अतिरिक्त दूसरे देश हुआ करते हैं। इसलिये जो बड़े अस्वाभाविक ढंग से जबर्दस्ती देश की भावना अपने बच्चों के मन पर लादना चाहते हैं वह उसी प्रकार उनके ऊपर अत्याचार करते हैं जैसे एक देश के रहने वाले दूसरे कमजोर देश को जीत कर उसके ऊपर अपने देश की सभ्यता लादने का प्रयत्न करते हैं।

अंग्रेजी बाल गीत साहित्य में राष्ट्रीय बाल गीत उतने उग्र रूप में और उतनी बहुतायत से नहीं लिखे गये जितने भारतवर्ष में। हिन्दी में जब बाल गीत लिखना प्रारम्भ हुआ हमारा देश विदेशियों के अधीन था। देश के निवासियों में अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये अनेक प्रकार के संघर्ष चल रहे थे। सब अपने मन से यही चाहते थे कि किसी तरह से इस विदेशी शासन का अन्त हो और स्वराज्य मिले। जनता की इस आकांक्षा के प्रभाव से साहित्य के अन्य सब अंगों की भाँति बाल गीत भी बच कर नहीं रह सकते थे। इसलिये हिन्दी में हमें श्रेष्ठतम राष्ट्रीय गीत लिखे हुए मिलते हैं। राष्ट्रीय भावना का कोई रूप ऐसा नहीं जो उनमें आने से छूट गया हो। आधुनिक हिन्दी बाल गीतों के आदि कवि पं० श्रीधर पाठक ने एक ओर जहाँ बच्चों के लिये बहुत से बाल गीत लिखे हैं वहाँ उन्होंने 'भारत गीत' पुस्तक में देश का गुण गान करने वाले अनेक राष्ट्रीय गीत भी लिखे हैं। श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी और श्री कामता प्रसाद गुरु जो अपने समय में बच्चों के अत्यन्त लोकप्रिय कवि रहे हैं उनके निम्नलिखित बाल गीत तो अब तक बहुत प्रसिद्ध हैं:

जन्म दिया माता-सा जिसने किया सदा लालन पालन।
जिसके मिट्टी जल से ही है बना हुआ हम सब का तन ॥

....
....

माता केवल बाल काल में निज अंकन में धरती है।
हम अशक्त जब तक रहते हैं पालन पोषण करती है॥
मातृ भूमि करती है लालन पालन सदा मृत्यु पर्यन्त।

इत्यादि (मन्नन द्विवेदी गजपुरी)

तथा

जहाँ जन्म देता हमें है विधाता।
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता॥
जहाँ हैं हमारे पिता बन्धु माता।
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥

इत्यादि (कामता प्रसाद गुरु)

इन दोनों बाल गीतों में देश-प्रेम की जो भावना व्यक्त की गई है वह बच्चों के लिये उतनी विदेशी नहीं जितनी और बहुत-से राष्ट्रीय बाल गीतों की भावना है। सब बच्चे उस भूमि से तो प्यार करते ही हैं, जहाँ उनका जन्म हुआ और जहाँ उनके माता-पिता, भाई-बन्धु इत्यादि रहते हैं। अतएव वह इन बाल गीतों में व्यक्त भावना को अपने ही मन की भावना समझ कर सरलता से ग्रहण कर सकते हैं।

पर इसी भावना को जिन बाल गीतों में अन्य ढंगों से व्यक्त किया गया है वह भाषा, शैली इत्यादि की दृष्टि से अधिक रोचक होते हुए भी बच्चों के स्वभाव के उतने अनुकूल नहीं बने हैं। जैसे—

मन मोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है वह देश कौन-सा है॥
जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन-सा है॥

इत्यादि (रामनरेश त्रिपाठी)

इस बाल गीत में प्रश्न शैली अपनाने के कारण बच्चों के मन में देश के प्रति अनुराग जगाने का अच्छा प्रयत्न किया गया है। पर जिस भाषा और जिन भावों के द्वारा यह प्रयत्न किया गया है वह बच्चों के लिये उतना सरल नहीं है जितना होना चाहिये।

हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने अपने देश भारतवर्ष की कल्पना एक देवी माता के रूप में की है। यह कल्पना की गई है कि प्रातःकाल सूर्य की किरणें जिसकी चोटियाँ सोने के समान चमकाती हैं वह हिमालय भारत माता का मुकुट है। गंगा यमुना आदि नदियें उनका गलहार हैं। पंजाब से लेकर बंगाल तक फैला विस्तृत मैदान उसकी सारी का आँचल है। नर्बदा और विन्ध्याचल उनकी कटि की मेखला है। कन्या कुमारी उनके चरण हैं जिन्हें रत्नाकर हिन्द महासागर धो रहा है। लंका वह कमल है जिस पर वह अपना चरण रक्खे हुए हैं। इस प्रकार वह मानों लक्ष्मी की साक्षात् मूर्ति हैं। अपने देश को माता का रूप देकर उसकी इतनी सुन्दर, सजीव और कलात्मक कल्पना हमें किसी

दूसरे देश के साहित्य में देखने को नहीं मिल सकती। पुरुष बच्चों का स्वाभाविक प्रेमाकर्षण अपने पिता की अपेक्षा माता के प्रति अधिक होता है। अतएव बच्चों के लिये इस कल्पना के प्रति आकर्षित होना नितान्त स्वाभाविक है। हिन्दी में बहुत-से ऐसे बाल गीत हैं जिनमें भारत माता के इसी रूप का वर्णन किया गया है। अपने देश के प्रति प्रेम उत्पन्न कराने का यह एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग है। इसी कल्पना को एक पुरुष का रूप दे कर भारत पर घटित करके निम्नलिखित बाल गीत में चित्रित किया गया है :

जय जय भारत प्यारा।
मुकुट हिमालय साजे सिर पर।
गंगा यमुना हार मनोहर।
रंग बिरंगे कलि कुसुमों से सजा हुआ तन सारा।
जय जय भारत प्यारा।
छः ऋतुएं आ रूप सँवारें।
सागर लहरें चरण पखारें।
आरति सूरज चाँद उतारें।
तारक दीपों से नीलम का जगमग मन्दिर न्यारा॥
जय जय भारत प्यारा।
हम सब की आँखों का तारा।
प्रजा राज यह स्वर्ग हमारा।
आज लगाते हम यह नारा।
हम बच्चे स्वाधीन देश के, ऊँचा शीश हमारा॥
जय जय भारत प्यारा।

अन्तिम पंक्तियों में कुशल कवि ने राजनीति का भी एक हलका-सा पुट दे दिया है। 'प्रजा राज यह देश हमारा।' अर्थात् भारतवर्ष में अब किसी एक राजा का शासन नहीं समस्त प्रजा का राज है। यह हमारे देश के नये बने उस विधान की ओर संकेत करता है जिसने जाति, वर्ण, रंग इत्यादि के भेद के बिना सब भारतवासियों को जनमत का अधिकार दे दिया है। पर इस बालगीत को रट कर याद कर लेने के बाद भी क्या कोई बच्चा यह समझ सकता है कि उसका देश क्या है। और क्या इस बाल गीत को पढ़ने के बाद किसी बच्चे के मन में देश की जनता के प्रति प्रेम और सहानुभूति के भाव जागृत हो सकते हैं इसका उत्तर कोई बाल मनोविज्ञान से भली-भाँति परिचित व्यक्ति ही ठीक-ठीक दे सकता है।

भारत माता की इस कल्पना के साथ जागृत होने वाली राष्ट्रीय भावना के अनुसार यह भी आवश्यक है कि बच्चों को उसके आगे नत शिर होने, आदर भाव दिखाने, पूजा करने और बलिदान होने की शिक्षा भी दी जाये। अपनी माताओं के प्रति शिष्ट और विनयशील होना सिखाना कोई बुरी बात नहीं। इससे बच्चों में आत्मानुशासन आता है। पर बच्चे को अत्यधिक विनयशीलता की शिक्षा देने से उसके स्वाभाविक विकास में बाधा पड़ती है। बच्चों में जो स्वाभाविक कौतूहल जिज्ञासा की भावना होती है वह भी तृप्त नहीं हो पाती। पूजा, श्रद्धा और आदर के भाव जो उसके मन पर अंकित कर

दिये जाते हैं उनके कारण वह स्वयं प्रयत्न और प्रयोग कर जो अनुभव प्राप्त करता, उनसे भी वह वंचित रह जाता है। और अपना सिर काट कर माता के चरणों पर चढ़ा देने या अपने स्वार्थ को बलिदान करने की जो बात इन राष्ट्रीय गीतों में कही जाती है उसे तो चंचल स्वभाव के भोले बच्चे एक आदर्श के रूप में कभी स्वीकार कर ही नहीं सकते। बच्चे स्वयं अपने आप को दुनिया में सबसे अधिक प्यार करते हैं। वह अपने तन-मन-प्राण किसी को अर्पित कर देने की बात कभी सोच ही नहीं सकते। ऐसी बातें सोचने के लिये जब उनके लिये लिखे साहित्य के द्वारा उन्हें विवश किया जाता है तो उनका मन उचाट खा कर दूसरी दिशाओं में भागता है। बच्चों के लिये लिखने वाले बड़े कवि के लिये तो यह सम्भव है कि वह भावावेश में अपना तन-मन-प्राण अर्पित कर मृत्यु के बाद फिर भारत में ही दूसरा जन्म लेने की बात सोच सके जैसा कि इस बाल गीत में किया गया है :

मस्तक ऊँचा करूँ देश का जब तक तन में प्राण रहे।
चाहे प्राण चले जावें पर देश हेतु ही प्राण रहे॥
मरते दम तक यही प्रभू मेरे मन में अभिमान रहे।
मेरे पीछे भी भारत का इससे बढ़ कर मान रहे॥
पैदा होऊँ फिर भारत में ही इसका कुछ ध्यान रहे।
मैं भारत का सेवक हूँ, बस यह कहने की शान रहे॥

पर प्रत्येक बच्चे को अपना नन्हा जीवन इतना प्यारा होता है कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विश्वास वह कितना ही रोचक हो बड़ों की तरह उसके मन पर जम नहीं सकता। उसकी समझ में तो उसके उसी जन्म में कुछ भी करने की बात आसानी से आ सकती है। बड़े-बूढ़ों की तरह अपनी मृत्यु की कामना कर वह पुनर्जन्म के विचार से प्रेरित कभी नहीं हो सकता।

राष्ट्रीय भावना का एक रूप यह कल्पना भी है कि देश का कोई शत्रु है जिससे सब को संगठित हो कर लड़ना है। राष्ट्रीय नेता सदैव राष्ट्र के भीतरी पारस्परिक संघर्षों को दबाने के लिये इस कल्पना का पूरा-पूरा लाभ उठाया करते हैं। और जहाँ देश का कोई शत्रु नहीं होता वहाँ भी वह कोई न कोई शत्रु राष्ट्र की भावना को केन्द्रीभूत करने के लिये पैदा कर लिया करते हैं। हिटलर ने ऐसा ही करने के लिए जर्मन जाति को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर अन्य जातियों के प्रति घृणा का मनमाना प्रचार किया था और रूसी जनता को भी एकता के सूत्र में बाँधे रखने के लिये इसी प्रचार ने कार्य किया है, कि सारी दुनिया के देश उसके साम्यवादी सिद्धान्तों के शत्रु हैं और उसपर आक्रमण कर नष्ट कर देना चाहते हैं। राष्ट्रीय भावना के आवेश में प्रायः ऐसा ही होता है कि एक देश अपना राज्य बढ़ाने के उद्देश्य से दूसरे किसी देश पर आक्रमण कर उससे शत्रुता मोल ले लिया करता है जिससे वहाँ की जनता की आपसी विरोध की भावनाएँ पनप ही न सकें और उनका ध्यान दूसरी ओर लगा रहे। यह सत्य कहने में कितना भी कटु लगे पर बिना किसी दूसरे देश को शत्रु घोषित किये हुए प्रायः राष्ट्रीय एकता की भावना को कायम रक्खा ही नहीं जा सकता इस प्रत्यक्ष या काल्पित शत्रु को लेकर देश में उससे लड़ने की तैयारियाँ की जाती हैं। प्रत्येक

बालक और युवक के हृदय में ऐसे जोशीले भाव भरे जाते हैं जिनसे वह अपने देश के लिये लड़ने और अपने बड़े से बड़े स्वार्थ का परित्याग करने के लिये तैयार हो सके। बच्चों के हृदय में जोशीले भाव भरने के लिये बाल गीतों की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। बाल गीतों के द्वारा उन्हें कदम मिला कर साथ-साथ चलने, जीवन के समर में आगे बढ़ने, आपत्तियों और बाधाओं से न डरने की शिक्षायें दी जाती हैं। बच्चों में यदि इस प्रकार के भाव भर जाते हैं तो बड़े हो कर उन्हें अपने देश के गौरव कहलाने का श्रेय मिलता है।

हमारे देश में बाल गीतों की रचना के प्रारम्भिक काल से ही अंग्रेजों का शासन था। उसे छिन्न-भिन्न कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के राष्ट्रीय आन्दोलन देश में चल रहे थे। लोग अंग्रेजों के शासन को उखाड़ फेंकना चाहते थे और उसके प्रति क्रोध और आवेश की भावनायें लोगों के हृदयों में उमड़ रही थीं। अतएव उस समय ऐसे बाल गीतों का लिखा जाना नितान्त स्वाभाविक था जिनसे बच्चों में भी वही भावनाएँ जगाई जा सकें। बच्चों के हृदय में एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष कर आगे बढ़ने की इच्छा बहुत प्रबल होती है। वह खेल में भी दो टुकड़ियों में विभाजित हो जीत-हार की बाजी लगा संघर्ष करना जानते हैं। बच्चों की इस प्रतिस्पर्द्धा और एक ही उद्देश्य के लिये संगठित हो तैयारियाँ कर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति को उन राष्ट्रीय बाल गीतों से बहुत बढ़ावा मिलता है जिनमें इसी प्रकार की बातें कही गई हों। पण्डित सोहन लाल द्विवेदी ने तो हिन्दी में विशेष रूप से ऐसे अनेक बाल गीत लिखे हैं—

पीछे रहना है ठीक नहीं
यह है वीरों की लीक नहीं
मत सकुचाओ मत घबराओ
आगे आओ, आगे आओ।

या

दुनियाँ क्या कहती कहने दे
तू अपनी मस्ती रहने दे
तू जरा न अपने पथ से टल
तू अपनी धुन के पीछे चल

या

तुम बढ़ो अकेले ही आगे
मत सोचो कोई साथ नहीं
कुछ अस्त्र शस्त्र है हाथ नहीं
उत्साह उमंगों में पागे।
तुम बढ़ो अकेले ही आगे॥

या

तब तक पल भर आराम न लो।
तब तक पल भर विश्राम न लो॥
जब तक न लक्ष्य अपना पाओ।
बढ़ते जाओ, बढ़ते जाओ॥

पर इन सब बाल गीतों में स्पष्ट शब्दों में कुछ न कुछ आदेश दिये गये हैं बच्चों को कोई संकेत सुझाव दे कर या अन्य किसी मनोवैज्ञानिक ढंग से समझा कर कुछ करने के लिये नहीं कहा गया है। इसलिये उन्हें श्रेष्ठ बाल गीतों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आदेश और आज्ञा पालन की भावना जहाँ एक ओर बच्चों को अनुशासनप्रिय और चरित्रवान बनाती है वहाँ दूसरी ओर वह उनके आत्मविश्वास, मन और बुद्धि के स्वाभाविक विकास को रोकती भी है। बचपन में यदि वह पग-पग पर दूसरों के आदेशों पर चलने के आदी बना दिये जाते हैं तो वह बड़े हो कर स्वयं अपनी बुद्धि से निश्चय कर कुछ भी नहीं कर पाते और जीवन भर ढुलमुल यकीन बने रहते हैं। कभी-कभी अत्यधिक आदेश और आज्ञाओं के अनुसार चलने की उनके मन पर उलटी ही प्रतिक्रिया भी बहुत तीव्र होती है और वह बड़े हो कर स्वार्थी, लोभी और मिथ्याभिमानी बन जाते हैं या उन बड़ों के विरुद्ध विद्रोह कर बैठते हैं जिन्होंने उन्हें अत्यधिक अनुशासन में रखने का प्रयत्न किया था। बच्चे वैसे ही घर बाहर कदम-कदम पर बड़ों से बराबर यह सुनते रहते हैं कि 'ऐसा करो, ऐसा मत करो।' अतएव उन्हें यदि उनके लिये लिखित साहित्य में भी वैसी ही बातें पढ़ने को मिलें तो उनका जी ऊब जाता है।

पण्डित द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी ने भी कुछ सुन्दर प्रयाण गीत बच्चों के लिये लिखे हैं। उदाहरणार्थ :

वीर तुम बढ़े चलो।
धीर तुम बढ़े चलो॥
आज प्रात है नया।
आज साथ है नया॥
आज राह है नई।
आज चाह है नई॥
वीर तुम बढ़े चलो।
धीर तुम बढ़े चलो॥
देश को करो नया।
वेष को करो नया॥
जीर्ण वस्त्र छोड़ दो।
जीर्ण अस्त्र छोड़ दो॥
वीर तुम बढ़े चलो।
धीर तुम बढ़े चलो॥ इत्यादि

यह बालगीत पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय के महाकाव्य हल्दी घाटी के अन्तर्गत महाराणा प्रताप की सेना के बढ़ने के वर्णन से बहुत मिलता-जुलता है। दोनों को एक स्थान पर रख कर देखने से यह समझ सकना कठिन हो जाता है कि माहेश्वरी जी के इस प्रयाण गीत में वह कौन-सी विशेषता है जिसके कारण इसे बाल गीत और पाण्डेय जी के उस वर्णन को बड़ों की कविता कहा जाये जिसमें उन्होंने लिखा है :

तुम अभय बढ़े चलो।
तुम अजय बढ़े चलो ।।
तुम निडर बढ़े चलो।
शृंग पर चढ़े चलो ।। इत्यादि

आदेश देने की जो बात उपर्युक्त द्विवेदी जी के बाल गीतों के सम्बन्ध में कही गई है वह इस प्रकार के और भी बाल गीतों में विद्यमान है। बाल गीतों के विषय में यह आवश्यक है कि उनमें जो बात कही जाये वह बच्चों को उनके अपने मन की बात लगे। एक साथ मिल कर आगे बढ़ने की इस बात को यदि स्वयं बच्चों की ओर से इस प्रकार कहा जाये——

वीर सिपाही हम हम हम।
वीर सिपाही हम हम हम ।।
बढ़ते पाँव हमारे साथ।
हिलते साथ हमारे हाथ ।।
एक नियम है एक कदम।
वीर सिपाही हम हम हम ।।
कन्धों पर रख कर हथियार।
चलते हम डरता संसार।
चलते हैं हम धम धम धम।
वीर सिपाही हम हम हम ।। इत्यादि

तो बच्चों के मन पर बात का सीधा असर होता है और उनमें एक साथ आगे बढ़ने के उत्साह के साथ एक ऐसे आत्मविश्वास का उदय होता है जिसके कारण वह अन्य नाममात्र से परिचित देशों का उल्लेख करके कह सकते हैं:

जर्मन हो या हो जापान।
अमरीका या पाकिस्तान ।।
हम हैं नहीं किसी से कम।
वीर सिपाही हम हम हम ।।

राष्ट्रीय भावना के आवेश में आगे बढ़ते जाने का आदेश देने वाले उन गीतों के साथ-साथ हिन्दी में लिखे बाल गीतों की एक विशेषता यह भी रही है कि उनके लिखने वालों ने इतिहास में बहुत पीछे देखते हुए बीते हुए स्वर्णयुग या राम राज्य को फिर से स्थापित करने की इच्छा की है। उन्होंने प्राचीन आदर्शों और मान्यताओं के न केवल गुण गाये हैं बल्कि उन्हें मानने और मनवाने की चेष्टा की है। इसलिये हिन्दी में हमें अधिकतर ऐसे बाल गीत लिखे हुए मिलते हैं जिनमें समय की प्रगतिशील प्रवृत्तियों की अवहेलना कर प्राचीन आदर्शों का ही गुण गान किया गया है। पण्डित सोहनलाल द्विवेदी ने अपने "मातृभूमि" शीर्षक गीत में लिखा है:

जन्मे जहाँ थे रघुपति।
जनमी जहाँ थी सीता ।।

श्री कृष्ण ने सुनाई,
वंशी, पुनीत गीता।
गौतम ने जन्म ले कर,
जिसका सुयश बढ़ाया।
गज को दया दिखाई,
जग को दिया दिखाया।

वह युद्ध भूमि मेरी।
वह बुद्ध भूमि मेरी ।।
वह मातृ भूमि मेरी
वह पितृ भूमि मेरी ।।

इसी प्रकार पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने गीत "वह देश कौन सा है" में कहा है:

पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया,
शिक्षित किया सुधारा वह देश कौन सा है।
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्म ज्ञानी,
गौतम कपिल पतंजलि वह देश कौन सा है।
छोड़ा स्वराज्य तृण वत् आदेश से पिता के,
वह राम थे जहाँ पर वह देश कौन सा है।
निस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे,
लक्ष्मण भरत सरीखे वह देश कौन सा है।

भारतवर्ष को प्राचीन वैदिक काल या राम राज्य की ओर ले जाने वाली इसी राष्ट्रीय कही जाने वाली भावना ने भारत में रहने वाली विभिन्न जातियों और वर्गों में वह एकता स्थापित नहीं होने दी जो राष्ट्रीय भावना के विकास के लिये अपेक्षित थी। और उसी का परिणाम स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश के विभाजन के रूप में हमें देखना पड़ा। अपने प्राचीन पुरुषों का गुण गान करना, उनके जीवनादर्शों से प्रेरणा ग्रहण करना ठीक है। पर इस प्रेरणा का उपयोग तभी तक उचित है जब तक वह हमें अपने मार्ग पर आगे बढ़ने को उकसाने वाली हो। वह प्रेरणा ही जब हमारी टांग पकड़ कर हमें पीछे की ओर घसीटने लगे तो उसका हमारे लिये कोई उपयोग नहीं। संसार के किसी भी राष्ट्र ने कभी अपने समय और समाज के लिये नये विचार, नये आदर्श, नई मान्यतायें और नये विश्वास दिये बिना उन्नति नहीं की है। जो राष्ट्र लकीर के फकीर बने पुराने आदर्शों और विश्वासों के सहारे ही चलते रहते हैं वह उन्नति की दौड़ में दूसरे राष्ट्रों से पिछड़ जाते हैं।

हिन्दी बाल गीतों में बहुत से बाल गीत ऐसे भी हैं जो समाज में नये विचार और नये आदर्श मर्यादाएँ स्थापित करने की ओर संकेत कर नई प्रेरणायें देने वाले हैं। जैसे पण्डित सोहन लाल द्विवेदी का ही एक बाल गीत है:

बड़ी जाति में होने से ही,
बड़ा न कोई हो पाता।
जब तक नहीं बड़े गुण लाता,
नहीं बड़े गुण अपनाता। इत्यादि

उनका ही एक दूसरा बालगीत है:

देखो नहीं हाथ की रेखा,
पलटो मत पत्रा पोथी।
मीन मेष कुछ कर न सकेगा,
ये सारी बातें थोथी॥
कभी निकम्मे बन मत बैठो,
उठो बढ़ो कुछ काम करो।
सब कुछ कर सकते हो तुम,
मत ईश्वर को बदनाम करो।
नहीं भाग्य का मुख देखो तुम,
अपने बनो विधाता आप।
चलो बढ़ो अपने पाँवों से,
लो सारी दुनिया को नाप॥

मानसिक दासता के पुराने मरीज और लगन-महूरत की बातों पर अन्ध विश्वास करने वाले मनुष्यों को ऐसी बातें कुछ बुरी भी लग सकती हैं। पर भाग्य-दुर्भाग्य के विवर्त्त में फँसे हुए अकर्मण्य देशवासियों में स्वाभिमान जगाने और आत्म विश्वास उत्पन्न करने के लिये सत्य पर पर्दा डाले रहने से भी काम नहीं चल सकता। हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर संकेत करने वाले भी अनेक बाल गीत हिन्दी में लिखे गये हैं जैसे:

तेरे नाज उठायेंगे हम।
तेरे गाने गायेंगे हम॥
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई।
आपस में जो भाई भाई॥
तूही राम रहीम हमारी।
जय जय भारत माता प्यारी॥

इस प्रकार के बाल गीत भी हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही अलग-अलग बुरे लग सकते हैं। पर जाति-वर्ण-धर्मविषयक संकीर्ण दृष्टिकोण और बैर-भाव को बढ़ावा देने वाले पुराने विचारों का जो अभिशाप आज तक हमारे समाज को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में पिरोने में बाधक रहे हैं उन्हें हटाने के लिये इस प्रकार के गीतों की बड़ी आवश्यकता है, इसे प्रत्येक राष्ट्रीयतावादी स्वीकार करेगा। फिर भी प्रश्न वही उठता है कि क्या इस प्रकार के गीतों को बाल गीत कहा जा सकता है? बच्चे तो स्वभाव से ही हाथ की रेखाओं, पोथा-पत्री, मीन-मेष, भाग्य या राम-रहीम की सीमाओं को मानने वाले नहीं होते। वह जन्म से ही

अपने मन में अतुलित आत्मविश्वास को लिये हुए होते हैं और अपनी शक्ति से अधिक काम करने के लिये तैयार होने में कोई संकोच नहीं करते। उनके भोलेपन में अपनी ओर से हिन्दू-मुस्लिम का भी कोई भेद-भाव नहीं होता। बड़ों के सम्पर्क में रहते-रहते उनमें यह भेद की बातें जड़ कर जाती हैं इसीलिये एकता के नाम पर भी उनसे भेद-भाव की याद दिलाने वाली बातें करना कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी के राष्ट्रीय बाल गीतों में महापुरुषों से सम्बन्धित और झण्डे के बाल गीत विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। धरती से बहुत ऊपर नीलाकाश में लहर-लहर फहराता हुआ तिरंगा झण्डा बच्चों को भारत माता की कल्पना या राष्ट्रीय भावना के किसी अन्य रूप से कम प्रभावित नहीं करता। उसे वह अपने सामने प्रत्यक्ष देख कर उसके विषय में अपनी धारणायें और विश्वास निश्चित कर सकते हैं। खुले मैदान में गड़ा हुआ या किसी ऊँची इमारत पर फहराता हुआ झण्डा उन्हें एक ऐसा केन्द्र-बिन्दु मालूम होता है जिसके चारों ओर घूमने या पीछे-पीछे चलने में वह प्रफुल्लित होते हैं। झण्डे के सम्बन्ध में लिखे गये हिन्दी बाल गीतों में पण्डित सोहन लाल द्विवेदी का यह बाल गीत बहुत प्रसिद्ध है:

हम नन्हें नन्हें बच्चे हैं।
नादान उमर के कच्चे हैं,
पर अपनी धुन के सच्चे हैं॥
जननी की जय जय गायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे॥
अपना पथ कभी न छोड़ेंगे,
अपना प्रण कभी न तोड़ेंगे।
हिम्मत से नाता जोड़ेंगे,
हम हिम गिरि पर चढ़ जायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे॥
हम भय से कभी न डोलेंगे,
अपनी ताकत को तोलेंगे।
माता के बन्धन खोलेंगे,
अपना शिर भेंट चढ़ायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे॥

इसमें जिस बाल स्वभावोचित सरलता के साथ भावनाओं को व्यक्त किया गया है उसने इस बाल गीत की रोचकता बहुत बढ़ा दी है। बच्चों के मन में साहस, आत्मविश्वास और प्रतिज्ञा-पालन की भावना भी इस बाल गीत से उत्पन्न होती है। किन्तु इसकी अन्तिम पंक्ति में जो शिर भेंट चढ़ाने की बात कही गई है वह बच्चों के मन की अपनी बात नहीं। बच्चे अपना शिर भेंट चढ़ा देने के बाद एक शिररहित शरीर की कल्पना करते ही भय से सहम जायेंगे और फिर उस कल्पना के पास जाना भी पसन्द नहीं करेंगे।

प्राचीन और वर्त्तमान महापुरुषों का गुण गान करने वाले बाल गीत भी हिन्दी में बहुत-से लिखे गये हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार के बाल गीत इतनी बहुतायत से नहीं मिलते। भारतवर्ष में वीर-पूजा की भावना अत्यन्त प्राचीन काल से बहुत अधिक रही है। यहाँ महापुरुषों के शव मिश्र की भाँति ममी की शक्ल में पिरामिड में सुरक्षित नहीं रक्खे गये पर उनके गुण गान से साहित्य का भण्डार भरा हुआ है। वर्त्तमान काल में महात्मा गान्धी और पण्डित नेहरू तो बच्चों और बाल गीतकारों के आकर्षण और प्रेरणा के मुख्य आधार रहे हैं। बापू की कल्पना बच्चे अपने दादे-परदादे एक वृद्ध पुरुष के रूप में करते हैं। पर पण्डित नेहरू उनके जगत प्रसिद्ध चाचा हैं। चाचा से प्रायः बच्चों का दादे-परदादे की अपेक्षा अधिक अपनापन होता है। इसलिये पण्डित नेहरू उनकी भावनाओं में उनके मन के अधिक निकट हैं। बापू को वह पूजा श्रद्धा के भाव से देखते हैं पर चाचा नेहरू को तो अपना चाचा ही समझते और उनसे अधिक से अधिक निकटता का अनुभव करना चाहते हैं। पण्डित नेहरू का जन्म-दिन प्रति वर्ष बाल दिवस के रूप में मनाया भी जाता है। हिन्दी के अनेक कवियों ने पण्डित नेहरू से सम्बन्धित बहुत से बाल गीत लिखे हैं। इनमें से कुछ में चाचा नेहरू जिन्दाबाद के नारे लगाये गये हैं और कुछ में उनकी वीरता, साहस, कर्त्तव्य-परायणता, त्याग की सराहना की गई है। बच्चों की एक पत्रिका में प्रकाशित मेरा निम्नलिखित बाल गीत पण्डित नेहरू ने बड़े ध्यान से पढ़ा था और खूब हँसे थे :

चाचा नेहरू ने पाले दो बच्चे शेर के,
रोज सबेरे उठते हैं वह सो कर देर से।
तिब्बत के लामा ने भेजा उनको दूर से,
भारी भय लगता है जो भी देखे घूर के।
गर्मी की ऋतु आई गर्मी पड़ी कड़ाके की,
नन्हीं मछली रोई नानी मर गई नाके की।
दोनों गर्मी कड़ी बिताने नैनीताल चले,
वह देखो मोटर में बैठे लगते बहुत भले।
आस-पास छोटे बच्चों की भीड़ लगी भारी,
उमड़ पड़ी है उन्हें देखने को जनता सारी।
मैं भी अपने टामी को ले गया देखने को,
रूप रंग में कितने सुन्दर लगते हैं वे दो।
देख उन्हें मुझसे यह बोला मेरा प्रिय टामी
अलमोड़ा में भी जाऊँगा हे मेरे स्वामी ॥

पण्डित नेहरू की वर्षगाँठ पर प्रायः प्रति वर्ष ही अनेक बाल गीत हिन्दी में लिखे जाते हैं पर राष्ट्र बन्धु का निम्नलिखित बालगीत बच्चों की भावनाओं के जितना अनुरूप और मधुर है उतना कोई अन्य बाल गीत देखने में नहीं आया :

जब तक चमकें चाँद सितारे।
चाचा नेहरू जियें हमारे ॥

टिक टिक घोड़ा उन्हें बनायें,
हम सब पीछे चलते जायें।
पाँव बढ़ायें दायें बायें,
सभी लगायें मिल कर नारे।
चाचा नेहरू जियें हमारे ॥
साल गिरह हर साल मनायें,
सब भर पेट मिठाई खायें।
उड़ा उड़ा गुब्बारे गायें,
सब लोगों के एक सहारे।
चाचा नेहरू जियें हमारे ॥
जिसको दुनिया कहती नाहर,
वह अपना ही वीर जवाहर।
जय बोलो उसकी घर बाहर,
बोलो मिल सारे के सारे।
चाचा नेहरू जियें हमारे ॥

मेरी और श्री विष्णु कान्त पाण्डेय की लिखी तो चाचा नेहरू से सम्बन्धित बाल गीतों की दो अलग-अलग पुस्तकें ही हैं। विष्णु कान्त पाण्डेय ने अपनी पुस्तक "चाचा नेहरू" में उन्हें 'विश्व' शान्ति का दूत, 'भारत का कर्णधार', 'त्याग तपस्या की प्रतिमा' आदि कह कर सम्बोधित किया है। इसलिये राष्ट्रीयतावादी बड़ों की दृष्टि में वह बच्चों के लिए एक उपयोगी पुस्तक हो सकती है पर बच्चों की दृष्टि से भी वह उतनी ही उपयोगी है या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस पुस्तक में आदि से अन्त तक पण्डित नेहरू के चरित्र का यशगान ही नहीं किया गया बार-बार बच्चों को इस प्रकार के उपदेश भी दिये गये हैं :

बच्चो तुम भी बचपन ही से,
अनुशासन अपनाओ।
और जवाहर बन जाने को,
मन में लगन लगाओ ॥

या

बच्चो! तुम भी बनो जवाहर,
कहती भारत माता।
सत्य अहिंसा को अपना कर,
हो ओ भाग्य विधाता ॥

बच्चे चाहे चाचा नेहरू हों या युगपुरुष बापू उन्हें अपनी ही भावना और कल्पनाओं के सहारे देखते हैं। वह यदि चाचा नेहरू को भारत का प्रधान मन्त्री और एक महान राजनीतिक नेता ही मानने लगें तो उनके और बड़ों के दृष्टिकोण में कोई अन्तर ही न रह जाये। बच्चे जब तक उन्हें अपने चाचा के प्रति होने वाली स्वाभाविक भावनाओं का प्रतीक नहीं मानेंगे तब तक वह उन्हें हृदय से प्यार कर ही नहीं सकते इसलिए मैंने

अपनी पुस्तक के बाल गीतों में पण्डित नेहरू के विषय में बड़ों की बड़ी-बड़ी बातों का वर्णन न करके उनमें बच्चों की उन सरल बातों का ही वर्णन किया है जिन्हें वह सोच सकते हैं :

चाचा नेहरू ! मुझे एक तुम मोटर मँगवा दो,
कैसी प्यारी लगती है वह मैंने देखी है।
मुन्नू के चाचा ने उसको ला कर दे दी है,
खूब फर्श पर इधर उधर वह दौड़ी जाती है।
सारे खेल खिलौने भर भर कर ले आती है॥
माँ कहती है मैं ला दूँगी गई बजार जभी।
पापा कहते कैसे लाऊँ पैसे नहीं अभी॥
बाबा कहते हैं मोटर क्या तू ले एक जहाज।
रोज आज कल करते उनको कभी न आती लाज॥
मेरे अच्छे चाचा तुम ही एक मुझे ला दो।
नेहरू चाचा मुझे एक तुम मोटर मँगवा दो॥

इसी प्रकार एक दूसरा बाल गीत है :

नेहरू चाचा गिर पड़े।
एक रोज वह दिन ढले,
घोड़े पर चढ़ कर चले,
हंटर को फटकारते,
कोड़े कस कर मारते,
देख रहे बच्चे खड़े।
नेहरू चाचा गिर पड़े॥
घोड़ा भागा तेज जब,
बच कर भागे लोग सब,
छूटा हाथ लगाम से,
नीचे गिरे धड़ाम से,
ठेले वाले से लड़े।
नेहरू चाचा गिर पड़े॥ इत्यादि

इस बालगीत में बचपन में पण्डित नेहरू के एक बार घोड़े पर चढ़ने और गिर पड़ने का वर्णन है। पर मेरे इन बाल गीतों को देख कर कुछ बड़े लोगों ने यह कहा कि मैंने इन गीतों में भारत के प्रधान मन्त्री और एक महान राजनीतिक नेता की हँसी उड़ाई है। उनकी इस आलोचना के लिये मैं उनके बाल-स्वभाव के अल्प ज्ञान को उत्तरदायी ठहराऊँ या पण्डित नेहरू के प्रति पूजा श्रद्धा की अन्धी भावना को, यह मैं आज तक निर्णय नहीं कर सका।

चाचा नेहरू के समान ही विश्व बन्धु बापू से सम्बन्धित भी बहुत से बाल गीत हिन्दी में लिखे गये हैं। पण्डित सोहन लाल द्विवेदी ने एक पूरी पुस्तक ही 'बच्चों के बापू' नाम से लिख दी है जो छपी भी बहुत सुन्दर है। इस पुस्तक में बापू के कुछ बहुत सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, जैसे—

सिर पर धर खादी का टुकड़ा,
कस कर कमर लंगोटी।
बापू कहाँ चल पड़े बोलो,
लिये लकुटिया छोटी॥
एक ओर तो बा चलती है,
कौन दूसरी ओर।
अच्छा मैं पहचान गया यह,
भैया नन्दकिशोर॥

एक स्थान पर छोटे बच्चे बापू के पोपले मुख को देख कर कहते हैं :

सभी लोग तुम तक आते हैं तुम न कहीं क्यों जाते।
बापू इसका भेद बताओ तुम तो भेद छिपाते॥
बापू तुमको सभी मानते दुनिया शीश झुकाती।
पर मुँह पुपला देख तुम्हारा मुझे हँसी आ जाती॥

एक दूसरे स्थान पर कोई खिलाड़ी बच्चा उनसे कहता है :—

बापू काम कर चुके, आओ चल कर पतंग उड़ायें।
मैं ले लूँगा रील, चलो कनकइया कहीं लड़ायें॥
बापू लो मैं रील लिये हूँ देते जाओ ढील।
खूब पतंग बढ़ाओ अपनी कम से कम दो मील॥
जिसकी भी पतंग आ जाये काटो उसको सर से।
बड़ा मजा आयेगा बापू उड़े पतंग फिर घर से॥

बापू ने कभी पतंग उड़ाई हो या नहीं पर जिन बच्चों को पतंग उड़ाते समय बड़ों के साथ लगे रहने में आनन्द आता है वह बापू के भी पतंग उड़ाने की कल्पना कर सकते हैं। विश्व-बन्धु देवता तुल्य, राम और कृष्ण की तरह ईश्वर के अवतार, देश में जगह-जगह जिनकी प्रतिमायें स्थापित कर लोग हार-फूल चढ़ाते हैं उन बापू के दाँतों रहित पोपले मुख को देख कर बच्चों में ही वह साहस हो सकता है कि हँस पड़ें और बच्चों के इस प्रकार हँस पड़ने से कोई देवता कभी बुरा भी नहीं मानता। द्विवेदी जी की इस प्रकार की रचनायें भी मेरे चाचा नेहरू के गीतों की तरह ही बड़ों की दृष्टि में एक महापुरुष की हँसी उड़ाने वाली हो सकती हैं। पर बच्चों के स्वभाव की जिन्हें थोड़ी भी जानकारी है वह ऐसा कभी नहीं कह सकेंगे।

राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण बाल गीतों के विषय में विचार करते समय एक इस सत्य की उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती कि देश और समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर राष्ट्रीय भावना के आधार-विषय और उसकी अभिव्यक्ति के रूप में भी परिवर्तन हो जाता है। जब भारतवर्ष में रेलें, सड़कें, नहरें और बड़े-बड़े नगर नहीं थे उस समय

गंगा को देवी माता कह कर पूजने का जो भाव था वह आज के वैज्ञानिक युग में उतना प्रबल नहीं रहा। आज के किसान जब कृत्रिम मेघों से सिंचाई का काम ले सकते हैं तो उन्हें गंगा मइया या इन्द्र देवता को मनाने के लिये विनय गीत गाने की क्या आवश्यकता है। महापुरुषों की महत्ता के विषय में भी इसी प्रकार लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्त्तन होते रहते हैं। स्टालिन जो अभी कुछ वर्ष ही पूर्व तक रूस देश का भाग्य-विधाता समझा जाता था आज एक महान अत्याचारी और निर्दयी शासक घोषित कर दिया गया है और लोग उसके शव को भी चैन से लेटे नहीं देखना चाहते। देश और समाज की परिस्थितियों के परिवर्त्तनों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है और बाल गीत भी उससे अलग नहीं रह सकते। फिर भी अच्छे बाल गीत की लोकप्रियता का रहस्य उसके वर्ण्य विषय में उतना नहीं होता जितना वर्णन करने के ढंग में।

हिन्दी में कुछ ऐसे बाल गीत भी लिखे गये हैं जो बच्चों की भावनाओं को विस्तार दे कर उन्हें अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्व एकता की भावना तक पहुँचाने वाले हैं। पर ऐसे बाल गीत बहुत ही कम हैं। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का एक गीत है:

आसमान है एक हमारा एक नाव पर घर है।
है एक ही चिराग हमारा और एक विस्तर है॥
एक तरह के अंग हमारे चाहे रंग कई हों।
रहन सहन है एक हमारी चाहे ढंग कई हों॥
भाव एक है भावाओं की पोशाकें पहने हैं।
परमेश्वर है एक हमारा हम भाई बहनें हैं॥

इस बाल गीत में "एक नाव पर घर है' की कल्पना बच्चों के लिये कुछ दुरूह अवश्य है पर एक बार इसका भाव समझ लेने से सारी कविता का भाव बहुत सरल हो जाता है। सारे संसार को प्रकाश देने वाला सूर्य हमारा चिराग और धरती विस्तर है—इसे समझने में उन्हें कुछ भी देर नहीं लग सकती। इस प्रकार के बाल गीतों में व्यक्त भाव राष्ट्रीय बाल गीतों के भावों की अपेक्षा बच्चों की भावनाओं के अधिक अनुकूल होते हैं। बच्चों को प्रत्यक्ष तो यही दिखाई देता है कि संसार के सारे मनुष्य एक-से ही शरीर वाले हैं। उनके आपसी भेद-भाव और विरोध की बातें तो उनकी समझ में तभी आती है जब उनकी बुद्धि कुछ अधिक पक जाती है। मैंने भी बाल दिवस पर लिखित एक बाल गीत में संसार के सब बच्चों की एकता का भाव व्यक्त किया है।

आज हमारे घर आँगन में मस्ती और बहार है।
बाल दिवस यह दुनियाँ भर के बच्चों का त्योहार है॥
कैद नहीं हम देश जाति की सीमाओं के जाल में।
उछल कूद में मस्त सदा हम पड़ते नहीं बवाल में॥
छोटे छोटे देश बड़ों के, बच्चों का संसार है।
आज हमारे घर आँगन में मस्ती और बहार है॥

निकोयान मौली लेवेना, बाल डोर तिन क्यांग पो॥
आज हमारे घर तुम सब की दावत है ज्योनार है।
बाल दिवस यह दुनिया भर के बच्चों का त्योहार है॥

भारतवर्ष तो अपने "वसुधैव कुटुम्बकं" के प्रिय आदर्श का अत्यन्त प्राचीन काल से अनुयायी रहा है। यहाँ के युगद्रष्टा ब्रह्मज्ञानी ऋषि संसार को "कर वदर" सदृश देखा करते थे। इसका उल्लेख भी हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। भारतवर्ष के यह ऊँचे आदर्श कभी सत्य रूप में चरितार्थ हो कर सामने आये थे या नहीं पर पिछली कुछ शताब्दियों में संसार में जो अभूतपूर्व वैज्ञानिक उन्नतियाँ हुई हैं उनके कारण अब वह पुराने आदर्श हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष सत्य हो कर आने लगे हैं। आज सबेरे ही हम घर बैठे एक समाचार पत्र के द्वारा संसार भर के सारे महत्वपूर्ण समाचार एक साथ जान लेते हैं। रेडियो के द्वारा हमें दूर-दूर देशों के निवासियों की बातें अपने कानों से सुनने को मिल जाती हैं और टेलीविजन भी जब रेडियो की तरह ही सुलभ हो जायेगा तो हम दूर-दूर देशों के लोगों को चलते-फिरते, खाते-पीते, गाते-बजाते भी घर बैठे देख लिया करेंगे। वायुयानों की गति अब इतनी तीव्र हो गई है कि हम कुछ ही घण्टों में हजारों मील दूर जा कर फिर अपने घर वापस आ सकते हैं। अब लन्दन और दिल्ली जैसे दूर-दूर स्थित विशाल नगर एक ही बड़े नगर के दो अलग-अलग मुहल्ले मालूम होते हैं। संसार के मनुष्य अब धरती से दूर बहुत दूर चान्द तारों तक पहुँचने की कल्पना को सत्य कर दिखाने का दावा करने लगे हैं। रूस का एक साधारण नागरिक गागरिन अभी अन्तरिक्ष यात्रा करके वापस आया है। संसार के सारे देशों ने मिल कर विश्व के मानवों की एकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर एक संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण कर ही रखा है। इन सब कारणों से अब देश-देश के बीच की दूरी और अन्तर नष्ट होते जा रहे हैं। देशों के बीच की सीमा-रेखाओं के अस्तित्व का महत्व भी अब कम होता जाता है। भेद-भाव और बैर-विरोध के विषय मिल-जुल बैठ कर सुलझाने से तय हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में आज का बालक भविष्य में जिस समाज का अंग होगा वह एक ऐसा विश्व मानव समाज होगा जिसमें जाति देशों के रूप में मानव मन की कल्पित सीमाओं के लिये स्थान ही न रह जायेगा। अब भी यदि हमारे कवि बच्चों को राष्ट्रीयता के नाम पर प्राचीन परम्परागत संकीर्णताओं और संसार के मनुष्यों में बैर-विरोध की भावनाओं को बढ़ाने वाले बाल गीतों के बजाय विश्व नागरिक बनने की प्रेरणा देने वाले बाल गीत रच कर नहीं देंगे तो वह बड़े होकर उनका कुछ भी एहसान नहीं मानेंगे। उनके लिए अब तक के रचे बड़ों के यह राष्ट्रीयगीत समय की हवा के साथ उड़ जाबेंगे और भविष्य के बच्चे उन्हें गैस के गुब्बारों की तरह उड़ते देख कर भी उनको के लिये पकड़ने का प्रयत्न नहीं करेंगे। जब उन्हें खेल-खेल में अन्तरिक्ष तक उड़ने-उड़ाने के लिये असली वायुयान बैलून राकेट और हेलीकोप्टर मिलने लगेंगे तो वह इन जरा में फट जाने वाले नकली गुब्बारों को ले कर क्या करेंगे।

———

७ : लोरियाँ, प्रभाती और पालने के गीत

लोरी उन गीतों को कहते हैं जो छोटे बच्चों को सुलाने के लिये गाये जाते हैं। लोरी शब्द संस्कृत के लोल शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है हिलाना-डुलाना या थप-थपाना। मातायें अपने बच्चों को गोद में ले कर, कन्धे पर डाल कर या पालने में लिटा कर थपथपी देकर सुलाती हैं और उनकी आँखों में नींद को बुलाने के लिये मुख से मधुर शब्दों में कुछ ऐसे गीत सुनातीं हैं जिन्हें सुन कर बच्चों को जल्दी नींद आ जाती है। यह गीत पारिवारिक होते हैं और उनमें माता-पिता के हृदय की ममता और निर्मल वात्सल्य की सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। प्रायः संध्या के समय ही यह गीत गाये जाते हैं इसलिये उनमें सूरज के डूबने से लेकर आकाश में चान्द निकलने और तारों के छिटकने तक के प्राकृतिक दृश्यों के सजीव चित्रण भी मिलते हैं। मातायें इन गीतों में अपने भोले-भाले बच्चों के भविष्य के विषय में तरह-तरह की कोमल कल्पनायें किया करती हैं। वह उनके भय, आशंका, हर्ष, प्रसन्नता आदि का ध्यान करके उनकी भावनाओं को सुनिश्चित करने और उन्हें सोने की प्रेरणा देने का प्रयत्न भी करती हैं। पर हिन्दी भाषा में सोने के गीतों के समान ही बच्चों को जगाने के भी गीत बहुत-से लिखे गये हैं। सूरदास के एक ऐसे ही गीत की पंक्ति है :

जागिये बृजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।

इन जगाने के गीतों में भी लोरियों के समान ही माताओं के मन में बच्चों के प्रति होने वाली स्वाभाविक ममता-मोह की अभिव्यक्ति होती है। उनके द्वारा भी मातायें बच्चों की सरल भावनाओं के अनुरूप उनके भविष्य के विषय में तरह-तरह की कल्पनायें किया करती हैं। वह सोचती हैं कि उनका मुन्ना बड़ा हो कर संसार में यश-धन कमायेगा, वह पढ़-लिख कर बहुत बड़ा विद्वान बनेगा। अवकाश के समय बच्चे को पालने में झुलाते हुए भी मातायें इसी प्रकार की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने वाले गीत गाया करती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य गीत भी इस प्रकार के होते हैं जिनका विशेष उपयोग बच्चों को सुलाने, जगाने या पालना पर झुलाने के समय ही नहीं होता फिर भी वह बच्चों की तुतली बातों को सुन उनके सरल क्रिया-कलापों को देख कर अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये गाये जाते हैं। हिन्दी बालगीत साहित्य में लोरी की कोई निश्चित परिभाषा न बन पाने के कारण ऐसे सब गीतों को हम लोरियों के अन्तर्गत ले सकते हैं जिनमें माताओं की-बच्चों के प्रति मोह-ममता के साथ-साथ सद्भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। लोरियों की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उन्हें संगीत के स्वरों में गाया जा सके। माताओं के हृदय की ममता और सद्भावनाओं की अभिव्यक्ति होते हुए भी यदि उन्हें गाया नहीं जा सकता तो लोरियों और अन्य कविताओं में कोई अन्तर नहीं। बाल गीत और लोरियों में यह अन्तर होता है कि बाल गीत में बच्चों की अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और लोरियों में बच्चों के लिये माता की ममता और सद्भावनाओं की। लोरियों को बाल गीतों की श्रेणी

में इसलिये रख लिया जाता है कि वे बच्चों के लिये ही लिखी या गाई जाती हैं और बच्चों की मनोभावनाओं को छू कर उनका मनोरंजन करती हैं। अधिकांश नन्हे-मुन्ने बच्चे लोरियों के प्रत्येक शब्द और अक्षर का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ पाते। पर वह उन्हें गाया जाता हुआ सुन कर प्रसन्न अवश्य होते हैं और उनके द्वारा सुलाये या जगाये जाने में एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करते हैं। मानवीय संगीत का सबसे पहिला परिचय बच्चों को लोरियों के स्वरों के द्वारा ही होता है। बच्चों की महत्वाकांक्षायें और आशायें भी मातायें प्रायः स्वयं अपना कर लोरियों के माध्यम से व्यक्त करने में सफल होती हैं। भाषा की दृष्टि से लोरियाँ बाल गीतों की तरह ही सरल और स्वाभाविक होती हैं। बाल गीत जिस प्रकार बच्चों के मन से स्वयं उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार लोरियाँ भी माताओं के मन में स्वयं फूट निकलती हैं। अच्छी लोरियों की पहिचान ही यह है कि वह प्रयास से न लिखी गई हों। उनमें एक ऐसी स्वाभाविक सरलता विद्यमान हो कि वह अबोध बच्चों के कोमल हृदयों को आकर्षित कर सके। कृत्रिमता और सजावट आ जाने से उनमें कविता की गन्ध आने लगती है और वह लोरियाँ नहीं रहतीं। पारिवारिक होने के कारण लोरियों का विषय-क्षेत्र बाल गीतों की अपेक्षा बहुत सीमित होता है। बाल गीत बच्चे के परिचित या कल्पना-क्षेत्र में आ जाने वाले किसी भी विषय पर लिखे जा सकते हैं। पर लोरियाँ नन्हे-मुन्ने को सुलाने, जगाने या झुलाने की विशेष परिस्थितियों और माताओं की ममता और सद्भावनाओं की प्रेरणा के आधार पर ही लिखी जा सकती हैं। उनमें बड़ों की-सी बड़ी-बड़ी बातें भी अक्सर की जा सकती है क्योंकि वह माताओं के मन की उपज होती है और उन्हें माताओं के बड़प्पन के प्रभाव से सर्वथा अछूता भी नहीं रखा जा सकता। पर बाल गीतों के भावों को जहाँ बड़ों के अनुभव ज्ञान ने प्रभावित किया वहीं उनका सौन्दर्य नष्ट होने लगता है। सफल बाल गीत वही हैं जिनमें बच्चों के स्वाभाविक मनोभाव उन्हीं की सरल भाषा में व्यक्त किये गये हों।

भारतवर्ष में लोरियों की परम्परा बहुत पुरानी है। आज भी गाँवों में अनपढ़ और अनजान मातायें परम्परा से प्राप्त कुछ ऐसी लोरियों की पंक्तियाँ सुनाती हुई पाई जाती हैं जिनके मौलिक रूप और रचना-काल के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। बहुत सी लोरियाँ या उनकी पंक्तियाँ उनकी अपनी मनगढ़न्त भी हुआ करती हैं। लोक गीत की तरह उन पंक्तियों का भी चयन किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में बाल गीतों की तरह लोरियों के भी आदि कवि सूरदास ही माने जाते हैं। उन्होंने बाल कृष्ण को सुलाने-जगाने के लिये ऐसे सुन्दर गीत लिखे हैं जिनकी-सी कोमलता हमें अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती।—

मेरे लाल की आउ निदरिया काहे न आन सुलावै।
तू काहे न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै॥

अंग्रेजी में लोरियों को 'ललेबीज' कहते हैं पर हिन्दी में लोरियों की तरह न तो अंग्रेजी में ललेबीज की बहुतायत है और न उनमें वह मार्मिकता और स्वाभाविकता ही है जो हिन्दी

लोरियों में मिलती है। अंग्रेज मातायें अपने नन्हें-मुन्नों से भारतीय माताओं की अपेक्षा कम प्यार नहीं करतीं। पर उनका रहन-सहन, समाज-संगठन और पारिवारिक जीवन कुछ इस प्रकार के हैं कि बच्चों के प्रति ममता के प्रदर्शन वह भारतीय माताओं की तुलना में कर ही नहीं सकतीं। अंग्रेज स्त्री कानून और सामाजिक मर्यादाओं की दृष्टि से भारतीय स्त्री की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र होती हैं। भारतीय हिन्दू समाज में तलाक के नियम पहिले कभी प्रचलित थे ही नहीं। पर अंग्रेजी समाज में तलाक की प्रथा उतनी नई नहीं है। हमारे यहाँ विवाह को आत्माओं का एक ऐसा सम्मिलन माना जाता रहा है जिसका बन्धन अटूट है और विलायत में उसे केवल एक इकरारनामे का बन्धन ही माना जाता रहा है। अंग्रेज स्त्रियाँ समाज में पुरुषों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-फिरने में कोई संकोच नहीं करतीं। हमारे यहाँ आज भी स्त्री का मुख्य कार्य-क्षेत्र उसका अपना घर और परिवार ही है। अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपने आप को अपने बच्चे के प्रति केवल इस सीमा तक उत्तरदायी समझते हैं कि उनका बच्चा बड़ा हो कर अपना अलग परिवार बसाने योग्य बन सके। स्वतन्त्र परिवार बसा लेने के उपरान्त प्रत्येक युवक स्वयं अपने घर का स्वामी हो जाता है और उसके अपने माता-पिता भी उसके यहाँ मेहमान की तरह रहने के लिये ही आ सकते हैं। भारतीय परिवारों में बच्चे माता-पिता की जीवन पर्यन्त सब आशाओं के केन्द्र होते हैं। और बूढ़े हो कर भी अपने माता-पिताओं की दृष्टि में भोले बच्चे ही बने रहते हैं। परदे की प्रथा के कारण भी भारतीय परिवारों में बच्चों को अपनी माताओं का अधिक मोह सदा प्राप्त रहा है। पति अपने व्यापार या बाहरी समाज के सारे कार्यों में अकेले व्यस्त रहता है। स्त्री को उसके बाहरी कार्य-कलापों से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं। उसका कार्य-क्षेत्र उसकी अपनी चहारदीवारी में बन्द उसका अपना छोटा-सा घर होता है। उसी में दिन-रात बन्द रह कर वह अपने सुख और मनोरंजन के लिये तरह-तरह की कल्पनायें अपने नन्हें-मुन्ने को ले कर करती रहती है। वह अकेले में उससे ही मनमानी बातें करती हैं उसे रिझाती, चुपाती, हँसाती, रुलाती, सुलाती और जगाती हैं। उसकी भावनाओं का सारा संसार ही उसके अपने बच्चे तक सीमित हो कर रह जाता है। अंग्रेजी समाज में माता का ऐसा एकांगी प्रेम बच्चे को प्रायः नहीं मिल पाता।

भारतीय माता अपने बच्चे के लिये त्याग और तप करने में अंग्रेज माता से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर होती है। फूहड़ से फूहड़ भारतीय माँ शीत की कठिन रात में बच्चे के विस्तर पर मूत्र त्याग कर देने पर सहर्ष बच्चे को सूखे भाग में सुला कर स्वयं गीले में पड़ रहना स्वीकार कर लेती हैं पर अंग्रेज माताओं में त्याग की ऐसी भावना नहीं होती। इन्हीं सब कारणों से अपने बच्चे के प्रति अंग्रेज माँ की अपेक्षा भारतीय माँ का सम्बन्ध अधिक ममतापूर्ण और मधुर होता है। माँ के इस सम्बन्ध की ही अभिव्यक्ति लोरियों और ललेबीज में होती हैं। अंग्रेजी ललेबीज में हमें वह माधुर्य और सहज स्वाभाविक स्नेहपूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं मिलती जो भारतीय लोरियों में मिलती है।

आधुनिक खड़ी बोली में लोरियों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। बाल गीतकारों में सबसे पहले लोरी लिखने में पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अपनी रुचि दिखाई है। उनकी लिखी एक लोरी है:

आरी नींद लाल को आजा।
उसको करके प्यार सुलाजा॥
तुझे लाल है ललक बुलाते।
अपनी आँखों पर बिठलाते॥
तेरे लिये बिछाई पलकें।
बढ़ती ही जाती हैं ललकें॥
क्यों तू है इतनी इठलाती।
आ आ मैं हूँ तुझे बुलाती॥
गोद नींद की है अति प्यारी।
फूलों से है सजी सँवारी॥
उसमें बहुत नरम मन भाई।
रुई की है पहल जमाई॥
बिछे बिछौने हैं मखमल के।
बड़े मुलायम सुन्दर हलके॥
जो तू चाह लाल उसकी कर।
तो तू सोजा आँख मूँद कर॥
मीठी नींदों प्यारे सोना।
सोने की पुतली मत खोना॥
उसकी करतूतों के ही बल।
ठीक ठीक चलती है तन कल॥

लोरियों के आवश्यक तत्वों की दृष्टि से इसमें वह सब गुण मौजूद हैं जो किसी लोरी को रोचक बनाते हैं। कवि ने इसे माता के अन्तरतम में बैठ कर लिखा है। पर यह कलात्मकता के प्रति अपने मोह का संवरण सर्वथा नहीं कर पाया है। अन्तिम दो पंक्तियाँ तो पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि हम अनावश्यक हैं।

लोरियाँ लिखना वास्तव में पुरुषों का काम भी नहीं है। माताओं के ही मनोभाव उनमें व्यक्त होते हैं और वही उन्हें गाती हैं। पुरुष प्रयत्न करके भी भावों की वह कोमलता और कल्पनाओं की वह बारीकी नहीं ला सकते, जिनके आधार पर मधुर और सरस लोरियाँ लिखी जाती हैं। अतएव स्त्री कवियित्रियाँ ही यदि लोरियाँ लिखें तो उनमें पुरुषों की लिखी लोरियों की अपेक्षा स्वाभाविकता अधिक आ सकती है। हिन्दी की आधुनिक कवियित्रियों में से बहुत कम ने लोरियाँ लिखने की ओर कुछ ध्यान दिया है। श्रीमती महादेवी वर्मा, श्रीमती तारा पांडेय इत्यादि ने तो बच्चों के लिये कुछ लिखा ही नहीं। जिन स्त्री कवियित्रियों ने बच्चों के लिये बाल गीत लिखे भी हैं उनमें सबसे प्रमुख श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी लोरियाँ लिखने की ओर कोई रुचि नहीं दिखाई। उनका जीवन राजनैतिक और सामाजिक अधिक था अतएव उनके बाल गीतों में भी हम सामाजिक चेतना का प्रभाव स्पष्ट देख सकते हैं। कुछ बाल गीतों में उन्होंने माँ की स्वाभाविक ममता का बहुत सुन्दर और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है जैसे एक कविता है 'मेरी बिटिया रानी':

मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन सी फूल उठी वह छोटी सी कुटिया मेरी ॥
माँ 'ओ' कह कर बुला रही थी मिट्टी खा कर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने लाई थी ॥
मैंने पूछा यह क्या लाई ? बोल उठी वह—माँ काओ।
फूल फूल में उठी खुशी से मैंने कहा—तुम्हीं खाओ ॥

लोरी के आवश्यक तत्व इसमें विद्यमान न होने के कारण हम इसे कविता या बाल गीत ही कह सकते हैं लोरी नहीं। श्रीमती विद्यावती कोकिल ने कुछ सुन्दर लोरियाँ लिखी हैं। उदाहरणार्थ हम एक यहाँ प्रस्तुत करते हैं:

निंदिया बहुत ललन को प्यारी।
अपने प्राणों का दीपक कर जीवन की कर बाती,
सिरहाने बैठी बैठी हूँ कब से उसे जगाती,
भभक उठी है छाती मेरी आँखें हैं कुछ भारी,
निंदिया बहुत ललन को प्यारी।
कभी हँसाने से न हँसा वह ऐसा असमझ भोरा,
सोते सोते हँसा नींद में मेरा कौन निहोरा,
प्रति दिन मन मारे रह जाती कितनी उत्सुकता-री।
निंदिया बहुत ललन को प्यारी।
कौन कथा कह कर ना जाने परियाँ उसे हँसातीं,
मेरी कथा लड़खड़ाती सी चुम्बन में रह जाती,
मैं रह जाती हूँ कहने को मन ही मन कुछ हारी।
निंदिया बहुत ललन को प्यारी।

इस गीत में लोरियों में सबसे अधिक अपेक्षित गेय तत्व विद्यमान है। माँ की ममता और बच्चों को सोते से जगाते समय के मनोभाव और अपनी चेष्टाओं की असफलता का अच्छा चित्रण इसमें किया गया है। लेकिन कोकिल जी के अध्यात्म विषयक विचारों के कारण इस लोरी में एक ऐसा भारीपन आ गया है कि अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। प्राणों का दीपक और जीवन की बाती करने की बात साधारणतया स्त्रियाँ लोरी गाते समय नहीं सोचतीं और बच्चे को देर तक जगाते रहने की चेष्टा के बाद भी उनकी छाती न तो भभक उठती है और न आँखें भर आती हैं। किसी स्त्री का कोई बच्चा ऐसा भोला भी कभी न होगा जो जागते में कभी हँसे ही न। अवचेतन मन के दर्शन का बहुत अधिक प्रभाव कोकिल जी पर है इसलिये उन्होंने इस लोरी में बच्चे को नींद में ही हँसते हुए देखा है। आध्यात्मिक दृष्टि से इस लोरी का अच्छा विवेचन किया जा सकता है और आत्मा-परमात्मा के विषय में विचार करने वाले बड़े इसमें रस भी ले सकते हैं पर लोरियों में जो मातृ-हृदय के सरल स्वाभाविक उद्गार व्यक्त होना चाहिये उनकी दृष्टि से इसे हम श्रेष्ठ लोरियों की पंक्ति में नहीं रख सकते।

मेरठ की सुप्रसिद्ध समाजसेवी महिला कवयित्री और लेखिका श्रीमती कमला चौधरी ने भी कुछ सुन्दर लोरियाँ लिखी हैं। 'चित्रों में लोरियाँ' नाम से उनकी एक सुन्दर पुस्तक भी छपी थी। उनकी लोरियों में एक स्वाभाविकता के साथ-साथ पढ़ने या सुनने वाले बच्चे के मन को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति भी है। पर उन्होंने जीवन के अन्य कार्य-क्षेत्रों में अधिक उलझ जाने के कारण अधिक लोरियाँ नहीं लिखीं या वह प्रकाशित होकर सामने नहीं आईं। श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने बाल गीतों के साथ-साथ कुछ लोरियाँ भी लिखी हैं। उनमें पारिवारिक जीवन और माँ की भावनाओं का बड़ा रोचक चित्रण है। श्रीमती शान्ति अग्रवाल, कामिनी दीदी आदि बाल गीत लेखिकाओं ने लोरियों के क्षेत्र को बिलकुल अछूता ही छोड़ रखा है। लोरियाँ लिख कर हिन्दी में जिन्होंने सबसे अधिक यश अर्जित किया वह श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया हैं। उनकी लोरियों का क्षेत्र व्यापक भी है और माँ के मन की ममता और भावनाओं की कोमलता का उनमें अच्छा चित्रण हुआ है। उनकी एक बहुत प्रसिद्ध लोरी है:

चाँदनी की चादर उढ़ाऊँ तुझे मोहना।
सोजा मेरा लालना ॥
सूरज भी सो गया, पंछी भी सो गये,
डालों की गोदी में फूल सभी खो गये।
तू भी चुप सो जा झुलाऊँ तुझे पालना।
सोजा मेरा लालना ॥

इस छोटी-सी लोरी में कल्पना की कोई ऊँची उड़ान नहीं। किन्तु माँ की बच्चे को सुलाते समय की स्वाभाविक भावना सरल गीतमय शैली में व्यक्त हुई है। सूरज और पंछियों के सो जाने और पत्तों की गोद में फूलों के न दिखाई देने का उल्लेख करके एक ऐसा वातावरण कुशल कवि ने प्रस्तुत कर दिया है कि उस वातावरण में बच्चे को भी सो जाने की प्रेरणा देना नितान्त स्वाभाविक लगता है। इस समय ही बच्चे से यह कहना कि मैं तुझे पालना झुलाती हूँ मनोभाव को पराकाष्ठा तक पहुँचा देता है। भावना की इतिश्री कार्य में ही होती है। सुलाने के लिये झुलाने से अधिक उपयुक्त और कोई कार्य हो ही नहीं सकता। इन सब बातों के साथ ही इसमें गजब का गेय तत्व विद्यमान है। इसलिये शकुन्तला जी की इस लोरी को श्रेष्ठतम लोरियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

शकुन्तला जी की एक दूसरी लोरी है:

चन्दा प्यारे आ जाओ। नींद रंगीली ले आओ।
चाँद लोक की परियाँ भेजो, भेजो मृग का छौना,
मुन्ना मेरा सोने जाता लगे न इसको टोना,
पलना सोने का लाओ। चन्दा प्यारे आ जाओ।
नीले रंग के पलने में हो तारे टँके सुनहले,
किरणों की हो डोरी उसमें झमके नीले पीले,
लोरी मीठी गा जाओ। चन्दा प्यारे आ जाओ ॥

इस लोरी में बच्चे को सोने के लिये प्रेरित करते समय वह चान्द से रँगीली नींद को ले कर आकाश में निकल आने को कहती है। चन्द्रमा के साथ चान्द लोक की परियों और चन्द्रमा में रहने वाले मृग छौने का ध्यान आना भी स्वाभाविक है। पर चन्द्रमा के उदित होने से जिस बात की आशंका माँ को हो सकती है उसे टोना न लगने का उल्लेख करके कवियित्री ने इस लोरी को माँ के हृदयों को बड़े मार्मिक ढंग से स्पर्श करने वाला बना दिया है। इसके अतिरिक्त ही सोने के पलंग, सुनहरा तारा, किरणों की डोरी और नीले पीले झुमकों का उल्लेख होने से माँ की ममता के साथ माँ जिन सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं की कल्पना कर सकती है उनका वर्णन भी रोचक ढंग से हो गया है। प्रत्येक माता अपने बच्चे को अधिक से अधिक ऐश्वर्य-सुख से मंडित देखना चाहती है और इच्छा करती है कि उसका बच्चा सबसे अधिक सुख आराम से रहे। माँ की इसी भावना की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति इसमें हुई है।

शकुन्तला जी की लिखी लोरियों की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने केवल पुरुष बच्चों के लिये ही लोरियाँ नहीं लिखीं। ऐसा करना मनोविज्ञान के अनुसार अधिक स्वाभाविक होता क्योंकि स्त्रियों का आकर्षण अपने पुरुष बच्चों के प्रति स्त्री बच्चों की अपेक्षा अधिक होता है। शकुन्तला जी ने अपनी राजदुलारी मुन्नी को सुलाने के लिये सुन्दर लोरियाँ लिखी हैं—एक यहाँ प्रस्तुत है:

आँख बन्द कर राज दुलारी तुझे सुनाऊँ लोरी।
लाल मुनइयाँ चिड़िया पालूँ,
आम डाल पर पलना डालूँ,
रेशम की दे डोरी।
तुझे सुनाऊँ लोरी॥
लहँगा चुनरी तुझे मँगाऊँ,
चान्द सितारों से जड़वाऊँ,
सो जा मुन्नी मोरी।
तुझे सुनाऊँ लोरी॥

स्त्री कवियित्रियों में कोई भी दूसरी कवियित्री हमें ऐसी नहीं मिलती जिसने ऐसी मर्मस्पर्शी और मधुर लोरियाँ लिखी हों जैसी शकुन्तला सिरोठिया जी ने लिखी हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध बाल गीतकार अशोक एम० ए० की धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी चन्द्रिका ने भी कुछ सुन्दर लोरियाँ लिखी हैं पर उनमें कल्पनाओं की वह रंगीनी और भावों की वह मार्मिकता नहीं है जो शकुन्तला जी की लोरियों में हमें मिलती है—उनकी एक लोरी यहाँ प्रस्तुत है:

सो जा ललना, सो जा ललना।
माँ की गोदी तेरा घर है,
तेरा घर है तेरा घर है,
फिर क्यों तेरे मन में डर है,
सोने चान्दी का है पलना।

सो जा ललना सो जा ललना॥
मीठी मीठी नींद बुला दूं,
थपकी देदे तुझे सुला दूं,
कभी न रोना और मचलना।
सो जा ललना, सो जा ललना॥
चन्दा आया चन्दा आया,
साथ बहुत से तारे लाया,
मीठा दूध कटोरा लाया,
अच्छे पथ पर ही तुम चलना।
सो जा ललना, सो जा ललना॥

यों तो लोरी में माँ अपने बच्चे के विषय में कोई भी कल्पना या भावना व्यक्त कर सकती है किन्तु बच्चा बड़ा हो कर अच्छे पथ पर चले यह माँ के मन में समाज के प्रभाव से आई हुई भावना है। अच्छा पथ कौन सा है इसे समाज ही बड़ा होकर उसे बतायेगा। लोरी में माँ की अपनी निजी भावना की अभिव्यक्ति ही अपेक्षाकृत अधिक मधुर लगती है। इसी प्रकार शिक्षा का भाव भी लोरी गाते समय माँ के मन में नहीं आ सकता। इस लोरी में चन्द्रिका जी ने बच्चे को आदेश दिया है कभी न रोना और मचलना जो बच्चे के स्वाभाविक गुण हैं। इसलिये कोई बच्चा इस लोरी में दिये गये आदेश को खुश हो कर स्वीकार कैसे कर सकता है।

हिन्दी के पुरुष बालगीतकार कवियों में राजस्थान के श्री शम्भू दयाल सक्सेना ने सबसे अधिक लोरियाँ लिखी हैं। सक्सेना जी एक वयोवृद्ध व्यक्ति हैं और बच्चों के लिए बहुत वर्षों से लिखते रहे हैं। शिशु लोरी, पालना, चन्द्र लोरी, रेशम झूला, मधु लोरी और आरी निंदिया इत्यादि नामों से उनकी लिखी लोरियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी लोरियों में एक भारतीय परिवार में रहने वाली नारी की बच्चे के प्रति कोमल भावनायें उपयुक्त शब्दों में व्यक्त हुई हैं। उनकी एक लोरी है:

आ री निंदिया, आ री निंदिया।
सपने भर भर ला री निंदिया॥
सोता है भैया पलने में।
तारों को दे जा री निंदिया।
प्यारी निंदिया, प्यारी निंदिया॥
चन्दा को संग ला री निंदिया।
मुन्ना के फुलके गालों पर,
फूलों की छवि प्यारी, निंदिया।
ओरी ऐसी वैसी निंदिया॥
तेरी ऐसी तैसी निंदिया।
है तू निपट अनारी निंदिया॥

ओरी निंदिया आ री निंदिया।
माथे पर दे जा री बिंदिया॥

के इस लोरी में बच्चे पलने में सोने और उसके गालों पर फूलों की छवि छाने का वर्णन किया गया है और नींद से सपने और चन्द्रमा ले कर आने का आग्रह भी किया गया है किन्तु नींद के लिये "तेरी ऐसी तैसी" जैसे अपशब्द भी कहे गये हैं। नींद को देर तक बुलाने पर भी न आने से अक्सर माताओं को क्रोध आ जाता है। पर उस क्रोध की अभिव्यक्ति लोरी में अच्छी नहीं लगती। यदि क्रोध की वह भावना उलाहने के रूप में सुन्दर ढंग से कही गई होती तो रोचक भी लग सकती थी पर "तेरी ऐसी तैसी" कहने से जिस उद्देश्य से लोरी गाई जाती है वह भी पूरा नहीं होता। बच्चा तो इस प्रकार की क्रोधावेश की बात को सुन कर बजाय सोने के जग ही पड़ेगा।

उनकी लिखी बहुत सी लोरियों में केवल शब्द चित्र उतार कर रख दिये गये हैं। पर कहीं-कहीं माँ के मन की भावुकता को साधारण पारिवार के वातावरण में व्यक्त करके इतना सुन्दर रूप दिया है कि कोई चमत्कार या मार्मिक अभिव्यंजना उनमें न होते हुए भी वह हृदय को आकर्षित करती हैं:

कहाँ गई तू ओरी निंदिया मुँह से जो नहिं बोलै।
कब से मेरा छगन मगन हो तुझे बुलाता डोलै॥
बाबा लौट खेत से आये दादा दूर नगर से।
तू तो भी रह गई कहाँ री आती कौन डगर से॥
नाना ने दो धावन भेजे तुझे बुलाने को री।
बिलम कहाँ तू रही बावरी गाती गाती लोरी॥
मुँह माँगा देने को नानी दादी तुझे बुलाये।
भइया के पलकों पर आ जा सैनों से समझाये॥

इसी प्रकार पालना के गीतों में भी सक्सेना जी ने मधुर पारिवारिक सम्बन्धों के चित्र प्रस्तुत किये हैं। पालने के गीत उन गीतों को कहते हैं जो मातायें बच्चों को पालने पर झुलाते समय गाया करती हैं। उनमें मातायें अपने मन की प्रसन्नता, सन्तोष, सुख और बच्चों के रूप सौन्दर्य का वर्णन करती हैं सक्सेना जी का एक पालने का गीत है:

हिंडोला झूलें लाल हमारे।
हँस हँस मौसी उसे झुलाये मामी आ पुचकारे॥
झोंका एक बुआ का झूलो भइया कुँवर सलोने।
झूल दूसरा लो नानी का फिर झूले कब होने॥
दादी का भी झोंका ले लो चूम रही जो मुख है।
यह जीवन काँटों का प्याला जिसमें दुख ही दुख है॥
बचपन भर ही माँ के मोहन तुम्हें सुलाये लोरी।
फिर पग पग पर आने को हैं घड़ियाँ पाहुर थोरी॥

इस पालना के गीत में कवि ने जीवन के अनुभवों के आधार पर एक कटु यथार्थ कहने के आवेश में इस सत्य को सर्वथा भुला दिया है कि मातायें किसी भी स्थिति में न तो अपने

बच्चे के अशुभ भविष्य की कल्पना कर सकती हैं और न उसे पालने में झुलाते हुए शुभ समय में अपने मन में दुख ही ला सकती हैं। सुख की तुक दुख से जोड़ने के बाद से इस गीत का सारा माधुर्य ही समाप्त हो जाता है। मातायें इस प्रकार के गीतों में भी टोना करने, बलायें उतारने या आने-जाने वाले अनिष्ट की शंका से अपने बच्चों को बचाने के लिये अन्य उपायों की चर्चा तो कर सकती हैं पर जीवन दुख ही दुख से भरा है, और भविष्य के जीवन में पग-पग पर मुसीबतें आने वाली हैं इस प्रकार की बातों पर स्वाभाविक रूप से उनका ध्यान नहीं जा सकता।

लोरियों का क्षेत्र हिन्दी में वास्तव में उपेक्षित रहा है। सर्वश्री पं० राम नरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, स्वर्ण सहोदर, सोहन लाल द्विवेदी, विद्याभूषण विभु आदि प्रमुख बाल गीत लेखकों में से किसी ने भी लोरियाँ लिखी ही नहीं। ठा० श्री नाथ सिंह और श्री राम सिंहासन सहाय 'मधुर' ने इस ओर कुछ ध्यान अवश्य दिया है। नये बाल गीतकार कवियों में श्री राष्ट्रबन्धु ने एक सुन्दर लोरी लिखी है "कन्तक थैयाँ धुनूँ मनैयाँ":

कंतक थैयाँ धुनूँ मनइयाँ,
चंदा भागा पइयाँ पइयाँ॥
यह चन्दा हलवाहा है नीले नीले खेत में।
बिलकुल सैंत मैंत में, रत्नो भरे खेत में॥
किधर भागता लइयाँ पइयाँ,
कन्तक थैयाँ धुनूँ मनइयाँ,
अन्धकार है घेरता टेढ़ी आँखें हेरता।
चान्द नहीं मुँह फेरता, राकेट को है टेरता॥
मुन्नू को लूंगा मैं दइयाँ,
कन्तक थैयाँ धुनूँ मनइयाँ,
मिट्टी के महलों के राजा ताली तेरी बढ़िया बाजा।
छोटा छोटा छोकरा, सिर पर रक्खे टोकरा॥
राम बनाये डोकरा,
बने डोकरा करूँ बलइयाँ।
कन्तक थैयाँ धुनूँ मनइयाँ॥

इस लोरी में कुछ-कुछ लोक गीतों जैसा आनन्द आता है। कन्तक थैयाँ धुनूँ मनइयाँ, लइयाँ पइयाँ, कइयाँ, बलइयाँ तथा सैंत मैंत हेरना टेरना इत्यादि बहुत से शब्द सीधे लोक भाषा से लिये गये हैं। पहिले दो छन्दों में केवल वर्णन है। और चान्द के राकेट को टेरने की बात कह कर कवि ने नवीन युग की वैज्ञानिक उन्नति की ओर संकेत किया है पर लोरी की आत्मा जो माँ की ममता होती है उसकी अभिव्यक्ति केवल अन्तिम छन्द की कुछ पंक्तियों में ही हुई है—"छोटा-छोटा छोकरा राम बनाये डोकरा। बने डोकरा करूँ बलइयाँ।"

लोरी को अन्य बालगीतों से अलग करने वाला तत्व माँ की ममता और उसके मन की वह भावनायें है जो स्वभावतः बच्चे के प्रति रहती हैं। वातावरण और परिस्थितियों की सहायता से कवि उन्हीं भावनाओं को आकर्षक रूप दे कर व्यक्त करता है। इसलिये

वातावरण और परिस्थितियों का चित्रण लोरी के मुख्य वर्ण्य विषय नहीं। उनका उपयोग केवल इसलिये किया जाता है कि उस पृष्ठभूमि पर माँ की ममता का चित्र सुन्दर उतर सके। लोरी लिखते समय कवि के सामने दो विशेष कठिनाइयाँ होती हैं। एक तो यह कि उसका काम केवल उन भावनाओं या कल्पनाओं को व्यक्त करना होता है जो माँ के मन में अपने बच्चे के प्रति रहती हैं। माँ का हृदय बच्चे के प्रति ममता का एक अथाह सागर होता है अतएव जो कवि इस अथाह सागर में जितना कुशलतापूर्वक गोते लगा सकता है उतने ही भाव-रत्न वह बाहर निकाल कर ला सकता है। माँ के हृदय-सागर में गोते लगाने के लिये यह आवश्यक होता है कि गोताखोर माँ को प्यार करे। माँ को प्यार करने का अर्थ होता है माँ और बच्चा दोनों को समान मनोवेग से प्यार करे। इसीलिये अधिकतर लोरी लिखने वाले पुरुष कवि की पहिली कठिनाई माँ और बच्चा दोनों को एक साथ प्यार करने की होती है। दूसरी कठिनाई लोरी लिखने वाले कवि के लिये यह होती है कि उसे लोरी में माँ की भावनाओं और कल्पनाओं को ऐसा सरल और सहज स्वाभाविक रूप में व्यक्त करना पड़ता है जिससे छोटे से छोटा अबोध बालक भी उससे प्रभावित हो सके। यह काम बहुत कुछ तो लोरी की गीतात्मकता से पूरा हो जाता है पर अगर लोरी में माँ के हृदय में उठने वाली ऊँची-ऊँची कल्पनाएँ और बड़ी-बड़ी भावनायें आलंकारिक ढंग से कठिन भाषा में व्यक्त कर दी जायें और उसमें गीतात्मकता हो तो भी उस अभिव्यक्ति का उपयोग लोरी के रूप में नहीं किया जा सकता। लोरी में सरल भावों की सरल- तम अभिव्यक्ति होती है। तभी वह मनोरंजक और प्रभावशालिनी लग सकती है। इसके लिये लोरी के लेखक को बाल मन की भी उसी तरह थाह लेना होता है जैसे माँ के मन की।

साधारण बाल गीतों को लिखने में यह दोहरी कठिनाई कवि के सामने नहीं होती। उन्हें लिखते समय उसे केवल बच्चे के मन में प्रवेश करके बच्चों की कल्पनाओं और भावनाओं को अपनाना पड़ता है।

हिन्दी के पुरुष बाल गीत लेखकों में बिहार के श्री ब्रज किशोर नारायण ने भी बड़ी भावपूर्ण लोरियाँ लिखी हैं। "आ री निंदियाँ" नाम से उनकी लोरियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। उनकी लोरियों में एक ऐसी सरल स्वाभाविकता विद्यमान मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि वह एक सिद्धहस्त कलाकार की कृति है। उनकी दो लोरियाँ हम उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत करते हैं :

मेरी बिटिया सोजा सो जा।
कुत्ता तबला बजा रहा है,
नाच रही है बिल्ली।
कुत्ता जायेगा कलकत्ता,
बिल्ली जाये दिल्ली।
घोड़ा बाबू ढोल बजाये,
बछड़ा जी सारंगी।
बन्दर बाबू काम न करते,
खाते हैं नारंगी।

मेरी बिटिया सोजा सो जा।

दूसरी लोरी है :

सोओगे तो पैसा दूँगी,
सोओ मेरे लाल।
बूढ़ा मेढक गाल बजाता,
टर टर टर टर टर।
बाघराम हैं पानी पीते,
सर सर सर सर सर।
बड़ी मेढकी रोटी खाती छोटी खाती भात।
बूढ़े मेढक ने छोटी को मारी कस कर लात॥
छोटी गिर गई छप्प,
सोओ मेरे लाल।

इन लोरियों से प्रकट होता है कि कवि को बाल मन की भावनाओं का अच्छा ज्ञान है। बच्चे जब कहानियाँ समझने लगते हैं तो लोरियों को छोड़ कर कहानियाँ सुनते-सुनते भी सो जाते हैं। कहानियों में उन्हें माँ की ममता की अभिव्यक्ति नहीं मिलती पर उन्हें सुन कर उनकी कल्पना को जो शान्ति मिलती है उससे ही उन्हें नींद आ जाती है। पर कहानियाँ अवस्था में अपेक्षाकृत बड़े बच्चों को सुलाने के लिये ही काम में लाई जाती हैं। नारायण जी की इन लोरियों में भी बच्चों की कल्पनाओं को शान्त करके सुलाने की कहानियों जैसी बात हमें मिलती है। "मेरी बिटिया सो जा सो जा" या "सोओ मेरे लाल", अन्य पंक्तियों के साथ इस प्रकार से जुड़े हुए हैं जैसे शेष सब पंक्तियों से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो।

मैंने भी अपने "मुन्ना के गीत" नामक पुस्तक में कुछ लोरियाँ लिखी हैं। मेरी लोरियों में माँ की ममता की अभिव्यक्ति कहाँ तक हुई है और वह बच्चों की भावनाओं के कहाँ तक अनुरूप हैं इसका निर्णय मैं स्वयं नहीं कर सकता। निम्नलिखित लोरी एक स्त्री के बच्चे को कन्धे पर डाले शाम के समय थपकियाँ दे कर सुलाने का प्रयत्न करते हुए गाने की कल्पना करके लिखी गई है :

मेरा मुन्ना बड़ा सयाना,
शाम हुये सो जाता है।
ऊधम नहीं मचाता है॥
बिल्लो रानी यहाँ न आना अब तुम शोर मचाने को।
चूहे वह बैठी है बिल्ली तुझे पकड़ ले जाने को॥
मेरा मुन्ना तुम दोनों के झगड़े से घबराता है।
साँझ हुए सो जाता है॥
मेरा मुन्ना बड़ा सयाना ऊधम नहीं मचाता है।
ऊधम नहीं मचाता है॥
बन्दर बाबा सो सो करके फिर न उतरना आँगन में।

मुन्ना के हाथों का लड्डू छीन न जाना छन में ॥
मेरा मुन्ना अब आँगन में नहीं नाचता गाता है।
सोने में सुख पाता है ॥
मेरा मुन्ना बड़ा सयाना साँझ हुए सो जाता है।
ऊधम नहीं मचाता है ॥

चन्दा मामा तुम क्यों आये छत पर चढ़ मुस्काने को।
सब छोटे छोटे बच्चों को सुन्दर सपन दिखाने को ॥
मेरा मुन्ना अभी तुम्हारी आहट से अकुलाता है।
तुमको नहीं बुलाता है ॥

मेरा मुन्ना बड़ा सयाना साँझ हुये सो जाता है।
ऊधम नहीं मचाता है ॥

पालने के गीतों में भी मातायें अपनी ही भावनाओं को व्यक्त करती हैं। बच्चे को देख-देख कर अनेक प्रकार की कल्पनायें और भावनायें उनके मन में उठती हैं। बच्चे के पालने में सो जाने के बाद भी वह पालने को झोंका देती रहती है जिससे उसके रुक जाने से बच्चे की आँख न खुल जाये। पर माँ की कल्पना उस समय भी अपनी गति से उड़ती रहती है। इसी भाव को मैंने अपने निम्नलिखित पालने के गीत में व्यक्त किया है:

मुन्ना झूले पालना।
धीरे धीरे धीरे डोल
मुन्ना झूले पालना।
मुन्ना बहुत बहुत रोया,
चुप हो अभी अभी सोया,
चुहिया यहाँ न चूँ चूँ बोल
मुन्ना झूले पालना॥
सुन्दर देख रहा सपना,
परियों का वह महल बना,
टामी! दरवाजा मत खोल
मुन्ना झूले पालना ॥
सो कर जब यह जागेगा,
खाने को कुछ माँगेगा,
रक्खूँ माखन मिसरी घोल
मुन्ना झूले पालना ॥

पालने के गीतों में माताओं की सब प्रकार की भावना और कल्पनायें व्यक्त की जा सकती

हैं पर उनमें माधुर्य तभी आता है जब वह माँ की शुभाकांक्षा और ममता की प्रेरणा से उत्पन्न हों।

लोरियों और प्रभातियों में प्रधान अन्तर यही है कि लोरियाँ बच्चों को सुलाने और प्रभातियां उन्हें जगाने के लिये गाई जाती हैं। प्रभाती में सूर्योदय के कुछ समय पूर्व से कुछ समय बाद तक का वर्णन होता है। तब तक सब जग उठ कर अपने-अपने काम में लग जाते हैं। प्रातःकाल का समय वैसे भी अपने वातावरण से नई स्फूर्ति उमंग नई-नई प्रेरणायें देने वाला और उत्साह बढ़ाने वाला होता है। सूर्य की सुनहरी किरणें आ कर संसार को सोने-सा जगमगा देती हैं। फूल कली खिल रही होती हैं। शीतल पवन बह रहा होता है और चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसलों से बाहर आ कर चहचहाने लगती हैं। ऐसे समय में मातायें अपने नन्हें-मुन्नों से विस्तर छोड़ने को कहती और उनके भविष्य के जीवन के नये-नये सपने देखा करती हैं। संध्या के समय जो एक प्रकार की गंभीरता वातावरण में परिव्याप्त रहती है वह प्रातःकाल नहीं होती। प्रभातियों का भाव क्षेत्र लोरियों से अधिक व्यापक और यथार्थ के अधिक निकट होता है। प्रभातियों में मातायें अपने मन की सुकोमल भावनायें ही नहीं वीरता, साहस और उत्साह की बातें भी कह सकती है जिनसे उनके बच्चों में वैसे ही भाव जागृत हों। बच्चों को जगाते समय प्रभातियाँ गाने का उतना रिवाज नहीं है जितना सुलाते समय लोरियाँ गाने का। फिर भी प्रभातियाँ या जागरण के गीत हिन्दी में लोरियों से कम नहीं लिखे गये हैं। लोरियों के समान ही प्रभातियों के भी आदि कवि सूरदास ही हैं। खड़ी बोली में लिखी गई प्रभातियाँ हमें आधुनिक काल में ही मिलती है। यह प्रभातियाँ किसी एक राग, स्वर या लय में आबद्ध करके नहीं लिखी गई हैं। भिन्न-भिन्न स्वरों, लयों, राग-रागिनियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों की प्रेरणा से लिखी हुई प्रभातियाँ हिन्दी में हमें मिलती हैं। कुछ कवियों ने प्रभाती की मूल भावना का राष्ट्रीय चेतना और विकास की भावना से सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा भी की है। जैसे कि पं० सोहन लाल द्विवेदी का यह गीत है:

उठो उठो
पत्ती डोली चिड़ियाँ बोलीं,
हुआ सबेरा उठो उठो।
छाई लाली क्या ही आली,
मिटा अन्धेरा उठो उठो।
आलस त्यागो प्यारे जागो,
आँखें खोलो उठो उठो।
देखो झाँकी भारत माँ की,
जय जय बोलो, उठो उठो।

एक दूसरा गीत अब्दुल रहमान सागरी का है:

जागो और जगाओ।
बीत चुकी आलस की घड़ियाँ,
जाग उठी अब सोई चिड़ियाँ,

जागे फूल खिली अब कलियाँ,
तुम भी जागो आओ।
जागो और जगाओ ॥
जाग रहा है कोना कोना,
फिर अपना यह कैसा सोना,
क्या सो कर है सब कुछ खोना,
उठो होश में आओ।
जागो और जगाओ ॥
जागे तुर्क जगे जापानी,
संभल चुके हैं अब ईरानी,
तुमको है कैसी हैरानी,
आगे कदम बढ़ाओ।
जागो और जगाओ ॥

राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से यह एक सुन्दर गीत है। प्रातःकाल का वर्णन भी इसमें किया गया है। पर प्रभाती की मूल प्रेरणा माता की बच्चे के प्रति सद्भावना होती है। उसका इस गीत में अभाव है। इसलिये इस प्रकार के गीतों को एक बाल गीत ही कह सकते हैं प्रभाती नहीं।

श्री शम्भू दयाल सक्सेना का एक प्रभात गीत है :

लाल, बीत गई रात उठो हो गया प्रभात
फूल गये फूल पात, कुंज किरण सारे।
कल कल छल छल प्रपात गुंजत मिल मधुपव्रात
हरी दूब ओस स्नात, मौन कौन धारे।
मैया ले दूध भात बैठी तन मन सिहात
जागो जागो सुगात कान में पुकारे।

इस गीत में यदि अन्तिम दो पंक्तियाँ न होतीं तो यह प्रभात का वर्णन करने वाला एक साधारण गीत होता। अन्तिम पंक्तियों में माता के दूध भात ले कर बैठे होने की जो बात कही गई है उससे मातृ हृदय की ममता फूटी पड़ती है। सक्सेना जी का एक दूसरा प्रभात गीत है :

पलकें खोलो, रैन सिरानी।
बाबा चले खेत को हल ले सखियाँ भरतीं पानी ॥
बहुयें घर घर छाछ बिलोतीं गाती गीत मथानी।
चरखे के संग गुन गुन करती सूत कातती नानी ॥
मंगल गाती चील चिरैया आस्मान फहरानी।
रोम रोम में रमी लाडली जीवन ज्योत सुहानी ॥
आलस छोड़ो, उठो न सुखदे! मैं तब मोल बिकानी।
पलकें खोलो हे कल्याणी ॥

इस गीत में सीधे ढंग से माता की मनोभावना की अभिव्यक्ति नहीं है किन्तु जिन बातों को ले कर प्रभात का वर्णन किया गया है वह सब ऐसी बातें है जिनसे माँ अपनी बच्ची के मन में परिवार के प्रति प्रेम और सद्भावना का उदय करने में सफल हो जाती है।

हिन्दी के अन्य कवियों के लिखे अच्छे प्रभात गीत हमें नहीं मिलते। यों प्रातःकाल की सुन्दर छवि का वर्णन करते हुए बच्चों को जगने का आदेश बहुत गीतों में किया गया। पर उनमें माता के हृदय की बच्चों के प्रति होने वाली कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के अभाव के कारण हम उन्हें बाल गीत कह सकते हैं प्रभाती या प्रात गीत नहीं। लोरी या प्रभाती जैसी गीतात्मकता भी उन बालगीत में नहीं है। उदाहरण के लिये एक पुराना बालगीत है :

सूरज निकला मिटा अन्धेरा।
रात गई अब हुआ सबेरा ॥
लड़कों तुम भी आँखें खोलो।
छोड़ बिस्तरा टट्टी हो लो ॥
अपने हाथ पाँव मुँह धोलो।
कपड़े पहिन बाग में डोलो ॥
पूरब में लाली सी देखो।
सूरज की थाली सी देखो ॥
किरनें कैसी चमक रही हैं।
सोने जैसी दमक रही हैं ॥
चिड़ियाँ सब चहचहा रही हैं।
मीठी बोली सुना रही हैं ॥ इत्यादि

इस बाल गीत में सबेरे के समय का सुन्दर वर्णन है और बच्चों को बिस्तरा छोड़ने का आदेश भी। पर इसे कोई बड़ा बच्चा स्त्री या पुरुष छोटे बच्चों को सुनाने के लिये गा सकता है। माता की भावनाओं की अभिव्यक्ति का इसमें सर्वथा अभाव है। यह बच्चों की मनोभावनाओं के अनुरूप उनका अपना गीत ही कहा जा सकता है। इसमें बच्चों को सिखाने के उद्देश्य से कुछ बातें कही गई हैं जो लोरियाँ या प्रभात गीतों में जरा भी अपेक्षित नहीं होतीं। लोरियों और प्रभात गीतों की-सी गीतात्मकता भी हमें इसमें नहीं मिलती। इसलिये इसे साधारण बाल गीत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

गीतात्मकता प्रभाती का एक विशेष गुण है और इस दृष्टि से माता के वात्सल्य-पूर्ण हृदय की अभिव्यंजना न होते हुए भी कभी-कभी प्रकृति का वर्णन कर देने मात्र से गीत में प्रभाती-जैसा आभास होने लगता है। एक ऐसी ही प्रभाती लाला जगदल पुरी की लिखी हुई है :

जागो जागो जागो निकली पहिली किरन सबेरे की।
हुआ सबेरा जागा कौआ।
मिटा अन्धेरा भागा हौआ॥
सूरज की भट्टी का सोना असली किरन सबेरे की।
जागो जागो जागो निकली पहली किरन सबेरे की॥
जिसको पहली किरन छू गई।
उस पर मानों सुधा चू गई॥
नई उमंगों वाली मस्त सुनहली किरन सबेरे की।
जागो जागो जागो निकली पहिली किरन सबेरे की॥
फूल फूल पर किरन चमकती।
धूल धूल पर किरन चमकती॥
पानी की लहरों में दौड़ी पगली किरन सबेरे की।
जागो जागो जागो निकली पहिली किरन सबेरे की॥

इस गीत में आदि से अन्त तक प्रकृति का चित्रण है। और यह चित्रण इतना सजीव है कि प्रातःकाल का पूरा दृश्य आँखों के सामने आ प्रस्तुत होता है। माँ की अपनी कही हुई कोई बात इसमें "जागो जागो" कहने के अतिरिक्त नहीं है। गीतात्मकता तो कूट-कूट कर भरी है। लय और ध्वनि से ही ऐसा प्रतीत होता है कि किरन नाच-नाच कर यह गीत गा रही है। इस गीत में कोई ऐसी बात भी नहीं कही गई जिससे यह साधारण बाल गीत या राष्ट्रीय बाल गीत की श्रेणी में रखा जा सके। अतएव हम इस प्रकार की रचना को प्रभाती गीतों की श्रेणी में ही ले सकते हैं।

मैंने भी अपने मुन्ना के गीतों में कई प्रभातियाँ लिखी हैं उनमें से एक यहाँ प्रस्तुत की जाती है :

मुन्ना की आँख खुली प्रात हुआ मेरा।
इसके सोने तक तो रात रही मेरी।
घिरी रही आँखों में अमा की अंधेरी॥
खुलते ही आँख लगा झाँकने सबेरा।
मुन्ना की आँख खुली प्रात हुआ मेरा॥
चिड़ियों ने राग मधुर गाया मन भाया।
बरगद के पीछे से सूर्य निकल आया॥
किरनों ने आ मेरा घर आँगन घेरा।
मुन्ना की आँख खुली प्रात हुआ मेरा॥
मैं अपने मुन्ना को गोद लिये घूमूँ।
बार बार हाथ माथ गाल अधर चूमूँ॥
दृष्टि रहे जब तक मैं देखूँ मुख तेरा।
मुन्ना की आँख खुली प्रात हुआ मेरा॥

पर लोरियों और प्रभात गीतों का महत्व हमारे आज के व्यस्त सामाजिक जीवन से धीरे-धीरे उठता जा रहा है। आज इस मशीन युग में माताओं को इतना अवकाश नहीं कि वह मानवीय भावनाओं से प्रेरित होकर उनका उपयोग बच्चों को सुलाने और जगाने के लिए कर सकें। फिर भी जब तक प्रत्येक बालक की जननी उसकी माँ है और माँ का सहज स्वाभाविक स्नेह अपनी सन्तान के प्रति है, बाल गीत साहित्य से लोरियों और प्रभातियों का सर्वथा लोप नहीं हो सकता।

---

८ : हिन्दी बालगीतों का वर्गीकरण

बाल गीतों का वर्गीकरण आवश्यकता और रुचि के अनुसार अनेक आधारों पर किया जा सकता है और प्रत्येक मनुष्य की अलग-अलग परिस्थिति और रुचि होने के कारण बाल गीतों की श्रेष्ठता के बारे में भी लोगों के अलग-अलग मत हो सकते हैं। किन्तु यदि हम बच्चों की दृष्टि से बाल गीतों को देखें तो बच्चों की मानसिक स्थिति, समझ, कल्पना-शक्ति इत्यादि को ध्यान में रखते हुए बाल गीतों की श्रेष्ठता के विषय में साधारणतः जिन परिणामों पर अलग-अलग पहुँचेंगे उनमें अधिक भिन्नता नहीं हो सकती और इसी दृष्टि से यदि हम हिन्दी में अब तक लिखे गये बाल गीतों का एक सुन्दर संचयन करना चाहें तो हमारे वर्गीकरण के आधार निम्नलिखित हो सकते हैं :

१. **आयु**––तीन वर्ष की आयु से ले कर १२ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिये लिखे गये गीत बाल गीतों की श्रेणी में आते हैं। इससे अधिक आयु के बच्चों को पढ़ने के लिये सरल कवितायें भी दी जा सकती हैं। बच्चों के मानसिक विकास, कल्पना और बुद्धि को ध्यान में रखते हुए इस तीन से १२ वर्ष तक की आयु को ४ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

१. तीन से पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चे,
२. पाँच से सात वर्ष तक की आयु के बच्चे,
३. सात से नौ वर्ष तक की आयु के बच्चे,
४. नौ से बारह वर्ष तक की आयु के बच्चे।

इन चारों वर्गों के बच्चों की कल्पना और बुद्धि के विकास के स्तर भिन्न-भिन्न होते हैं। तीन से पाँच वर्ष तक के बच्चों की मनोभावनाएँ अस्पष्ट और दृष्टि अपने आस-पास के व्यक्तियों और वस्तुओं तक ही सीमित होती है। पाँच से सात वर्ष के बच्चे में कौतूहल और जिज्ञासा की भावना अधिक होती है। सात से नौ वर्ष तक का बच्चा वस्तुस्थितियों में पारस्परिक सम्बन्ध को समझने की चेष्टा करता है और ९ से १२ वर्ष तक का बच्चा अपने को समाज का एक अंग समझने लगता है और ऐसा समझने में उसे सुख अनुभव होता है।

हिन्दी में आयु के इस वर्गीकरण को दृष्टि में रखते हुए बहुत कम कवियों ने लिखने का प्रयत्न किया है। अच्छे बाल गीत लिखने के लिये यह आवश्यक है कि लिखने वाला यह समझ सके कि किस आयु के बच्चों के लिये वह लिख रहा है।

२. **रस**––प्रत्येक बाल गीत का उद्देश्य पाठक या श्रोता के मन में रस की निष्पत्ति कराना होता है। बाल पाठक या श्रोता के मन में इस रस निष्पत्ति की प्रक्रिया भले ही

वह होती हो जो काव्यशास्त्रियों ने काव्य सिद्धान्त या मनोवैज्ञानिकों ने अपने ग्रन्थों में वर्णित की है। किन्तु बच्चों के कोमल और निश्छल हृदयों पर किस बात का किन परिस्थितियों में किन कारणों से क्या प्रभाव पड़ता है यह एक अलग अध्ययन और व्याख्या का विषय है। जो आलंबन, उद्दीपन, संचारी या व्यभिचारी भाव बड़ों के हृदय में किसी विशेष रस की अनुभूति करा देते हैं यह आवश्यक नहीं कि वही सब भाव बच्चों के हृदय में भी रसानुभूति के लिये आवश्यक हों। बच्चे अपने मन के बादशाह होते हैं और क्या बात उन्हें कब हंसा या रुला सकती है यह अधिकतर उनके मन की अपनी स्थिति पर अधिक निर्भर होता है।

काव्य शास्त्रों में वर्णित अनेक रस बाल गीतों के लिये अनावश्यक और बच्चों की दृष्टि से अर्थहीन होते हैं। बच्चों को प्रिय लगने वाले प्रमुख रस पाँच ही हैं––(१) हास्य, (२) वीर, (३) शान्त, (४) अद्भुत, (५) वात्सल्य। शृंगार जो रसराज कहलाता है उसके लिये बालगीत साहित्य में कोई विशेष महत्व का स्थान नहीं हो सकता और करुण जिसे एक ही मूल रस बहुत से काव्यमर्मज्ञ मानते हैं उसका भी भारतीय बाल-साहित्य में कोई स्थान नहीं है। विदेशी बाल साहित्य में हमें कारुणिक प्रसंगों पर रचित बाल गीत प्रायः मिल जाते हैं पर भारतीय कला का दृष्टिकोण सदा आशावादी होने के कारण हिन्दी साहित्य में कारुणिक प्रसंगों को ले कर बाल गीत लिखे ही नहीं गये हैं।

३. **विषय**––हिन्दी बाल गीतों का एक वर्गीकरण गीतों के विषयों के आधार पर भी किया जा सकता है। बड़ों के लिये लिखी जाने वाली कविताओं में विषयों की कोई सीमा नहीं। किसी भी विषय पर कुछ भी लिखा जा सकता है। बच्चों के लिये लिखे जाने वाले गीतों के विषय में यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनके विषयों की कुछ निश्चित सीमायें हैं, उनके बाहर जा कर अन्य विषयों पर बाल गीत लिखे ही नहीं जा सकते। किन्तु बच्चों के लिये बाल गीत लिखने पर भाव और भाषा के चुनाव की स्वयं अपनी इतनी अधिक सीमायें हैं कि यह तो कहा ही जा सकता है कि बच्चों के लिये अपरिचित और अनभिज्ञ विषयों पर बाल गीत नहीं लिखे जा सकते। बच्चे अपने सीमित अनुभव ज्ञान के कारण उन्हीं विषयों पर लिखे गये बाल गीतों में रस ले सकते हैं जो उनकी समझ की सीमा में किसी न किसी प्रकार आ सकते हों। विषयों की दृष्टि से बाल गीतों के वर्गीकरण अनेक प्रकार से किये जा सकते हैं। मोटे तौर से निम्नलिखित वर्गीकरण में हिन्दी में अब तक लिखे गये सब बाल गीत आ सकते हैं :

(१) **बच्चों के प्रतिदिन के सम्बन्ध में आने वाली वस्तुओं से सम्बन्धित विषयों पर लिखे गये बालगीत।** इस वर्ग में घर, पैसा, पुस्तक, खाने-पीने की अनेक वस्तुयें, चाचा, ताऊ, भाई, इत्यादि आते हैं जिनसे उनका रागात्मक सम्बन्ध अपने आप स्थापित हो जाता है।

इन विषयों को भी वह वहीं तक समझ सकते हैं जहाँ तक उनके अपने अनुभव-ज्ञान की सीमा है।

(२) **बच्चों के परिचय सम्बन्ध में आने वाले जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों से सम्बन्धित विषयों पर लिखे गये बाल गीत।** इस वर्ग में घरों में पले तोता, कुत्ता, बिल्ली, गाय, बकरी तथा मच्छर, मक्खी, चींटी इत्यादि से लेकर शेर, भेड़िया, लोमड़ी,

गीदड़, अजगर इत्यादि तक वह जीव-जन्तु भी आ जाते हैं, जिन्हें बच्चों ने देखा भले ही न हो पर चित्रों में देखने और उसी तरह के दूसरे जीव जन्तु देखे हुए होने के कारण वे सहज ही उनकी कल्पना कर सकतें हैं। जानवर गतिवान होने के कारण बच्चों के आकर्षण के प्रमुख विषय होते हैं। उनका चलना, फिरना, हिलना, डुलना या रेंगना देख कर उन्हें जितना कौतूहल होता है बड़ों को उतना नहीं होता। जानवरों के विषय में नित नई कल्पनायें करने में उन्हें बहुत आनन्द आता है। वे उनके विषय में अधिक से अधिक जानना चाहते हैं। उनसे अपने मन के प्रेम, करुणा, क्रोध इत्यादि के सम्बन्ध स्थापित करते हैं और उनके वीरता, साहस, बुद्धिमत्ता के गुण अपने में धारण करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी बोलियों की नकल करते हैं। बच्चों की कल्पना को विकसित करने में जानवर जितने सहायक होते हैं उतने निर्जीव कोई भी पदार्थ नहीं होते। हिन्दी में जीव-जन्तु और पशु-पक्षियों से सम्बन्धित विषयों पर लिखे थोड़े से ही बाल गीत हैं और वह थोड़े से ही जानवर हैं जिन पर वह लिखे गये। मछली, तितली, बन्दर, बिल्ली, चूहा, घोड़ा आदि विषयों पर ही अधिकतर बाल गीत लिखे मिलते हैं। इस क्षेत्र में लिखने वालों के लिये बहुत बड़ा खुला मैदान है पर लिखने से पहले विभिन्न जीव-जन्तुओं के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है और इससे भी अधिक उनके यथार्थ या काल्पनिक सम्पर्क में आने से उत्पन्न होने वाली बच्चों के मन की स्थिति के अध्ययन की आवश्यकता है। भारतवर्ष की लोक-प्रिय पुरानी पुस्तक पंचतन्त्र जानवरों के आधार पर लिखी गई कहानियों की ही पुस्तक है। वह इस क्षेत्र में लिखने वालों को पर्याप्त प्रेरणा दे सकती है। पर जीव-जगत के विषय में वैज्ञानिक ज्ञान अब पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है। इसलिये उसके अध्ययन की आवश्यकता है।

(३) पेड़-पौधों और फल-फूलों पर लिखे गये बाल गीत। भारतवर्ष में इतने अधिक प्रकार के पेड़-पौधे फल-फूल होते हैं कि बच्चे उन सबसे परिचित नहीं हो सकते फिर भी सुन्दर खिले हुए फूलों और देखने में अच्छे लगने वाले फलों को देख कर उन्हें प्रसन्नता होती ही है। उस प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिये अच्छे बाल-गीत लिखे जा सकते हैं पर हिन्दी में ऐसे गीतों की संख्या बहुत कम है।

(४) आकाश, तारे, चाँद, सूर्य, हवा, पृथ्वी, जल, नदी, सागर, मैदान, पहाड़, से सम्बन्धित विषयों पर लिखे गये बाल गीत। इन सब वस्तुओं से बच्चों का कोई रागात्मक सम्बन्ध नहीं होता। पर उन्हें देख कर कौतूहल और जिज्ञासा के भाव उनके मन में अवश्य उत्पन्न होते हैं। वह जानना चाहते हैं कि यह सब है क्या? जिन बच्चों ने पहाड़ और सागर नहीं देखे होते वह उनके विषय में तरह-तरह की कल्पनायें अपने मन में करते हैं। हिन्दी में इन विषयों में सबसे अधिक बाल गीत चाँद और तारों पर लिखे हुए मिलते हैं। चाँद पर जितने अधिक और जितने सुन्दर बाल गीत हिन्दी में मिलते हैं उतने योरुप या अमरीका की किसी भी भाषा में देखने को नहीं मिलेंगे। पर चन्द्रमा पर पहुँचने के वैज्ञानिक प्रयासों ने अब उन बहुत सी कल्पनाओं को निराधार सिद्ध कर दिया है जो बच्चे अब तक करते आये थे। उन्हें

स्वयं अब वह कल्पनायें पुरानी और बचकानी लगने लगी हैं इसलिये इस विषय पर लिखने वालों को अब ऐसी कल्पनाओं के आधार पर लिखना चाहिये जैसी बच्चे करने लगे हैं या आगे करने लगेंगे। इस वर्ग के अन्य विषयों पर भी और अधिक लिखने की आवश्यकता है।

(५) खेल-खिलौनों और खेलों से सम्बन्धित बाल गीत––बचपन में बच्चों को खेल-खिलौने बहुधा अपने सगे सम्बन्धियों और खाने-पीने की चीजों से भी अधिक प्रिय लगने वाले होते हैं। वह खेल-खेल में उनसे बातें करते हैं जैसे बड़े दूसरे बड़ों से बातें किया करते हैं। सपनों में खिलौने उन्हें अक्सर दिखाई देते हैं। भारतवर्ष में लकड़ी, मिट्टी, कागज, कपड़ा और प्लास्टिक के तरह-तरह के खिलौने बनते हैं। पहले इंग्लैंड और जापान से तरह-तरह के रबड़ और टीन के बने खिलौने हमारे देश में आया करते थे पर अब अपने देश में ही इतनी तरह के खिलौने इतनी बहुतायत से बनने लगे हैं कि विदेशी खिलौनों की आवश्यकता ही नहीं। फिर भी खिलौनों से बच्चे विभिन्न देशों की भेष-भूषा तथा सूरत-शक्ल का आभास पाते हैं। अक्सर रिवाज और सभ्यता की झलक भी खिलौनों में आ जाती है इसलिये जैसे बड़ों के लिये पुस्तकों का आदान-प्रदान विभिन्न देशों से खुला रहता है वैसे ही खिलौनों का आदान-प्रदान भी अधिक रहे तो अच्छा है। जो खिलौने बच्चों को इतने अधिक प्रिय होते हैं उन पर लिखे गये बाल गीत भी बच्चों को उतने ही प्रिय क्यों नहीं होंगे?

इसी प्रकार बच्चे जो तरह-तरह के खेल रुचि और लगन के साथ खेला करते हैं उनसे सम्बन्धित बाल गीत भी बच्चों को बहुत प्रिय होते हैं। बच्चों के विभिन्न खेलों के विषयों पर हिन्दी में बहुत से बाल गीत लिखे गये हैं।

(६) ऋतुओं और प्राकृतिक दृश्यों से सम्बन्धित बाल गीत––इस वर्ग के गीतों में बच्चों को कोई विशेष आनन्द नहीं आता। यह अधिकतर शान्त रस प्रधान होते हैं। पर बड़े यह समझते हैं कि बच्चों को ऋतुओं और प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य का बोध कराने के लिये इस प्रकार के बाल गीत भी लिख कर देने की आवश्यकता है। बच्चों के पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक तो यह समझते हैं कि किसी विशेष ऋतु के आगमन पर किसी सुन्दर से सुन्दर बाल गीत को हटा कर उस ऋतु से सम्बन्धित एक निकृष्ट बाल गीत को भी प्रकाशित कर देना उनका प्रथम कर्त्तव्य है। बच्चे ऋतुओं और प्राकृतिक दृश्यों को भी स्वयं अपने तन-मन पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से देखते हैं इसलिये बच्चों के लिये इन विदेशी (बाहरी) विषयों पर यदि बाल गीत लिखे भी जायें तो उनमें प्रधानता उनकी अपनी मनोभावनाओं की ही रहना चाहिये तभी वह उनके लिये रोचक बन सकते हैं।

(७) अभिनेय या प्रयाण बालगीत––बच्चे अपने स्वभाव से अत्यन्त चंचल होते हैं। वह शान्त मौन मुद्रा में एक स्थान पर अधिक समय तक बैठे नहीं रह सकते। उन्हें हर समय उछल-कूद, तोड़-फोड़, दौड़, भाग में अधिक आनन्द आता है इसलिये वह बाल गीत उन्हें बहुत प्रिय लगते हैं जिन्हें बच्चे अभिनय के साथ-साथ खेल करते हुए गा सकें। शिक्षा की

दृष्टि से ऐसे गीत बच्चों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं और बच्चे उनके भाव को अधिक रुचि से हृदयंगम कर लेते हैं। अभिनय की प्रवृत्ति भी बच्चों में स्वाभाविक होती है। वह भावनात्मक दृष्टि से बड़ों की अपेक्षा कहीं जल्दी अपने को दूसरे की स्थिति में रख कर वैसा ही अनुभव करने लगते हैं। इसलिये बच्चों की मनोभावनाओं के परिष्कार और उनमें सुरुचि और सद्भावना के विकास के लिये ऐसे गीतों की बड़ी उपयोगिता है। अपनी चुस्त पोशाक और फुर्तीली चाल-ढाल के कारण बच्चे समाज में जिन व्यक्तियों को देखते हैं उनमें से सिपाही या सैनिक उन्हें विशेष रूप में आकर्षित करते हैं। सिपाही शब्द से ही उन्हें एक अपेक्षाकृत अधिक गतिवान व्यक्ति का बोध होता है। जब वह यह जानते हैं कि सिपाही देश का रक्षक होता है तो उनका यह आकर्षण और भी अधिक बढ़ जाता है और जब वह कहीं सिपाहियों को परेड करते हुए देखते हैं तब तो उनकी इच्छा होती है कि वह भी उनकी तरह ही परेड में चलें। दूसरी ओर वह बड़े जिनके ऊपर बच्चों के विकास का भार होता है वह भी चाहते हैं कि देश के बच्चे बलिष्ठ और फुर्तीले तथा अपने देश की रक्षा करने वाले सिपाही या सैनिक बनें। इस दृष्टि से प्रयाण गीतों का बच्चों के लिये बहुत महत्व है। वे बच्चों को न केवल संयत रूप से गतिवान बनाने में सहायक होते हैं बल्कि जीवन में महत्व-पूर्ण कार्य करने की प्रेरणा भी देते हैं। हिन्दी में अभिनेय और प्रयाण गीतों का बहुत अभाव है। जो प्रयाण गीत लिखे भी गये हैं वह भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से बच्चों की अपेक्षा बड़ों के लिये अधिक उपयुक्त मालूम होते हैं।

(८) **सामूहिक गीत या सहगान**——सामूहिक गीत या सहगान उन गीतों को कहते हैं जिन्हें अनेक बच्चे मिल कर एक साथ गाते हैं। जैसे प्रयाण गीत गाकर बच्चे अनेक बच्चों के साथ मिलकर चलने का आनन्द पा लेते हैं वैसे ही सामूहिक गीत या सहगान गा कर उन्हें सब के साथ मिल कर अपने मनोभावों को व्यक्त करने के सुख का अनुभव होता है। मनुष्य के मनोभावों का साझीदार कोई व्यक्ति बने इससे अधिक सुख की बात उसके लिये कोई दूसरी नहीं होती। अनेक बच्चे जब एक साथ मिल कर एक गीत का पाठ करते हैं तो उनके हृदय में एक ऐसा आत्मविश्वास पैदा होता है जो उन्हें भविष्य के सामाजिक जीवन में बहुत बल देता है। एकता और सहकारिता की भावनाओं का विकास भी उनके मन में होता है और सामूहिक गीतों से जो एक विशेष लाभ होता है वह यह कि बच्चे स्वरों का उतार-चढ़ाव और संतुलन आसानी से सीख जाते हैं। हिन्दी में सामूहिक बाल गीतों का भी बहुत अभाव है और इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश में संगीत एक व्यक्तिगत साधना की वस्तु माना जाता है। हमारे समाज में विशेष अवसरों के अतिरिक्त पाश्चात्य समाजों की तरह मिल कर कोरस या बैलड संगीत की परम्परा नहीं है। स्कूलों में भी बच्चों को सामूहिक गान के लिये कम ही प्रेरित किया जाता है। प्रार्थना या विशेष उत्सवों पर गाये जाने वाले बन्दे मातरम् तथा जन-गण मन गाने के अतिरिक्त स्कूल के बच्चों को प्रायः सामूहिक गान के अवसर बहुत कम मिल पाते हैं। वैसे हमारे देश के जन-जीवन में आल्हा, कजली, मल्लाहों के गीत, जन गीत इत्यादि सामूहिक रूप से गाने की परम्परा प्राचीन काल से चली आई है पर हमारे साहित्य और स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में इस परम्परा का सर्वथा अभाव है। सामूहिक गानों के लिये उपयुक्त कोई विशेष छन्द नहीं होते। विषय और भाव के अनुरूप

बहुत से गीत ऐसे हो सकते हैं जिन्हें बच्चे सामूहिक रूप से गा सकते हैं। किन्तु जब तक बच्चों को सामूहिक गान गाने की शिक्षा और प्रेरणा नहीं दी जायेगी तब तक अच्छे सामूहिक बाल गीत लिखने को कवि प्रेरित भी कैसे हो सकते हैं?

(९) **राष्ट्रीय बाल गीत**——राष्ट्रीय-गीत बच्चों में देश-प्रेम, एकता और स्वाभिमान की भावना भरने के लिये अत्यत आवश्यक हैं। यद्यपि यह निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्रीयता की भावना बच्चों की सहानुभूति से निःसृत उनकी स्वाभाविक भावना नहीं होती। अपने समाज की देखा-देखी वह अन्य अनेक भावनाओं की तरह इस भावना को भी अपना भले ही लें पर होती यह उनके बड़ों की दी हुई भावना ही है। हिन्दी के राष्ट्रीय बाल गीतों में अधिकांश वह हैं जो बड़ों के गाने के लिये लिखे गये थे पर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिखे गये होने के कारण बच्चों ने उन्हें अपना लिया है। हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित हो कर गीत लिखे हैं पर बच्चों के मानसिक स्तर पर उतर कर उनकी मनोभावना के अनुरूप विशेष रूप से बच्चों के लिये कम ही बाल गीत लिखे गये हैं। राष्ट्रीय बाल गीत लिखने के लिये यह आवश्यक नहीं कि भारतवर्ष, भारत माता या भारत देश पर ही सब गीत लिखे जायें। भारतवर्ष के किसी भू-भाग का कोई विशेष पहाड़, नदी, तालाब या इमारत इत्यादि को लेकर भी सुन्दर राष्ट्रीय भावना को विकसित करने वाले बाल गीत लिखे जा सकते हैं।

४—**शिक्षा की दृष्टि से वर्गीकरण**——बाल गीतों के वर्गीकरण का चौथा आधार शिक्षा की दृष्टि से माना जा सकता है। बाल गीतों की रचना का प्रमुख उद्देश्य बच्चों का मनोरंजन करना होता है। इस सत्य की अवहेलना नहीं की जा सकती किन्तु शिक्षाशास्त्री उनकी रचना का एक दूसरा उद्देश्य भी मानते हैं और वह है बच्चों की शिक्षा। शिक्षा के अन्तर्गत बच्चों के समस्त मानसिक और बौद्धिक तथा शारीरिक विकास की शिक्षा आ जाती है। उन लोरियों को भी हम इसी दृष्टि से किये गये वर्गीकरण के अन्तर्गत ले सकते हैं क्योंकि वह उनके मन को कोमल कल्पनाओं से भर कर उनकी मनोवृत्तियों को उभारने वाली होती हैं। बच्चे उन्हें सुन कर सोने या जागने के लिये प्रेरित होते हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य ही है कि हमारे घरों में लोरियों का अधिक उपयोग नहीं किया जाता। कोमल शिशुओं की भावनाओं और कल्पनाओं को स्थिर करने के लिये लोरियों का सुन्दर उपयोग किया जा सकता है। हिन्दी के अनेक बाल गीतकारों ने लोरियाँ लिखने का प्रयास किया है पर अच्छी लोरियाँ तभी लिखी जा सकती हैं जब लिखने वाले के पास एक सच्ची माता का हृदय हो।

शिक्षा की दृष्टि से बालगीतों का वर्गीकरण हम निम्नलिखित पाँच रूपों में कर सकते हैं:

१—**कल्पना को विकसित करने वाले बाल गीत**——बालकों के मानसिक विकास की शिक्षा के क्षेत्र में कल्पना के विकास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जो शिक्षा बच्चों को २+२=४ बता कर समाप्त हो जाती है उसे प्राप्त करके बच्चा एक स्वस्थ मन वाला मनुष्य कभी नहीं बन सकता। बाल गीत यदि क्लिष्ट कल्पना और बच्चों की पहुँच से दूर की कल्पना से मुक्त हों तो वह बच्चों की कल्पनाओं के विकास में बहुत सहायता करते हैं। बच्चों की कल्पनाओं के रूप भी वैज्ञानिक उन्नतियों

और सामाजिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तित होते रहते हैं। हिन्दी में कल्पना प्रधान बाल गीत लिखे गये हैं। पर नवीन कल्पनाओं की अभिव्यक्ति उनमें कम ही देखने को मिलती है। प्रायः एक विषय पर कई कवियों द्वारा लिखे गये सब बाल गीतों में एक ही-सी कल्पना अभिव्यक्त मिलती है। बच्चे पुरानी पिटी-पिटाई कल्पनाओं को ही बार-बार दुहराना नहीं चाहते। उनमें ताजगी भरने के लिये सदा नई-नई कल्पनाओं की आवश्यकता होती है। यदि उन्हें पुरानी परम्परागत कल्पनायें ही मिलती रहेंगी तो उनसे उनका कुछ भी मानसिक विकास नहीं हो सकता। कल्पना करने में बच्चे बड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक तेज होते हैं। वह अपने भाव और वस्तु-जगत के अज्ञान की पूर्ति कल्पना से कर लिया करते हैं। दूसरे बड़ों की तरह यथार्थ से टकराते-टकराते उनकी कल्पनायें कुण्ठित नहीं हुई होतीं। इसलिये बच्चों के लिये नई कल्पनाओं से ओत-प्रोत नये-नये बाल गीत नित्य प्रति मिलना चाहिये। बच्चों को जितनी नई कल्पनायें चाहिये उनको देखते हुए हिन्दी में अच्छे बाल गीत बहुत कम हैं।

२--मनोभावनाओं को परिष्कृत करने वाले बाल गीत--गीतों का उद्देश्य ही मनोरंजन के साथ-साथ पाठक को प्रत्यक्ष जगत से उठा भाव जगत में पहुँचा कर उसके मनोभावों को परिष्कृत कर देना है। प्राचीन काव्यशास्त्री अरस्तू ने नाटक की व्याख्या करते हुए वस्तु जगत से भाव जगत में पहुँच कर मनोभावनाओं के परिष्कृत होने का बड़ा विशद वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। वह गीत गीत ही नहीं जो पाठक को भाव जगत तक न ले जा सके। शिक्षा का उद्देश्य भी बच्चों की उलझी हुई कुण्ठित मनोभावनाओं को सुलझा कर उन्हें परिष्कृत मनोभावनाओं वाला स्वस्थ मन का मनुष्य बना देना होता है। इसलिये जिन बाल गीतों में बच्चों की मनोभावनाओं को परिष्कृत कर देने की क्षमता है वह शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में अत्यन्त उपयोगी हो सकते हैं। वस्तु जगत की प्रत्यक्ष कठोरता के कारण जो मानसिक गुत्थियाँ, दबी हुई इच्छायें, कुण्ठित वासनायें बच्चों के मन में घर कर लेती हैं उन्हें दूर करने में अच्छे बाल गीत बहुत सहायक होते हैं। मानसिक गुत्थियों के न रहने और मनोभावनाओं का निरन्तर परिष्कार होते रहने से ही बालक सुदृढ़ इच्छा शक्ति वाला, साहसी, विवेकशील मनुष्य बनता है। भावनाओं का परिष्कार करने की दृष्टि से लिखे गये बाल गीतों में बालकों का मनोरंजन करने की क्षमता होना चाहिये। यह क्षमता उनमें तभी आ सकती है जब वह बच्चों के कोमल मन में बैठ कर एवं बच्चा बन कर लिखे जायें। बड़ी आयु में बालक बन जाना एक साधना के बिना नहीं हो सकता। निरन्तर प्रयास करके यह साधना की जाती है। हिन्दी बाल गीतों के लेखकों में इस साधना का बहुत अभाव है। हिन्दी में बाल गीतों के लेखक तीन प्रकार के पाये जाते हैं। एक तो वह धुरन्धर साहित्यिक और कवि हैं जिनकी कलम का लोहा हिन्दी जगत पहले ही स्वीकार कर चुका है। ऐसे साहित्यिक और कवियों ने बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करने के विचार से या यों

ही शौकिया कभी कुछ बच्चों के लिये भी लिख दिया है। दूसरे, स्कूलों या कालिजों में हिन्दी के वह अध्यापक हैं जो हिन्दी में सुन्दर बालगीतों के अभाव से त्रस्त हैं। कहीं कुछ न मिलने पर वह स्वयं ही बाल गीत लिखने लगे। उनमें प्रतिभा का अभाव है और बाल मनोविज्ञान का भी उन्हें अधकचरा ही ज्ञान है। तीसरे, वह कवि यशःप्रार्थी नवयुवक कलाकार हैं जिनकी बड़ों के लिये लिखी कवितायें समाज में आदर नहीं पातीं अच्छी पत्र-पत्रिकाओं में छापी नहीं जातीं। इसलिये वह सरल भाषा में कुछ कवितायें बच्चों के लिये लिख देते हैं। बच्चों के पत्र-पत्रिकाओं में वह छप जाती हैं और उन्हें आत्मसन्तोष का सुख मिल जाता है। इसलिये बहुत अधिक लिखा जाने और प्रकाशित होने पर भी बच्चों की मनोभावनाओं का परिष्कार करने वाले अच्छे बाल गीतों का अभाव ज्यों का त्यों बना हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ प्रतिभावान् कवि केवल बाल साहित्य ही को अपनी प्रतिभा का क्षेत्र बनायें तथा अध्ययन मनन और साधना के बल पर बच्चों का मनोरंजन करने वाले अच्छे से अच्छे बाल गीत लिख कर दें।

३--सद्भावनाओं को विकसित करने वाले बाल गीत--बच्चों के प्रति सद्भावना हुए बिना बड़े लोग बच्चों के लिये लिखने की प्रेरणा ही नहीं प्राप्त कर सकते। यह सद्भावना जब अपनी सीमा का अतिक्रमण कर जाती है तो वही बड़े बच्चों का मनोरंजन करने वाले बाल गीत लिखने के बजाय उन्हें शिक्षा या उपदेश देने वाले गीत लिखने लगते हैं पर जिन बाल गीतों में मनोरंजन का अंश जितना ही कम होता है उतना ही कम वह बच्चों की सद्भावनाओं को विकसित करने में समर्थ होते हैं। बाल गीतों में इसलिये एक संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता होती है जिससे बच्चों का मनोरंजन भी हो जाये और उनमें सद्भावनाओं का विकास भी हो सके। यह कार्य एक ऐसे तंग रास्ते से गुजरने के समान है जिस पर दोनों ओर गिरने का भय निरन्तर बना रहे। जो कवि गीत लिखते समय इस रास्ते से साफ निकल जाते हैं वही स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ सद्भावनाओं के विकसित करने वाले बाल गीत लिख सकते हैं। सद्भावनाओं का विकास करने की भावना बाल गीतों में इतनी अप्रत्यक्ष और छिपी हुई होना चाहिये कि बालक को यह आभास ही न हो कि उसे उनके द्वारा कुछ सिखाया जा रहा है। मनोरंजन के साथ शिक्षा को सब आधुनिक शिक्षा शास्त्री शिक्षा की सर्वोत्तम प्रणाली मानते हैं और बाल गीतों के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है। हिन्दी में ऐसे बाल गीत बहुतायत से लिखे गये हैं जिनमें बच्चे के लिये कोई न कोई हितोपदेश की बात कही गई है जिससे बच्चों में सद्भावनाओं का उदय हो पर उनमें से अधिकांश में लेखक का व्यक्तित्व प्रच्छन्न नहीं रह सका है। कुछ बाल गीतों को पढ़ने से तो ऐसा लगता है कि लेखक ने यदि थोड़ा भी संयत और संतुलित रहने का प्रयत्न किया होता तो वह बहुत सुन्दर बाल गीत बन सकते थे और कुछ में लेखक का शिक्षक या उपदेशक का रूप इतना उग्र हो कर सामने आ गया है कि ऐसे बाल गीतों को बाल साहित्य से निकाल ही देना पड़ेगा। प्रार्थना के बाल गीत भी इसी वर्ग के बाल गीतों में आते हैं। पर उनमें से अधिकतर बच्चों में आत्महीनता की जड़ जमाने वाले होते

हैं। बच्चों को वह ही प्रार्थना या विनय के गीत पढ़ने को देना चाहिये जो उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाले हों।

(४) **ज्ञान वर्द्धन करने वाले बाल गीत**—ज्ञान वर्द्धन गीतों का उद्देश्य कभी भी नहीं हो सकता। गीत हृदय की रागात्मक वृत्ति का स्फुरण है। उसका ज्ञान विज्ञान की किसी बात से कोई सम्बन्ध नहीं। जो गीत पाठक या श्रोता के मन में उसी भावुकता को जन्म दे सके जो उसे लिखते समय लेखक के मन में विद्यमान थी वह उतना ही सफल गीत है। पर अन्य गीतों से बाल गीतों की स्थिति कुछ भिन्न है। जिस अवस्था के बच्चों के लिये बाल गीत लिखे जाते हैं वह उनके ज्ञानार्जन की प्रारम्भिक अवस्था होती है। दूसरे यह भी सत्य है कि अज्ञानी अबोध होने के कारण जिस किसी वस्तु या भाव की जानकारी उनके सामने आती है वह उनका ज्ञानवर्द्धन करने वाली ही होती है। इसलिये बाल गीतों से भी बच्चों का ज्ञानोपार्जन तो होता ही है। प्रश्न यह है कि बाल गीतों द्वारा ज्ञानोपार्जन की सीमा का क्षेत्र क्या है। ज्ञान तो संसार में निस्सीम और अपार है पर बच्चों के लिये उतने ही ज्ञान की आवश्यकता है जितना उनकी समझ के पिटारे में समा सके। बाल मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री ही यह समझ सकते हैं कि किस बच्चे को किस-किस बात का ज्ञान कराया जा सकता है जिससे उसे अपच होने का कोई भय न हो। बाल गीतों के द्वारा जब यह ज्ञान प्रदान किया जाये तो सद्भावनाओं को विकसित करने वाले गीतों की तरह यह आवश्यक है कि उनमें मनोरंजन का ऐसा पुट हो कि बच्चे को अपनी समझ पर जरा भी जोर न देना पड़े और उसके ज्ञान में वृद्धि हो जाये। उनमें अभिव्यक्ति का ढंग इतना आकर्षक और रोचक होना चाहिए कि बच्चा उनकी ओर आकर्षित हुए बिना रह ही न सके।

५—**प्रेरणादायक बालगीत**—शिक्षा की दृष्टि से बाल गीतों को बच्चों को प्रेरणा देने वाला भी होना चाहिये। शिक्षा का उद्देश्य ही बच्चों को प्रेरित करके अच्छा नागरिक, अच्छा मनुष्य बनाना है। इसलिये बालगीतों का केवल बच्चों में सद्भावनायें भरने वाला होना ही पर्याप्त नहीं। उन्हें बच्चों को सत्कर्म करने के लिये प्रेरित करने वाला भी होना चाहिये। ऊपर जिन प्रयाण गीतों, सामूहिक गीतों, राष्ट्रीय गीतों आदि का वर्णन किया जा चुका है वह सब इसी वर्ग के गीतों में आते हैं। अतएव उनके विषय में यहाँ और अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं हैं पर एक प्रकार के बाल गीत और रह जाते हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। उनमें से वह बालगीत हैं जो लोरियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोरियाँ उन गीतों को कहते हैं जो मातायें अपने भोले अबोध शिशुओं को रात को सोने या सबेरे जगाने के अवसर पर सुनाया करती हैं। यह गीत शिशु स्वयं नहीं गाते पर इन गीतों को गाकर मातायें शिशुओं का मन बहलाना और अपने मन की बात उसी अबोधता से कह देना चाहती हैं जैसे छोटे बच्चे अपने खिलौने से वार्तालाप किया करते हैं। अबोध शिशु इन गीतों के भावार्थ बिलकुल भी नहीं समझते पर उनकी स्वर लहरी और माताओं के गाते समय की भाव-भंगिमा उनके मन पर

कुछ ऐसे प्रभाव अवश्य छोड़ देती हैं जिनसे वे उन्हें अधिकाधिक सुनने के लिये उत्सुक और लालायित रहा करते हैं। लोरियों के प्रति यह मोह ही उन्हें कुछ बड़े होकर बाल गीतों की ओर आकर्षित करता है और शिशु की सीमा को पार कर चुकने के बाद भी लोरियों को पढ़ने-सुनने में उन्हें आनन्द आता है और उनमें कही-सुनी हुई बातों से उन्हें प्रेरणा मिलती है। लोरियों का मुख्य उद्देश्य शिशुओं को सोने और जगाने की प्रेरणा देने के कारण ही लोरियों को प्रेरणादायक गीतों के वर्ग में ही लिया जा सकता है। लोरियों का उचित उपयोग विशेषरूप से कन्याओं की शिक्षा के सम्बन्ध में किया जा सकता है। हिन्दी में अनेक लेखक-लेखिकाओं ने बहुत सुन्दर लोरियाँ लिखी हैं। पर स्त्री शिक्षा के अभाव और सामाजिक जीवन की अनेक जटिलताओं और कुंठाओं के कारण लोरियों का उचित उपयोग नहीं हो पा रहा है तिथा शिशु और छोटे बच्चे प्रायः उस प्रेरणा से वंचित ही रह जाते हैं जो लोरियों या बाल गीत उन्हें दे सकते हैं।

वर्गीकरण की दृष्टि से बाल गीत के उद्देश्य, उपयोगिता और आवश्यकता इत्यादि विषयों पर और अनेक तरीकों से भी विचार किया जा सकता है किन्तु बाल गीतों के सम्बन्ध में मूल तत्व की बात एक ही है वह यह कि बाल गीत बच्चों का केवल मनोरंजन करने के लिये होते हैं और इसलिये यह अपनी अनेकरूपता में भी एक ही हैं।

———

९ : बाल गीतों की शिक्षा

आज कल विज्ञान का युग है। रेडियो, बिजली, वायुयान, राकेट, टेलीवीजन, वायरलेस यह सब विज्ञान के चमत्कार हैं और विज्ञान के प्रयोग से चलने वाले बड़े कलकारखाने, इन्जन, मशीनें, रेलें, बसें और ट्रैक्टर, सिनेमा, तार, टेलीफोन इत्यादि रोज के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं को देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है कि मनुष्य ने अपने जीवन को सुखमय बनाने और अपनी सुविधा के लिये कैसी-कैसी विचित्र उपलब्धियाँ कर रखी है। आज संसार किसी कोने से कोई समाचार कहीं भी एक मिनट से भी कम समय में पहुँचाया जा सकता है। रोज हम देखते हैं कि सबेरे तड़के आनेवाला समाचार पत्र दुनिया भर की सारी खबरें हजारों लाखों की संख्या में वितरित होकर घर-घर पहुँचा जाता है। रेडियो के द्वारा हम दुनिया में कहीं भी किसी के खाँसने और खखारने तक की आवाज को सैकड़ों हजारों मील दूर अपने घर में विस्तर पर लेटे सुन सकते हैं। भारत से हजारों मील दूर किसी देश में खेली जाने वाली क्रिकेट की मैच को टेलीवीजन द्वारा अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख सकते हैं। आज विज्ञान की सफलताओं के कारण यह सम्भव है कि हम सवेरे की चाय दिल्ली में पीने के बाद दोपहर मास्को और शाम लन्दन में बितायें। अमरीका और रूस के लोग बहुत निकट भविष्य में चाँद तक पहुँच जाने की आशा करने लगे हैं। ऐसी अभूतपूर्व वैज्ञानिक उन्नतियों के समय में रहने के कारण जीवन और संसार समाज के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी बहुत-कुछ वैज्ञानिक हो गया है। एक-एक पल समय का मूल्य आज के मनुष्य आँकने लगे हैं क्योंकि उतना ही समय संसार में बड़े से बड़े परिवर्तन कर देने के लिये काफी है। जो मनुष्य आजकल वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रखते वह पग-पग पर ठोकर खाते और पछताते हैं। इसलिये छोटे बच्चों को भी जीवन में यथार्थवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है।

हिन्दी कविता को भी इस यथार्थवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने कम प्रभावित नहीं किया है। इसलिये आधुनिकतम प्रयोगवादी कविता को पुरानी कविता के पक्षपाती नीरस सारहीन और प्राणरहित कह कर पुकारते हैं। आज का कवि स्वयं एक मशीन बन कर रह गया है। वह पहले की तरह स्वतंत्र और मस्त रह कर कल्पना की स्वच्छन्द उड़ानें नहीं भर सकता, न कालिदास के यक्ष या शकुन्तला दुष्यन्त की तरह भावुकता की लहरों पर निर्बाध बहने का उपक्रम ही वह कर सकता है। कविताओं में अधिक रुचि लेने से मनुष्य भावुक और कल्पनाप्रिय बन जाता है। इसलिये अनेक शिक्षाशास्त्रियों का यह निश्चित मत है कि बच्चों को बाल गीत या कल्पनाप्रधान साहित्य की शिक्षा देना ही नहीं चाहिये। प्लेटो ने अपने कल्पित नगर राज्य से कवियों का बहिष्कार कर दिया था। सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी शिक्षा प्रणाली में कविता की शिक्षा को सबसे पीछे रखा है। और मैडम माण्टेसरी ने भी अपनी शिक्षा योजना में बच्चों को कल्पनाप्रधान साहित्य पढ़ने को न देने की बात कही है। उनका कहना है "बालक कल्पना-प्रधान साहित्य को पढ़ने से बड़े होकर भी कल्पना

में उड़ते रहने की टेव वाले बन जाते हैं, जिससे संसार की वास्तविकताओं के सामने आने पर वह उनका सामना डट कर करने के बजाय जीवन के प्रति एक पलायन-भाव धारण कर लेते हैं। और इसके फलस्वरूप एक प्रकार की भीरुता का भाव सदा के लिये उनके मन में घर कर लेता है।"

किन्तु मनुष्य जीवन को समाज में रहते हुए सफलतापूर्वक व्यतीत करने के लिये केवल तार्किक बुद्धि से ही काम नहीं चल सकता। भावना और कल्पना भी उसके लिये उतनी ही आवश्यक हैं जितनी विवेकपूर्ण तार्किक बुद्धि। मनुष्य में यदि कल्पना की प्रचुरता न हो तो वह कुशल वैज्ञानिक भी नहीं बन सकता। वैज्ञानिक अनुसन्धान करने के लिये भी उसे पहले से कल्पना में वह सब योजना बनाना पड़ती है जिसके अनुसार चल कर ही वह अपने प्रयत्न प्रयोग में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार कल्पना के साथ-साथ भावना की भी आवश्यकता उसे होती है। यदि किसी भी कार्य को आदि से अन्त तक बराबर करते रहने के लिये उसकी भावुकता उसे प्रेरणा नहीं देती तो वह काम अधूरा रह जाता है। कल्पना प्रधान साहित्य भी विवेक बुद्धि के सहयोग के बिना लिखा ही नहीं जा सकता। किसी भी कल्पना को साहित्य के रूप में प्रयुक्त करने के लिये प्रत्येक कवि या लेखक को अपनी विवेक बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है। अतएव सत्य तो यह है कि हम किसी भी साहित्य के सर्वथा कल्पनामय होने की कल्पना ही नहीं कर सकते। कल्पना, भावना और विवेक-बुद्धि तीनों के सह अस्तित्व से ही सत्साहित्य का सृजन होता है। और इन तीनों का समुचित संतुलन ही मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करने और उसे एक सफल मनुष्य बनाने के लिये अपेक्षित और आवश्यक है। इसलिये यह किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता कि बालगीत या अन्य कोई कल्पना साहित्य बच्चों को पढ़ने को देना ही नहीं चाहिये।

बचपन में मनुष्य में तर्क या विवेक बुद्धि का प्रायः अभाव रहता है। वह ऐसी वस्तुओं को पाने की चेष्टा करता है जिन्हें पाना बड़ों की दृष्टि में सर्वथा हास्यास्पद हो सकता है। प्राप्त करने के प्रयत्नों में असफलता हाथ लगने पर बालक स्वयं अपने ऊपर ही क्रोध करने लगता है। सुन्दर सुरुचिपूर्ण बालगीत या दूसरा कल्पना या भावना प्रधान साहित्य उनके हृदय की वृत्तियों का परिष्कार करके उनके मन को समय और परिस्थितियों के अनुकूल ऐसी दिशाओं में लगा सकता है जिनसे उनके मन में पराजय का भाव आ ही न सके। कविता से जीवन यापन की कला का भी बहुत गहरा सम्बन्ध है। जिनकी रुचि उसके अध्ययन में हो जाती है वह सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं और बड़ी से बड़ी आपत्तियाँ भी उन्हें विचलित नहीं कर पातीं।

बालगीत बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में बहुत सहायक होते हैं। गीतों में तुक और स्वरों की संतुलित व्यवस्था ही अव्यक्त रूप से बच्चों के मन को संतुलित बनाये रखने के लिए पर्याप्त प्रेरणा देने वाली होती है। बार-बार निश्चित मात्राओं के आने और स्वरों के उतार-चढ़ाव से वह अपने आप अपने मन को व्यवस्थित करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। मानसिक संतुलन की यह बात उनके बड़े होकर उच्च कक्षाओं में पहुँच जाने पर अनुशासन से भी सम्बद्ध होती है। बचपन में समुचित बाल गीतों द्वारा जिन्हें अपने मन को संतुलित रखने की शिक्षा मिल जाती है वह बड़े होकर भी अनुशासन और व्यवस्थाप्रिय

बने रहते हैं। सैनिक स्कूलों में बजने वाले वाद्ययन्त्रों के स्वरों के उतार-चढ़ाव से बच्चों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव के महत्व को सभी जानते हैं।

छोटे बच्चों के मन स्वभावतया बहुत चंचल होते हैं। मन की इस चंचलता के कारण वह किसी वस्तु का एक निश्चित रूप अपने मन में स्थिर नहीं कर पाते। घोड़े में सूँड़ वाले हाथी और पंख लगी उड़ने वाली छिपकलियों की विचित्र कल्पनायें वह प्रायः किया करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य इस चंचलता को वश में करके उन्हें संसार की वस्तुओं को वह जैसी हैं वैसी ही देखने के लिए दृष्टि और साथ-साथ नित नई कल्पनायें करने की शक्ति प्रदान करना है। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही समझने की दृष्टि उन्हें भविष्य के जीवन में यथार्थवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण देती है। साथ ही यदि कल्पना-शक्ति भी उनमें हुई तो एक ओर नये-नये अन्वेषण और आविष्कार करने में वह सफल होते हैं और दूसरी ओर समाज में दूसरों के सुख-दुख के भावों को समझ कर सहृदयतापूर्वक आचरण करने की क्षमता प्राप्त करते हैं। बालगीतों की शिक्षा बच्चों के चंचल मन में स्थिरता लाकर उनकी उलझी हुई कल्पनाओं को सुलझाकर उनका स्वरूप निश्चित कर देती है। बच्चों की भावनाओं और कल्पनाओं के अनुरूप ही बालगीत लिखे जाते हैं इसलिए बच्चे उन्हें पढ़-सुनकर अपनी भावनाओं और कल्पनाओं को स्वयं समझ सकते हैं। जीवन के बहुत से यथार्थ भी ऐसे होते हैं जिनका बोध बच्चों को बालगीतों के माध्यम से बड़ी सरलता से कराया जा सकता है। सवेरा, बरसात, बसन्त इत्यादि के भाव बच्चों के मन पर बालगीतों के द्वारा जितने सुन्दर ढंग से जमाये जा सकते हैं उतने अन्य किसी उपाय से नहीं। बालगीतों में किसी प्राकृतिक दृश्य या वस्तु का वर्णन पढ़ने या सुनने से एक ऐसा चित्र-सा उनकी आँखों के सामने खिंच जाता है कि वह फिर उनकी आँखों से कभी ओझल नहीं होता।

सामाजिक जीवन के आदर्शों और उच्च भावनाओं के प्रति बच्चों को आकर्षित करने के लिए भी बालगीतों की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। उनमें जो बात रोचक और मनोवैज्ञानिक ढंग से कही जाती है वह बच्चों के मन को अवश्य प्रभावित करती है। प्रायः देखा गया है कि किसी भी कविता की कोई एक पंक्ति उन्हें इस प्रकार से याद हो जाती है कि वह उसे जीवन भर भूल नहीं पाते। उस पंक्ति का भाव उन्हें अव्यक्त रूप से सदा प्रेरित करता रहता है। बालगीत यदि मनोरंजक ढंग से लिखे हुए हों तो उनके द्वारा सच्चरित्रता, सत्यवादिता, बचनबद्धता, परदुख कातरता आदि गुण बच्चों में बहुत सरलता से विकसित किये जा सकते हैं। विनय और प्रार्थना के बालगीत उन्हें विनम्र बनाने में सहायक होते हैं। बहुत-सी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व कोई प्रार्थना गीत सामूहिक रूप से गाया जाता है। इससे अपने गुरुजनों का आदर करने का भाव उनमें अपने आप आ जाता है और वह अनुशासन में रहना भी सीख जाते हैं। पर यह भी देखा गया है कि बहुत छोटे बच्चे बड़े बच्चों के साथ मिलकर प्रार्थना के कठिन गीत गाने से कुछ भी नहीं सीख पाते। उदाहरण के लिए स्कूलों में बहुत प्रचलित एक यह प्रार्थना है--

हे प्रभो आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए॥

लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी धर्म रक्षक वीर व्रत धारी बनें॥

छोटे बच्चे इन पंक्तियों को बार-बार तोते की तरह दुहराकर भी इनसे कुछ सीख सकते हैं या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है। जो बच्चे आनन्द, दुर्गुण, शरण, सदाचारी ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक और वीर व्रतधारी का अर्थ भी ठीक से नहीं समझते हों वह इससे क्या उपदेश ग्रहण करेंगे। इस प्रकार की प्रार्थना से एक भय यह भी बना रहता है कि कोई अत्यधिक भावुक बालक कहीं यह न समझ ले कि उसमें दुर्गुण और दुराचार ही भरे हैं जिन्हें दूर करने के लिए उसे किसी की शरण में जाना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। और उसे धर्मरक्षक, ब्रह्मचारी, वीर व्रतधारी बनने के लिए जीवन भर एक कठिन तपस्या करनी होगी। इससे एक प्रकार की हीनता की भावना भी उसके मन में उत्पन्न हो सकती है। और वह अच्छा बनने के प्रयत्नों से विमुख भी हो सकता है। जैसे वही भोजन मनुष्य को खाना चाहिए जिसे पचाकर वह शक्ति ग्रहण कर सके वैसे ही विनय और प्रार्थना के जो पद बच्चों को याद कराये जायें वह ऐसा होना चाहिए जो मनोवैज्ञानिक ढंग से बच्चों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, साहस आदि के भावों को जगाने वाले तथा भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से बच्चों के लिए उपयुक्त हों।

बच्चों को बालगीत पढ़ाने के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। उनमें से भाषा ज्ञान पल्लवित करना भी एक है। बहुत से शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि भाषा ज्ञान की शिक्षा बच्चों को बालगीतों के द्वारा नहीं देना चाहिये। उनके इस मत का आधार यह है कि गीतों में शब्द प्रायः अपने वाच्यार्थ को छोड़ कर व्यंगार्थ या लाक्षणिक अर्थ की प्रधानता लिये हुये होते हैं। अतएव शब्दों के साधारण अर्थों के स्थान पर बच्चों के मन में कुछ ऐसे अर्थ के भाव बैठ जाते हैं जो प्रतिदिन के व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त नहीं होते। पर बच्चे अपने परिवार और समाज के जिस वातावरण में रहते हैं उसमें शब्दों का प्रयोग केवल उनके साधारण बाच्यार्थ में ही नहीं किया जाता। प्रायः अल्प शिक्षित और अनपढ़ लोग भी अभिधा के अतिरिक्त शब्दों की लक्षणा और ध्वनि नामक शक्तियों से भी अपनी साधारण बोलचाल में काम लिया करते हैं। इसलिये बच्चे भी बचपन से ही उनसे परिचित हो जाते हैं और समय और आवश्यकता के अनुसार वह भी उनसे काम लेने लगते हैं। ऐसी दशा में बाल गीतों के द्वारा ही यदि बच्चे अभिधेयार्थों के साथ उनके लाक्षणिक अर्थ भी सीखते जायें तो उनके भाषा ज्ञान की शिक्षा में कोई बाधा नहीं पड़ती। दूसरे बालगीत लिखे ही इतने सरल भाषा में जाते हैं कि उनमें शब्दों के लाक्षणिक और व्यंगात्मक प्रयोगों के लिये गुंजायश ही बहुत कम होती है। गद्य और पद्य के द्वारा भाषा की शिक्षा दिये जाने में अन्तर केवल इतना है कि पद्य स्वर और लय से संयुक्त होने के कारण बच्चों को गद्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक लगते हैं। इसलिये वह पद्य को न केवल अधिक रुचि से पढ़ ही सकते हैं बल्कि पढ़ते-पढ़ते याद भी कर लेते हैं। याद कर लेने से उनका शब्द-भण्डार बहुत तेजी से बढ़ता चला जाता है और उनका भाषा ज्ञान बहुत समृद्ध हो जाता है। किन्तु यदि बालगीतों की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भाषा ज्ञान की अभिवृद्धि मान लिया जाता है तो उसके अन्य प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति ठीक से नहीं हो पाती। भाषा की शिक्षा देने में शब्दों और अर्थों का विश्लेषण करके अर्थ बोध कराना पड़ता है। ऐसा करने से बाल-

गीतों की मूलात्मा के दर्शन बच्चों को नहीं हो पाते और न वह उनका पूरा रस ही ले सकते हैं। इसलिये भाषा ज्ञान को ही बालगीतों की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य नहीं माना जा सकता। बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिये अवश्य यह उद्देश्य प्रमुख होता है क्योंकि उस अवस्था के बच्चों में कोई भावनात्मक या कल्पनात्मक रूप अपने सामने स्थिर करने की क्षमता होती ही नहीं है। शब्द भी उन्हें निर्जीव खिलौने की तरह रोचक खेल की वस्तु मालूम होते हैं। वह इससे अधिक उनका और कुछ महत्व नहीं समझ सकते। इसलिये उस छोटी आयु के लिये लिखे गये बालगीतों में शब्दों का प्रयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता होती है। बच्चों के मनोनुकूल स्वर और व्यंजनों के मिश्रण से बने हुए कुछ चुने हुए शब्द ही यदि आकर्षक ढंग से उनके सामने प्रस्तुत किये जायें तभी वह उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हो सकते हैं।

बालगीतों की शिक्षा का दूसरा प्रमुख उद्देश्य उनकी कल्पना शक्ति को विकसित करना है। विकसित कल्पना शक्ति के बिना कोई मनुष्य जीवन के किसी क्षेत्र में कोई उन्नति नहीं कर सकता। प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसन्धान या आविष्कार करने से पूर्व ही उसके भावी रूपों और परिणामों की पूर्व कल्पना कर लेता है। जो व्यक्ति कल्पना द्वारा नई-नई परिस्थितियों और किसी कार्य के परिणामों की जितनी यथार्थ कल्पना पहले से कर सकता है वह उतना ही अपने सामाजिक जीवन में सफल होता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि शैली ने एक स्थान पर सत्य ही कहा है

A man to be greatly good must imagine intensely

(मनुष्य को बहुत भला होने के लिये खूब कल्पना करना चाहिये)। इसी प्रकार एक दूसरे कवि कालरिज का भी कथन है

In the imagination of man exist the seeds of all moral and scientific improvement.

(मनुष्य की कल्पना में उसके सारे नैतिक और वैज्ञानिक विकास के बीज विद्यमान होते हैं)। बालगीतों में भी बच्चे कल्पना के चित्र पसन्द करते हैं उनकी ओर आकर्षित होते हैं और उन्हें बार-बार देखना चाहते हैं। बच्चों को यह चित्र देखने में आनन्द इसलिये आता है कि वह अपना एक रागात्मक सम्बन्ध उनकी कल्पना से जोड़ लेते हैं। वह थोड़ी देर के लिये अपने को उसी स्थिति में अनुभव करने लगते है जिसमें पहुँच कर ही कोई कवि वह चित्र खींचने में समर्थ हो सका था। वह अपनी वास्तविक स्थिति को भी भूल जाते हैं और उनका एक ऐसा तादात्म्य-सा कल्पना के उस चित्र से हो जाता है कि उन्हें फिर अपनी भूख-प्यास सर्दी-गर्मी के भाव का भी बोध नहीं होता। बच्चों की यह तादात्म्य स्थापित कर लेने की भावना इतनी तीव्र और सशक्त होती है कि वह कभी इस प्रकार के काल्पनिक चित्रों के बीच विचरते हुए बिना मिष्ठान्न के मिष्ठान्न का स्वाद और गर्मी में जाड़े के-से सुख का अनुभव करने लगते हैं। बड़े ऐसा करने में इतनी जल्दी समर्थ नहीं हो सकते क्योंकि उनके परिपक्व मन और मस्तिष्क इतनी आसानी से काल्पनिक चित्रों से तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते। इसलिए बच्चों की कल्पना शक्ति को जागृत और विकसित करने के लिये बाल गीतों की शिक्षा से बहुत लाभ उठाया जा सकता है। पर अत्यधिक कल्पनाप्रधान साहित्य बच्चों को पढ़ाने का एक दुष्परिणाम भी होता है। जो

बच्चे कौतूहलवर्द्धक और असंगत कल्पनाप्रधान साहित्य को पढ़ने में ही दिन-रात लगे रहते है वह प्रायः जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का सामना करने में कमजोरी का अनुभव करते हैं। बहुत से इस प्रकार के बच्चे प्रायः दिवास्वप्न देखने लगते हैं और जो वह नहीं हैं वैसा अपने को समझने की आदत पड़ जाने के कारण उन्हें अनुचित और असंगत व्यवहार करते हुए भी देखा जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ बच्चों में बाल गीतों की अपेक्षा कथा-कहानियों के पढ़ने से अधिक विकसित हो जाती हैं--फिर भी आवश्यकता से अधिक कल्पनाप्रधान बाल गीत ही बच्चों को पढ़ने के लिये देना शिक्षा की दृष्टि से सर्वथा उचित नहीं कहा जा सकता।

कल्पना मनुष्य के मस्तिष्क की उपयोगी शक्तियों में से प्रमुख शक्ति है पर भावना और विवेक भी उससे कम महत्वपूर्ण शक्तियाँ नहीं। विकसित और परिष्कृत भावना के बिना मनुष्य संसार के सारे कार्य सुचारु रूप से करते हुए भी एक यन्त्र या मशीन की तरह ही रहता है। मनुष्य में व्यक्तित्व विकसित करने के लिये भावना की बहुत आवश्यकता होती है। संसार के बड़े से बड़े दार्शनिक, विचारक या विद्वान यदि दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुख में दुखी होने की क्षमता नहीं रखते तो उनके दर्शन, ज्ञान और विचारों की उपयोगिता के विषय में सन्देह होने लगता है। बाल गीत भावप्रवणता के आधार पर ही लिखे जाते हैं। जो कवि आकाश में चन्द्रमा को चमकते हुए देख कर बच्चों के कौतूहल, जिज्ञासा के साथ-साथ प्रसन्न हो कर उसे अपने पास पकड़ बुलाने की भावना का अनुभव नहीं कर सकता वह चन्द्रमा पर बच्चों का मनोरंजन करने वाला बालगीत लिख ही नहीं सकता। अतएव बाल गीतों की शिक्षा का उद्देश्य उनमें उसी भावप्रवणता को उत्पन्न करना भी है जिसके आधार पर बाल गीत लिखे जाते हैं। बाल गीत पढ़ते समय बच्चे कवि की भावनाओं के साथ-साथ बहने लगते हैं और उतनी देर के लिये वह अपने वास्तविक जीवन की सारी दूसरी बातों को भूल जाते हैं। पर वह उन्हीं भावनाओं के साथ बह सकते हैं जो उनकी जानी-पहिचानी या समझ में आ सकने वाली होती हैं। इन भावनाओं के साथ में बहने से बच्चों की भावनायें परिष्कृत होती हैं। वह सुख-दुख, आशा-निराशा के भार को उठाना सीख जाते हैं। उनके मन मजबूत हो जाते हैं और फिर कठिन परिस्थितियों में से निकलना भी उन्हें आसान लगने लगता है। वह अपने वातावरण से समुचित भावात्मक सम्बन्ध स्थिर कर लेने में सफल होते हैं जिससे वह असन्तुलन उनके जीवन में नहीं आ पाता जो कभी-कभी भयंकर मानसिक विक्षोभ उत्पन्न करने का कारण होता है। संसार की विभिन्न वस्तुओं और समाज के विभिन्न मनुष्यों से भावात्मक सम्बन्ध पैदा करके ही बालक अपने में उस व्यक्तित्व का उदय करता है जिसके बिना आत्मविश्वास और स्वाभिमान जैसे गुण उसमें आ ही नहीं सकते। अतएव भावनात्मक सम्बन्ध उत्पन्न करके बच्चों के व्यक्तित्व का विकास करना भी बाल गीतों की शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

ज्ञानार्जन भी बाल गीतों की शिक्षा का उद्देश्य हो सकता है किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति बाल गीतों की अपेक्षा गद्य में लिखित साहित्य से अधिक होती है। अतएव उसे प्रधान उद्देश्य नहीं कहा जा सकता। जिन बच्चों में विवेक बुद्धि का थोड़ा बहुत विकास हो जाता है वह बालगीतों की शिक्षा से अपने समक्ष जीवनादर्श निश्चित करने में अवश्य सफल हो सकते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से शिक्षा में बालगीतों की इतनी उपयोगिता होते हुए भी उसका लाभ बहुत कुछ अध्यापक के पढ़ाने के ढंग पर अवलम्बित होता है। अध्यापक यदि कुशल पढ़ाने वाला है तो वह कविता के लिये बच्चों में एक ऐसी रुचि उत्पन्न कर देता है कि वह जीवन भर उससे अलग नहीं हो सकते। दूसरी ओर ऐसे भी अध्यापक होते हैं जो कविता और अंक गणित पढ़ाने के ढंग में कोई अन्तर ही नहीं समझते और कविता में रुचि उत्पन्न करने के बजाय एक ऐसी अरुचि अपने पढ़ाने के ढंग से उत्पन्न कर देते हैं कि फिर बच्चों को कविता में रस प्राप्त कर सकना कठिन हो जाता है। बाल गीतों के अध्यापक का सबसे प्रमुख गुण यह है कि वह सहृदय हो। सहृदय होने से केवल यह तात्पर्य नहीं कि वह उनके मर्म को समझ सके बल्कि उसमें इतनी क्षमता होना चाहिये कि वह उनके विषय से तादात्म्य स्थापित करके उनमें वर्णित हर्ष से गदगद, दुख से चिन्तित, क्रोध से क्रोधित हो सके। किसी बाल गीत को पढ़ कर यदि कोई अध्यापक भावनाओं में उसके साथ बह नहीं सकता तो वह उन्हें सफलतापूर्वक नहीं पढ़ा सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर कवि और अध्यापक की स्थिति एक-सी ही मालूम होती है। पर वास्तव में अध्यापक का कार्य कवि से भी अधिक कठिन होता है। कवि स्वयं किसी विषय या वस्तु से प्रेरणा ग्रहण करता है और जो अनुभूति उसे होती है उसे शब्दों में व्यक्त करके हमारे सामने रख देता है। अध्यापक स्वयं तो किसी वस्तु से प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकता। उसे कवि के भाव को ग्रहण करके उसकी अनुभूति को अपनी अनुभूति बनाना पड़ता है। और फिर उसे उस अनुभूति को अपने तक ही सीमित नहीं रखना होता। बल्कि उसे उसका अनुभव अपने विद्यार्थियों को कराने का प्रयत्न भी करना होता है। बाल गीतों के अध्यापक की इस कठिनाई के बाद प्राप्त सफलता के महत्व का अनुभव करके ही सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हैडो ने एक स्थान पर कहा है---If he (teacher) can teach poetry, he can teach anyother department of the subject, if he will (अगर वह अध्यापक कविता पढ़ा सकता है तो यदि वह इच्छा करे तो किसी भी विषय को पढ़ा सकता है)।

बाल गीतों के अध्यापक को अपना स्वभाव कवि की तरह बच्चों जैसा ही बना लेने का अभ्यासी होना पड़ता है। जब तक वह बालकों की दृष्टि से ही किसी वस्तु को नहीं देख सकता तब तक न वह उसे ठीक से समझ सकता है न बच्चों को समझाने में समर्थ हो सकता है। अतएव अध्यापक को बाल गीत पढ़ाना प्रारम्भ करने से पूर्व ही अपने सारे ज्ञान-भण्डार और शब्दागार का भार सिर से उतार कर अलग रख देना चाहिये। बिना ऐसा किये वह बालकों में से एक नहीं हो सकता और बच्चे ज्ञान-विज्ञान के दूसरे विषय भले ही अपने से अधिक किसी ज्ञानवान से पढ़ने को तैयार हो जायें, बाल गीत पढ़ने को तैयार नहीं हो सकते। बाल गीतों का अध्यापक जितना ही अबोध और अनजान बन कर पढ़ाने का उपक्रम करेगा उतनी ही अधिक सफलता उसे प्राप्त होगी।

बाल गीतों की शिक्षा की बहुत बड़ी सफलता बालगीतों के चुनाव पर निर्भर होती है। बहुत से अध्यापक ऐसे बाल गीतों को ही पढ़ाना पसन्द करते हैं जिनसे कोई धार्मिक, नैतिक या किसी अन्य प्रकार की शिक्षा बच्चों को मिल सकती है पर जैसा कि हैडो ने एक स्थान

पर कहा है वास्तविकता यह है कि Good poems do not give morals. (अच्छी कवितायें उपदेश नहीं देतीं)। जिस बालगीत में उपदेश देने की प्रवृत्ति स्पष्ट झलक जाती है उसे बच्चे अपने लिये लिखित ही नहीं समझते। और प्रायः बालगीतों द्वारा उपदेश देने की चेष्टा करने का प्रभाव बच्चों के मन पर उल्टा ही पड़ता है। बच्चों को यदि कोई विशेष बात करने को बार-बार कहा जाये तो प्रायः वह उसे ही छोड़ कर और सब कुछ कर डालने की भावना अपने मन में उत्पन्न कर लेते हैं।

कविता की तरह बाल गीत भी व्यक्तिगत आनन्द की वस्तु होते हैं। उन सामूहिक गानों को छोड़ कर जो एक साथ मिल-जुल कर गाने में ही अधिक आनन्द देते हैं शेष सब बाल गीत प्रत्येक बालक का अपने ढंग से अलग-अलग मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार एक कक्षा में बहुत से बालकों को एक साथ एक ही बाल गीत पढ़ाने की बात अजीब असंगत-सी लगती है। एक ही समय में एक अध्यापक कक्षा के प्रत्येक बच्चे के मन में एक ही प्रकार से अलग-अलग रसानुभूति कराने में किस प्रकार सफल हो सकता है। इसी स्थिति का विश्लेषण करते हुए सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जे० ह्यबर्ट जग्गर ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि बाल गीतों के अध्यापक का काम बाल गीत पढ़ाना नहीं बल्कि बच्चों के मन में काव्याभिरुचि को उत्पन्न कर देना है। उसका कहना है His task is merely to refine the taste by developing in harmony and as far as he can, the feeling for all the elements in poetry. (उसका काम कविता के सब गुणों के प्रति सामंजस्यपूर्ण भावना उत्पन्न करके रुचि का परिष्कार कर देना भर है)।

बहुत से अध्यापक इस बात की शिकायत करते हैं कि कुछ बाल गीत भावों की दृष्टि से, कुछ भाषा की दृष्टि से तथा कुछ अन्य कारणों से विद्यार्थी बालकों की पहुँच के बाहर होते हैं। भाषा की दृष्टि से दुरूह होने पर तो किसी भी बाल गीत को बच्चों के गले के नीचे नहीं उतारा जा सकता। इसीलिए विभिन्न आयु वर्गों के लिये भिन्न-भिन्न भाषा शैली और भावों के बालगीत पढ़ाने के लिये निश्चित किये जाते हैं। किन्तु भावों की दृष्टि से किसी बाल गीत को दुरूह समझना अध्यापक की अपनी ही कमजोरी हो सकती है। किसी बाल गीत का आनन्द यदि अध्यापक स्वयं लेने में समर्थ हो सकता है तो वह उसे अपने अध्यापन के ढंग से अपने सब विद्यार्थियों के लिये आनन्ददायक बना सकता है। बालक के मानसिक धरातल को कविता के मानसिक धरातल तक उठा देना ही तो अध्यापक का कार्य है। कुशल अध्यापक तो इस धरातल को किसी भी ऊँचाई तक ले जाने में सफल हो सकता है। क्योंकि वह जब अपने विद्यार्थी बालकों से तादात्म्य कर लेता है तो धीरे-धीरे कुशलतापूर्वक उठ कर वह उन्हें किसी भी ऊँचाई तक पहुँचा सकता है। हैडो ने तो इस सम्बन्ध में अनुभव के आधार पर यहाँ तक लिखा है :

My own experience is that the pupils always seemed capable of rising to any level I wished--when I realy wished it. . . . The teacher should always remember that in his class there are probably minds greater than his own--spirits which will travel farther than his farthest.

(मेरा अपना अनुभव यह है कि यदि मैं वास्तव में चाहूँ तो छात्र जितना मैं चाहूँ, उस स्तर तक उठने की क्षमता रखते हैं।........अध्यापक को यह याद रखना चाहिये कि उसकी कक्षा में उसके अपने मस्तिष्क से भी महान मस्तिष्क और उसके अधिक से अधिक उत्साह से भी अधिक उत्साह वाले हैं)।

बालगीतों की शिक्षा किस प्रकार से देना चाहिये यह पूर्णतया उसके उद्देश्य पर निर्भर होता है। यदि अध्यापक का उद्देश्य भाषा की शिक्षा देना है तो वह बाल गीत में प्रयुक्त शब्दों के चुनाव, उनके अर्थों की ध्वनि, उनके प्रयोग इत्यादि पर विशेष ध्यान देगा। यदि उसका उद्देश्य बच्चों की कल्पना शक्ति को विकसित करना है तो वह भावों की व्याख्या करते हुए बच्चों को वास्तविकता से बहुत दूर ले जा कर एक सुनहरे कल्पना लोक में खड़ा कर देगा। और यदि उसका उद्देश्य उनकी भावनाओं को जागृत करना है तो वह एक के बाद एक हाव-भाव के सहित ऐसी मार्मिक व्याख्या करके उन्हें इस सीमा तक उत्तेजित कर देगा कि वह कुछ कर डालने के लिये आतुर हो जायें। पर बाल गीत पढ़ाते समय एक ही उद्देश्य अध्यापक के सामने नहीं हो सकता। उनकी शिक्षा के द्वारा एक साथ ही भाषा बोध, कल्पना का विकास और भावनाओं का परिष्कार कराया जाता है। इस सम्बन्ध में जगर महोदय का मत है :Poetry does nor address itself to the reason nor to the memory nor to perception, nor to the feelings but to all of them at once. The poet does not ask his audience to think or to remember or to perceive or to feel; he attempts to transfer his entire experience of the mind to his reader or hearer. (कविता न तो केवल विवेक बुद्धि को जागृत करती है न स्मरणशक्ति को न पर्यवेक्षण शक्ति को न भावनाओं को बल्कि इन सब को एक साथ जागृत करती है। कवि अपने श्रोताओं से विचार करने, याद रखने, देखने या अनुभव करने के लिये ही नहीं कहता। वह अपने मन के सारे अनुभव को अपने श्रोता या पाठक को दे देना चाहता है)।

बालगीत पढ़ाते समय सबसे अधिक कठिनाई अध्यापक के सामने पाठ को प्रारम्भ करते समय आ उपस्थित होती है। बहुत से अध्यापक पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व चित्र या दूसरी आकर्षक वस्तुयें दिखा कर बच्चों का मन विषय की ओर आकर्षित करते हैं। पर ऐसा करना उस जादूगर के समान होता है जो विचित्र-विचित्र वस्तुओं को दिखा कर पहले अपने आस-पास भीड़ जमा करता है और बाद में कुछ जड़ी बूटियाँ बेचने का प्रयत्न करने लगता है। एक पुरानी कहानी भी इसी प्रसंग में याद आती है। एक धनी व्यक्ति के तीन लड़के इतने शैतान और चालाक थे कि किसी अध्यापक से कुछ पढ़ते-लिखते ही न थे। वह कुशल से कुशल अध्यापक को दो-चार दिन में अपनी चालाकी, मक्कारी और झूठी बातों से इस स्थिति में कर देते थे कि फिर उसे झुंझला कर उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करते ही बनता था। अन्त में एक अध्यापक ने जो अपनी कुशलता पर बहुत अभिमान करता था उन्हें पढ़ाने का कार्य भार अपने ऊपर लिया। वह उन्हें तरह-तरह की शैतानियाँ करने की खुली छूट देता था और उनके बीच बैठा रहता था। तीनों शैतान लड़के अचरज में थे कि वह उनसे कुछ भी पढ़ने-लिखने का नाम नहीं लेता। और वह इस बात से प्रसन्न भी बहुत थे। एक दिन अध्यापक खेल-खेल में उन तीनों को एक आम के बाग में ले गया और उनसे

एक आम के पेड़ पर चढ़ जाने को कहा। तीनों उत्साह में भरे पेड़ पर चढ़ गये और अलग-अलग शाखों पर बैठ कर पके-पके आम तोड़ कर खाने लगे। नीचे से अध्यापक ने बारी-बारी से तीनों से पूछा तुमने कितने-कितने आम खाये और कितने अभी तुम्हारी डालों पर शेष हैं। सब के अलग-अलग बता देने पर अध्यापक ने फिर प्रश्न किया कि अच्छा बताओ तुम तीनों ने मिला कर कुल कितने आम खाये और कितने तुम्हारी डालों पर शेष हैं। तभी उनमें से एक लड़का चिल्ला कर दूसरे दोनों से कहने लगा—"इसका उत्तर मत देना। मास्टर साहब गणित पढ़ा रहे हैं।'

तात्पर्य यह कि उन तीन शैतान लड़कों को अध्यापक के पढ़ाये गणित विषय की तरह बच्चों को बालगीत भी कोई बहुत लम्बी चौड़ी भूमिका बाँध कर चालाकी से नहीं पढ़ाये जा सकते। बाल गीतों के अध्यापक के लिये पुस्तक के अतिरिक्त और किसी वस्तु का सहारा नहीं लेना चाहिये। जगर ने इस सम्बन्ध में कहा है—For the poetry lessons nothing is required save a book of poems, or for children who are unable to read, the voice of the teacher. (कविता के पाठ के लिये एक कविता की पुस्तक के अतिरिक्त और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। या उन बच्चों के लिये जो पढ़ भी नहीं सकते केवल अध्यापक के कण्ठ की आवश्यकता होती है।) बाल गीतों के शब्द तो स्वयं बोलते हैं। उनके उच्चारण मात्र से अध्यापक यदि चाहे तो वह प्रभाव उत्पन्न कर सकता है जो बड़े-बड़े भाषणों से नहीं हो सकता। प्रश्नोत्तर शैली से भी बाल गीत के पाठ को प्रारम्भ करना उचित नहीं क्योंकि इससे बच्चों के सीमित ज्ञान और अल्प समझ वाले मस्तिष्क पर कभी-कभी इतना अधिक भार पड़ जाता है कि वह फिर बाल गीत को पढ़ या सुन कर उसमें रस लेने में असमर्थ रह जाते हैं।

शिक्षाशास्त्रियों का यह भी कहना है कि अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ पर बाल गीत अध्ययन की आधी सफलता निर्भर होती है। अध्यापक भाव प्रदर्शन के साथ सस्वर बाल गीत का पाठ करे तो आधा रस तो वह अपने बाल विद्यार्थियों के मन में उसी समय उँडेल सकता है। विद्यार्थी स्वयं अपनी पुस्तकों में देखने के बजाय अध्यापक के मुँह की ओर देखते रहें तो बालगीत के भाव तुरन्त हृदयंगम कर सकते हैं। हैडो ने इसी बात को इस प्रकार कहा है— Poetry is an art of the ear not of the eyes, in other words poetry is sound not sight. (कविता कानों की कला है आँखों की नहीं, दूसरे शब्दों में कविता स्वर है दृष्टि नहीं)। बाल गीत अपनी पूरी परिधि में एक होता है। उसे छन्दों में विभक्त करने से उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। अध्यापक यदि कवि के भाव को पूर्ण रूप से हृदयंगम करके उसका सस्वर पाठ करेगा तो बालक उसके साथ-साथ भावों में बहे बिना नहीं रह सकते। इस सम्बन्ध में हैडो का कथन है कि "तुम (अध्यापक) जब बाल गीत पढ़ो तो उसमें इतने रम जाओ कि वही तुम्हारा जीवन बन जाये। स्वरों का संधान और आचरण सहायता देते हैं किन्तु जब तक तुम उसमें रम नहीं जाते वह व्यर्थ हैं। कविता में व्यक्त मनोभाव तुम्हारे हृदय में एक सिहरन उत्पन्न कर दें और तुम्हारी आवाज में झंकृत होने लगें।" बड़े-बड़े कर्कश और कर्ण कटु स्वर रखने वाले व्यक्ति जब किसी कोमल भावनाओं से पूर्ण कविता को तन्मय होकर पढ़ते हैं तो उसके पढ़ने में अपने आप एक अभूतपूर्व

मिठास आ जाती है। हैडो ने इस विषय में कहा है—You may have a poor voice, you may read badly, but if you are pouring your hearts-blood into the poem it will carry across. It can not fail. But there must be whole hearted devotion to the poem. You must not hesitate or hold back. (आपका स्वर दुर्बल हो, आप ठीक तरह से न पढ़ सकें, पर यदि आप कविता में अपने प्राण रख सकते हैं तो आप उसे पढ़ा ले जा सकते हैं। उसमें आपको असफलता कभी नहीं मिलेगी। किन्तु कविता के प्रति आपकी पूर्ण अनुरक्ति होना चाहिये। झिझक या संकोच बिलकुल नहीं होना चाहिये)।

बाल गीतों को पढ़ाने की कोई निश्चित प्रणाली नहीं बताई जा सकती। यह सदा पढ़ाने वाले के व्यक्तित्व पर निर्भर रहती है। संसार में जितने अध्यापक हैं उतनी ही बाल गीतों को पढ़ाने की प्रणालियाँ हो सकती हैं। हैडो का कथन है:—There is no definite method that ought to be employed.....It (poetry teaching) is like love making--and each must do in his own way. (कोई निश्चित प्रणाली नहीं है जिसे प्रयोग में लाया जाये—कविता पढ़ाना किसी को प्रेम करने की तरह है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से ही करना चाहिये)। फिर भी मोटे तौर से कुछ प्रणालियों की ओर संकेत किया जा सकता है। उनमें से प्रमुख निम्न लिखित हैं:

१—**गीत तथा अभिनय प्रणाली**—इसके अनुसार अध्यापक एक ही गीत को अपनी मुखाकृतियों, चेष्टाओं और अभिनय के द्वारा भाव प्रदर्शन करते हुए बार-बार पढ़ता है और इन सब के द्वारा वह शब्दों के संगीत, ध्वनि और अर्थ से बालकों को परिचित कराता चलता है। बालक स्वयं उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा उनके कारण पड़े प्रभावों को अपने मन में बैठाते जाते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक बाल गीत की यह दो पंक्तियाँ बच्चों को पढ़ाता है:—

आ, मेरे संग बैठ, बिलैया
ले, मुँह बा, खा दूध मलैया

तो अध्यापक को इस प्रकार भाव प्रदर्शन करना होगा।

१—आ—दाहिने हाथ से तथा गर्दन से बुलाने का भाव दिखा कर

२—मेरे संग—दाहिने हाथ को छाती से लगा कर

३—बैठ बिलैया—बायें हाथ की हथेली से पास में बिठाने का अभिनय करके।

४—ले—दाहिने हाथ का अँगूठा हथेली के बीच में रख कर कुछ देते हुए का भाव दिखा कर।

५—मुँह बा—दोनों हाथों से इस प्रकार का अभिनय करना मानो बिल्ली कुछ खाने के लिये अपना मुँह खोल रही है।

६—खा दूध मलैया—दाहिने हाथ को इस प्रकार आगे बढ़ा कर मानों बिल्ली के मुँह में कुछ खाने को रख रहे हों।

अध्यापक इसके बाद अपनी ही तरह बालकों में बारी-बारी से अभिनय कराते हुए—सस्वर पाठ करायें। ऐसा करने में बच्चों को खेल जैसा आनन्द आने लगेगा और उनकी रुचि बाल गीतों को पढ़ने में जागृत होगी।

बहुत छोटे बच्चों को गति गीत प्रायः बहुत पसन्द होते हैं। उनका स्वभाव होता है कि किसी गतिवान वस्तु को देख कर वह तुरन्त उसकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। गति गीतों को यदि अभिनय के ढंग से पढ़ा जाये तो बच्चों की भुजायें फड़कने और पैर चलने के लिये ललकने लगते हैं। इससे बाल गीत के रस के साथ-साथ उन्हें अंग संचालन की शिक्षा भी मिलती हैं और उनका मानसिक संतुलन भी स्थिर होता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित बाल गीत को पढ़ाते समय इस प्रकार का अभिनय करना होगा—

वीर सिपाही हम हम हम।
तुम राजा हो तुम सरदार।
तुम वजीर तुम राज कुमार॥
वीर सिपाही हम हम हम।
वीर सिपाही हम हम हम॥
कन्धों पर रख कर हथियार।
चलते हम डरता संसार॥
चलते है हम धम धम धम।
वीर सिपाही हम हम हम॥
बढ़ते पाँव हमारे साथ।
हिलते साथ हमारे हाथ॥
एक नियम है एक कदम।
वीर सिपाही हम हम हम॥

१. **वीर सिपाही हम हम हम**—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर सीने की ओर उठा कर क्रमशः तीन बार हिलाते हुए अकड़ कर सिपाही के चलने जैसी मुद्रा में निश्चित अन्तर से कदम डालते हुए भाव प्रदर्शन करें।

२. **तुम राजा हो तुम सरदार**—सीधे हाथ को क्रमशः दो दिशाओं में संकेत करते हुये मानों किसी को सम्बोधित करके कोई बात कही जा रही है।

३. **तुम वजीर तुम राजकुमार**—ठीक वैसी ही जैसे पंक्ति नं० २

४. **वीर सिपाही हम हम हम**—ठीक वैसे ही जैसे कि पंक्ति नं० १

५. **कंधों पर रख कर हथियार**—मुट्ठी बंधा हुआ दाहिना हाथ सीने की ओर थोड़ा-सा इस प्रकार उठा कर मानों कन्धे पर रक्खी हुई लाठी या बन्दूक को कस कर पकड़े हुए हैं।

६. **चलते हम डरता संसार**—पंक्ति नं० ५ की मुद्रा में ही एक दो कदम चलते हुए और संसार शब्द का उच्चारण करते हुये दाहिने हाथ को पूरा फैला कर बायें से सीधी ओर तक पूरा घुमा कर।

७. **चलते हैं हम धम धम धम**—ठीक पंक्ति नं० १ की तरह कदम को भूमि पर जोर से पटक कर इस प्रकार रखते हुए कि उससे तीन बार आवाज हो।

८. **वीर सिपाही हम हम हम**—ठीक पंक्ति नं० १ की तरह

इसी प्रकार अन्य पंक्तियों को पढ़ाने की अभिनयात्मक प्रणाली की व्याख्या की जा सकती है।

२. **अर्थ बोध प्रणाली**––यह पुरानी प्रणाली श्लोक को पढ़ा कर उसका शब्दार्थ और भावार्थ बालकों को बता देने भर की है। इससे बच्चों को शब्दों के अर्थ तो मालूम हो जाते हैं पर किसी प्रकार रस की निष्पत्ति उनके मन में नहीं होती। बड़े-बड़े व्याकरण पण्डित इसी प्रणाली को अपनाते रहे हैं।

३. **व्याख्या प्रणाली**––व्याख्या प्रणाली और अर्थ बोध प्रणाली में थोड़ा ही अन्तर है। इस प्रणाली के अनुसार अर्थ बोध के साथ-साथ भावार्थ की व्याख्या कुछ विस्तार से कर दी जाती है। इससे अध्यापक कथा प्रसंग और उसी तरह की दूसरी बातें भी बालकों के समक्ष प्रस्तुत करता चलता है। व्याकरण पिंगल छन्द रस और अलंकार सम्बन्धी व्याख्यायें भी इसी प्रणाली के अन्तर्गत आती हैं पर यह प्रणाली बाल गीत के मूलाधार रस के चारों ओर चक्कर लगाने की प्रणाली के समान है। इसलिये व्याख्या द्वारा सब तत्व जान लेने के बाद भी जब तक अभिनयात्मक ढंग से सस्वर बालगीत पाठ नहीं होता तब तक उन्हें रसानुभूति नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में जग्गर ने कहा है––

Poetry is unique. It must be studied for its own sake because of its own appeal, not for Geograhy or Words or Painting. If a teacher corelates it with a piece of Geography or History or any thing else, when he has succeeded, he has been teaching Geography or History or something else, but not poetry which is imaginative experience. (कविता विचित्र विषय है। उसका अध्ययन उसके अध्ययन के लिये ही या उसके स्वाद के लिये करना चाहिये। भूगोल, शब्द ज्ञान या चित्र कला के लिये नहीं। यदि कोई अध्यापक उसका सम्बन्ध भूगोल, इतिहास या किसी दूसरे विषय से स्थापित करे और उसे सफलता भी मिल जाये तो वह भूगोल, इतिहास या अन्य कोई विषय ही पढ़ायेगा कविता नहीं, जो केवल कल्पना का अनुभव है)।

पर यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक शिक्षक को अपने बाल विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये स्वयं अपनी समझ से अपनी अलग प्रणाली बाल गीतों की शिक्षा के लिये निश्चित करनी पड़ती है। वह कई प्रणालियों का सम्मिश्रण भी हो सकती है। और उन सबसे भिन्न अपनी अलग प्रणाली भी हो सकती है। प्रारम्भ में बहुत छोटे बच्चों को उनकी समझ में आ सकने वाले मधुर बालगीत केवल हाव-भाव के साथ सस्वर सुनाये जाया करें। बार-बार ऐसा करने से वह उन्हें आसानी से याद हो जाते हैं। टेप रिकार्ड और ग्रामोफोन से भी इस कार्य में सहायता ली जा सकती है। यद्यपि हिन्दी बाल गीतों के रिकार्ड अभी तक शायद रेडियो के अतिरिक्त और कहीं भी प्रयोग में नहीं लाये जाते हैं।

---

१० : काव्य रचना शिक्षा

स्कूलों की शिक्षा में कला की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता है चित्रकला, संगीत इत्यादि ललित कलाओं के साथ-साथ बालकों को कागज, कपड़े और चमड़े की चीजें बनाने की शिक्षा भी दी जाती है। उनके जीवन को कलात्मक बनाने और उनके रहन-सहन को सुन्दरता प्रदान करने के लिये यह शिक्षा नितान्त आवश्यक भी है। केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त कर लेने से कोई व्यक्ति शिक्षित नहीं कहा जा सकता। कला मनुष्य की भावनाओं को अभिव्यक्ति दे कर मानसिक संतुलन बनाये रखने में बहुत सहायता करती है। जो बच्चे अपने शिक्षा काल में किसी भी कला के द्वारा अपनी उच्छृंखल भावनाओं को संयत करने में असमर्थ रह जाते हैं वह प्रायः जिद्दी, चिड़चिड़े और क्रोधी स्वभाव के बन जाते हैं। भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा उन्हें अपनी विचार शक्ति को विकसित करने में भी सहायता मिलती है और वह अपने समस्त जीवन में मर्यादित बन जाते हैं।

बच्चों को अनेक प्रकार की कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते हुए मैंने स्कूलों में देखा है। पर कविता लिखने की कला का अभ्यास कभी किसी स्कूल में होते हुए नहीं देखा। बहुत से बच्चे यह चाहते हैं कि कोई उन्हें ठीक से तुक जोड़ कर कविता लिखना सिखा दे। प्रायः प्रत्येक स्कूल में कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो कविता में विशेष रुचि रखते हैं और कवि बन जाना चाहते हैं। लेकिन कविता कोई उपयोगी कला नहीं। दूसरे कविता लिखने वाले अधिकतर सनकी या वहमी समझे जाते हैं। इसलिये बच्चों के अभिभावक उनकी इस इच्छा को पूरा करने के प्रति उदासीन ही नहीं रहते बल्कि उन्हें कविता लिखने का अभ्यास करते देख कर यह कहते हैं कि बेकार समय क्यों नष्ट करते हो। यदि इतना ही समय किसी और काम में लगाओ तो अधिक लाभ हो। चित्रकला या संगीत का अभ्यास करते समय यह कोई नहीं कहता कि व्यर्थ समय नष्ट हो रहा है। अध्यापक भी स्वयं काव्य रचना के नियम नहीं जानते, तो वह किसी को कुछ सिखा ही कैसे सकते हैं। भाषा और साहित्य की ऊँची से ऊँची कक्षा तक विद्यार्थी दो तुकों को ठीक से जोड़ देने में असमर्थ रहते हैं। और ठीक-ठीक तुकें जोड़ना बच्चों को सिखा देना उनके लिये और भी कठिन होता है। पर मेरा विचार है कि यदि काव्य रचना की शिक्षा भी बच्चों को दी जाये तो वह जीवन में उतनी ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है जितनी चित्र या संगीत कला की शिक्षा। चित्र और संगीत कलायें तो कविता में आप से आप निहित रहती हैं। और बच्चों को यदि इस बात का बोध बचपन से ही करा दिया जाये तो वह काव्य कला में अभ्यास से और भी अधिक लाभ उठा सकते हैं।

काव्य कला की शिक्षा के लिये हिन्दी में अनेक पिंगल ग्रन्थ हैं जिनमें छन्द, रस, मात्राओं, और वर्णों का अत्यन्त विस्तृत एवं विशद वर्णन हमें मिलता है। अनेक विद्वानों

का विचार है कि इस विषय पर जितना अधिक और जितनी बारीकी से हिन्दी संस्कृत भाषाओं में विचार किया गया है उतना संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं। लेकिन छोटी कक्षाओं के विद्यार्थी उन बारीकियों को समझ कर काव्य रचना कर सकते हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। वर्ण और मात्रा का भेद समझना ही उनकी शक्ति के बाहर होता है। फिर छन्दों के भेद और बारीकियों को पहचानना तो उनके लिये और भी कठिन काम हैं। इसीलिये पाठ्य पुस्तकों में निश्चित पाठ्य-क्रम के अनुसार पिंगल का अध्ययन कर लेने के बाद भी वह दो पंक्तियाँ सीधी नहीं जोड़ सकते। पिंगल शास्त्र को अच्छी तरह पढ़ा सकने वाले भी प्रायः कठिनाई से मिलते हैं क्योंकि जब तक कोई उसे पढ़ने-पढ़ाने के साथ-साथ स्वयं काव्य रचना न करता हो वह पिंगल को अच्छी तरह से पढ़ा नहीं सकता।

इसीलिये मैं जब टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में पढ़ता था मैंने बच्चों के लिये काव्य रचना की शिक्षा देने के प्रश्न पर विचार किया। छोटे बच्चों को किस प्रकार तुकें जोड़ना सिखाया जा सकता है इसके लिये मैंने एक सरल उपाय खोज निकाला। ७–८ से १०–११ वर्ष तक के बच्चों की एक कक्षा में मैंने काले तख्ते पर दो-दो मात्राओं के दो शब्द लिख दिये। जैसे––

मत डर

फिर इसी प्रकार के दो-दो मात्राओं के दो शब्दों के उच्चरित स्वर को ध्यान में रखते हुए उन शब्दों की तुकें जोड़ने के लिये बच्चों से कहा। वह खेल-खेल में बिना अर्थ का ध्यान किये वैसे ही शब्द जोड़ते चले गये और मैं उनमें से प्रत्येक से बारी-बारी से पूछ कर हरएक के कहे को काले तख्ते पर लिखता चला गया––

भर कर
छत पर
अन्दर
ऊपर
बाहर
घर घर
सर सर
फर फर। इत्यादि

जब बहुत अधिक शब्द बारी-बारी से सब बच्चों ने बता दिये तो उस दिन का खेल खत्म हो गया। दूसरे दिन तुकें बदल कर फिर उसी प्रकार से अभ्यास कराया––

डर मत
भर मत
मर मत
शरबत
आफत
इज्जत

और तीसरे चौथे दिन फिर खेल का क्रम जारी रहा और निम्नलिखित अभ्यास कराये:

नटखट	**या**	**तारे**
खट पट		**सारे**
सर पट		**खारे**
चट पट		**प्यारे**
पट पट		**धारे**
आहट		**मारे। इत्यादि।**

बच्चों को इस खेल में बहुत आनन्द आया और उन्होंने बड़े उत्साह से इसमें भाग लिया। एक बच्चे से जब तक एक शब्द बताने को कहा जाता था दूसरा पहिले से सोच कर बताने के लिये तैयार रहता था। प्रतिस्पर्द्धा की भावना जागृत हो जाने पर बच्चे कोई भी खेल अधिक होशियारी और समझदारी से खेल सकते हैं। और उनमें यह विश्वास भी पैदा होता है कि वह एक दिन बड़े होकर सूर, टैगोर या तुलसी दास जैसे कवि बन सकेंगे।

इतना प्रारम्भिक अभ्यास करा देने के बाद फिर एक दिन चार मात्राओं में दो मात्राओं का एक शब्द और जोड़ कर काले तख्ते पर लिख दिया :

अब मत डर

और पहिले की ही तरह कुल मिला कर छः मात्राओं के साथ तुकें जोड़ने का अभ्यास कराया।

चढ़ छत पर
सुन्दर घर
चल फिर कर
नगर नगर
डगर डगर
इधर उधर
सर सर सर
फर फर फर। इत्यादि

फिर इसी प्रकार अन्य तुकों वाले दूसरे शब्दों को ले कर जैसे "मत डर अब" "मोहन आ" "पानी पी" इत्यादि छः छः मात्राओं की पंक्तियाँ जोड़ने का अभ्यास कराया:

मत डर अब	**या**	**मोहन आ**	**या**	**पानी पी**
सबके सब		**रोटी ला**		**चल जल्दी**
घर जा जब		**खाना खा**		**ला हल्दी**
पढ़ लिख तब		**जल्दी आ**		**बन ती ती**
हम साहब		**फूल खिला**		**जा दिल्ली**
तुम बेढब		**पात हिला**		**कली खिली। इत्यादि**

जब यह अभ्यास भी पूरा हो गया तो दो मात्राओं का एक शब्द और जोड़ कर आठ मात्राओं की पंक्तियाँ लिखने का अभ्यास कराया––

अब तू मत डर

बच्चों ने पहिले की तरह ही इसी प्रकार की तुकें जोड़ते हुये और भी पंक्तियां बना दीं :

अब तू जा घर
घर के अन्दर
छत के ऊपर
छत पर बन्दर
बैठो जा कर
खाना खाकर
चूँ चूँ चर मर
सर सर सर सर
फर फर फर फर। इत्यादि ॥

आठ आठ मात्राओं की पंक्तियों का अभ्यास भी पहिले की ही तरह तुकें बदल-बदल कर कराया :

अब तू घर जा	या	अब घर जा तू	या	आओ आओ
पुस्तक ले आ		खाना ला तू		खाना खाओ
शीतल छाया		आती बदबू		जल्दी आओ
खाना खाया		सुन ले कू कू		पढ़ो पढाओ
जल्दी जल ला		मुन्ना मुन्नू		मुझे दिखाओ
खोलो परदा		हा हा हू हू		मत घबराओ। इत्यादि

यह अभ्यास भी पर्याप्त हो जाने के बाद बच्चों को इस खेल का पूरा-पूरा आनन्द आना प्रारम्भ होता है। वह यह समझते हैं कि उन्हें अपने मन का भाव व्यक्त करने के लिये एक माध्यम मिल रहा है और वह इस खेल में और उत्साह से रुचि लेने लगते हैं। इसके बाद आठ-आठ मात्राओं की दो-दो पंक्तियों को जोड़ना सिखा कर १६–१६ मात्राओं की पंक्तियाँ बनाने का अभ्यास कराया गया :

घर जाकर तू पुस्तक ले आ

पूर्वाभ्यास के आधार पर बालक १६–१६ मात्राओं की पंक्तियाँ बनाने में भी सफल हो गये और पहले की तरह उन्हें भी एक-एक से पूछ कर काले तख्ते पर लिखते चले गये।

घने पेड़ की शीतल छाया
मुन्ना सेव सन्तरा खाता
काट काट कर तोड़ गिराता
जा चौके में से थाली ला
उसे मेज पर रख खाना खा। इत्यादि।

१६–१६ मात्राओं की पंक्तियाँ लिखाने का यह अभ्यास पहिले अभ्यासों की अपेक्षा कुछ कठिन अवश्य होता है। पर यदि पहिले के अभ्यास खूब अच्छी तरह बच्चों को करा दिये जाते हैं तो उन्हें उतनी अधिक कठिनाई नहीं होती। कभी-कभी जब आवश्यकता हो तो एकाध शब्द को घटाते-बढ़ाते हुए उन्हें इस अभ्यास में सहायता भी दी जा सकती है। जब यह १६ मात्राओं वाला अभ्यास भी बच्चे सफलतापूर्वक करने लगे तभी उन्हें बताया १६

मात्राओं का यह छंद जिसका उन्होंने अभ्यास किया है और कुछ नहीं चौपाई का एक चरण है। यह वही चौपाई है जिसमें तुलसी दास ने इतनी मोटी रामायण लिख कर रख दी है। यह ज्ञात होने पर बच्चे स्वभावतया राम चरित मानस की चौपाइयों को रुचि से स्वयं पढ़ेंगे। उनमें यह समझ भी अपने आप आ जायेगी कि वह इसी प्रकार की दो-दो चार-चार या छः-छः पंक्तियों की तुकबन्दियाँ किसी एक विषय पर भी लिख सकते हैं। इन तुकबन्दियों में प्रत्येक दो पंक्तियों की तुकें ठीक होने के नियम का तो निर्वाह किया ही जायेगा पर सब पंक्तियों में एक ही प्रकार की तुकें रक्खी जायें यह आवश्यक न होगा। उदाहरण के लिये कक्षा के बालकों को एक विषय दिया "बिल्ली"। किसी बच्चे ने एक पंक्ति बनाई—बिल्ली आई, बिल्ली आई।

फिर सब बच्चों से इसी विषय पर कम से कम तीन-तीन और पंक्तियाँ लिखने को कहा तो कोई बच्चा कहेगा—

भागो भाई, भागो भाई
यह चूहों को पकड़ गिराती

चौथी पंक्ति बनाने में यदि बच्चा सोच में पड़ जाये तो उससे प्रश्न किया "बिल्ली चूहों को पकड़ कर उनका क्या करती है।" उत्तर मिलेगा "खा जाती है।" तभी चौथी पंक्ति भी वह स्वयं बना लेगा—

बैठ मजे से उनको खाती।

इस प्रकार बिल्ली विषय पर यह चार पंक्तियों की कविता बन गई—

बिल्ली आई ! बिल्ली आई
भागो भाई ! भागो भाई
यह चूहों को पकड़ गिराती
बैठ मजे से उनको खाती।

सम्भव है कोई दूसरा बालक इस प्रकार की पंक्तियाँ बना दे—

बिल्ली आई बिल्ली आई
खा जायेगी दूध मलाई
अम्मा अम्मा जल्दी आओ
इसे यहाँ से मार भगाओ।

कोई तीसरा बालक जो यह जानता है कि बिल्ली को शेर बबर की मौसी कहते हैं इस विषय पर इस प्रकार की पंक्तियाँ भी बना सकता है—

बिल्ली आई बिल्ली आई
बबर शेर की मौसी ताई
मुझे नहीं लगता इससे डर
मारूँगा मैं इसके पत्थर।

इस प्रकार एक ही विषय पर अलग-अलग ढंग से लिखी इन तुकबन्दियों के सहारे वे अपनी मनोभावनाओं को भी व्यक्त करने लगेंगे। और अभ्यास यदि चलता रहा तो लम्बी-लम्बी रचनायें भी लिख सकते हैं।

अभ्यास द्वारा यहाँ तक सीख चुकने के बाद बालकों को छन्द ज्ञान भी कराया जा सकता है। वर्ण और मात्राओं, गण और उन्हें गिनने इत्यादि के विषय में भी वह बहुत सी प्रारम्भिक बातें सीख सकते हैं। पर काव्य रचना पिंगल शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लेने भर से नहीं आती। बहुत से वैयाकरण विद्वान और आचार्य ऐसे मिलेंगे जो छन्द शास्त्र का पूरा ज्ञान रखते हुए भी स्वयं दो पंक्तियाँ शुद्ध नहीं लिख सकते। काव्य रचना ध्वनि और लय के उतार चढ़ाव से कानों के अभ्यस्त होने की विद्या है। विभिन्न शब्दों को बार-बार एक क्रम से सुनने और बोलने के अभ्यास द्वारा कान उस उतार-चढ़ाव से अपने आप अभ्यस्त हो जाते हैं। बिना इस अभ्यास के काव्य रचना सरलता पूर्वक की ही नहीं जा सकती। जिनके कान ध्वनि और लय के अभ्यस्त हो जाते हैं वह छन्द और पिंगल शास्त्र के विधिवत अध्ययन के बिना भी काव्य रचना कर सकते हैं। कबीर, सूर, मीरा, नानक, आदि कवियों ने रीति कालीन दरबारी कवियों की भाँति पिंगल का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था फिर भी वह रसपूर्ण कवितायें लिख सके।

पर जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली आधुनिक काल में हमारे देश में चल रही है उसमें उपयुक्त विधि से कक्षा के बालकों को काव्य रचना की प्रारम्भिक शिक्षा का अभ्यास कराना सम्भव नहीं है। निश्चित पाठ्यक्रम ऐसा करने की सुविधा नहीं दे सकता। और खेल के समय का उपयोग ऐसे काम के लिये करना बालकों के साथ अन्याय होगा इसीलिये मैं जब ट्रेनिंग कालिज के दिनों में कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिये जाता था तो उन्हें अधिक अभ्यास नहीं करा पाता था। भय लगा रहता था कि कोई देखे तो कहेगा—"व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हैं।" जब परीक्षा का समय निकट आया तो मेरे प्राध्यापक ने मुझसे कहा कि तुम अपनी परीक्षा के पाठ में कक्षा के विद्यार्थियों से किसी विषय पर एक निबन्ध लिखाना। मैंने सोचा किसी विषय पर एक कविता ही क्यों न लिखा दी जाये। कक्षा के सब विद्यार्थी इस पाठ में समान रुचि नहीं ले सकते थे और न सबका उत्साह ही एक बराबर हो सकता था फिर भी मैंने उस प्रयोग को करने का निश्चय किया। उसे भी प्रसंगवश यहाँ बता देना अयुक्ति संगत न होगा।

कक्षा नौ के विद्यार्थियों को पढ़ाने में मुझे अपनी परीक्षा देना थी। कक्षा में पहुँच कर प्रस्तावना के रूप में मैंने कहा—"आज हम तुम्हें अपनी लिखी दो एक कवितायें सुनायेंगे। यह कवितायें हमने छोटे-छोटे बच्चों के लिये लिखी हैं। हम यह चाहते हैं कि तुम थोड़ी देर के लिये यह भूल जाओ कि तुम नवीं कक्षा में पढ़ रहे हो और यह अनुभव करने लगो कि तुम भी छोटे-छोटे बच्चे हो।" सब विद्यार्थियों ने इससे प्रसन्नता का अनुभव किया। और वह कवितायें सुनने को तैयार हो गये। मैंने पहिली कविता सुनाई:

क्या सुन्दर वर्षा ऋतु आई
लगती है सबको सुखदाई
बागों में हरियाली छाई
शीतल हवा चली पुरवाई

मेढक टर्र टर्र चिल्लाते
झींगुर झनन झनन झनगाते
काले काले बादल आये
सागर से जल भर कर लाये
रिम झिम रिम झिम पानी बरसा
आज खुलेगा नहीं मदरसा
हम दिन भर घर में खेलेंगे
मौज करेंगे मस्ती लेंगे।

बालक इसे सुन कर बहुत प्रसन्न हुये। तभी मैंने प्रश्न किया—"बरसात के बाद कौन-सा मौसम आता है? "उत्तर मिला "जाड़ा"। तभी मैंने जाड़े पर दूसरी कविता सुना दी:

अब जाड़े का मौसम आया
सब लोगों के मन को भाया
बड़े सबेरे किरनें आतीं
आ आँगन भर में छा जातीं।
चहचूँ चहचूँ चिड़ियें गातीं
इधर उधर उड़ती सुख पातीं।
इसी समय उठ जाते हैं हम
मल कर रोज नहाते हैं हम
दूध मलाई खाते हैं हम
मोटे होते जाते हैं हम।

बच्चे इसे भी सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। तभी मैंने उन्हें बताया शरद ऋतु का वर्णन हिन्दी के एक महान कवि तुलसीदास ने भी किया है। उनकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

वर्षा विगत शरद ऋतु आई
लछमन देखहु परम सुहाई
फूले कांस सकल महि छाई
जनु वर्षा कृत प्रकट बुढ़ाई
सरिता सर निर्मल जल सोहा
सन्त हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।

तुलसी दास की इस भावपूर्ण रचना में बालकों को उतना रस नहीं आया शायद इसके कुछ भाव ही उनके लिये अनजाने अपरिचित थे फिर भी अपने सुपरिचित कवि की रचना को सुन कर उन्हें प्रसन्नता तो हुई ही। मैंने बच्चों से प्रश्न किया—"तुलसी दास जी अपनी किस रचना के कारण इतने अधिक प्रसिद्ध हैं?" उत्तर मिला—"रामायण"। तभी दूसरा प्रश्न उनका उत्साह बढ़ाने के लिये किया—"तुम में से कौन-कौन तुलसी दास के समान महाकवि

बनना चाहते हो ?" जो बालक अधिक मुखर और चंचल प्रकृति के थे उन्होंने उत्साहपूर्वक अपने-अपने हाथ उठा दिये। पर जो संकोची और गंभीर स्वभाव के थे उन्हें भी इस बात को सुनकर कौतूहल और प्रसन्नता हुई।

तभी मैंने उद्देश्य कथन प्रारम्भ किया—"आज हम तुम्हें एक ऐसी युक्ति बतायेंगे जिससे तुम में से हर एक तुलसी दास की तरह कविता लिखना सीख सकते हैं। इसके लिये बहुत दिनों तक अभ्यास करने की आवश्यकता है। आज हम तुमसे एक कविता लिखायेंगे। अच्छा पहिले यह बताओ तुलसी दास ने रामायण की रचना किस छन्द में की है ?" उत्तर मिला—"चौपाई"। चौपाई शब्द का क्या अर्थ है ? ' उत्तर—"चार पैर वाली।" चौपाई छन्द में भी चार पैर होते हैं। जिनमें से प्रत्येक को एक चरण कहते हैं। हर एक का अन्तिम अक्षर दीर्घ होता है। जैसे आई, छाई, बुढ़ाई सुहाई इत्यादि में हैं। फिर प्रश्न किया तुलसी कृत रामायण की भाषा क्या है। उत्तर मिला—"अवधी।" पर तुम अगर इसी चौपाई छन्द में एक कविता लिखो तो किस भाषा में लिखोगे। उत्तर—"हिन्दी खड़ी बोली में।" आज हम इसी भाषा में "वसन्त" पर एक कविता लिखेंगे। वसन्त ऋतु हर साल आती है। उसके आने से हमें प्रसन्नता होती है अतएव जो कविता हम लिखने जा रहे हैं उसकी पहिली पंक्ति हो सकती है—"फिर वसन्त ऋतु आई आई।" और कविता का शीर्षक और यह पहली पंक्ति काले तख्ते के मध्य भाग में साफ-साफ लिख दी। और प्रश्न किया—"वसन्त ऋतु सब को कैसी लगती है" ?" "सुख देने वाली।" उसे सुखदाई भी कह सकते हैं। अतएव इसी भाव को लेकर एक पंक्ति बनाओ। कोई बालक बड़ी सरलता से इसे बना सकता है—"लगती है सब को सुखदाई।"

कविता के विषय का ज्ञान कराने के लिये वसन्त के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किये और लिखी जाने वाली कविता के लिये उपयुक्त जो बातें उनके उत्तरों के रूप में मिलीं उन्हें काले तख्ते के बायें हाथ वाले कोने में लिखते गये। किये गये प्रश्न मौखिक ही थे। संक्षेप में प्रश्नों और उनके उत्तरों से प्राप्त बातों का रूप कुछ इस प्रकार का हो सकता है :—

वसन्त-मधुरितु-मधुमास-रितुराज	। १—आज कल कौन सी रितु है।
यह सबसे अच्छी ऋतु मानी जाती है	। २—वसन्त रितु के और क्या क्या नाम है ?
खेतों में हरियाली छा जाती है	। ३—वसन्त को रितु राज क्यों कहते हैं ?
मैदान हरे हरे दिखाई देते हैं	। ४—यह सब रितुओं से सर्वश्रेष्ठ क्यों मानी जाती है ?
चना जौ सरसों मटर इस रितु में पकती फूलती है।	। ५—वसन्त में खेतों में कैसा लगता है ?
सरसों की क्यारी का रंग पीला पीला लगता है।	। ६—कौन-कौन अनाज इस रितु में पक कर तैयार होते हैं ?
शीतल हवा चलती है। वह मन को भाती है।	। ७—सरसों की क्यारी का रंग दूर से कैसा लगता है।
खेत लहराने लगते हैं।	। ८—इसे वसन्ती क्यों कहते हैं ?
किसान प्रसन्न हो जाते हैं।	। ९—वसन्त में कैसी हवा चलती है ?

१०—उसके चलने से खेतों पर क्या असर होता है ?

११—किसानों पर क्या असर होता है ?

इसके पश्चात् वसन्त ऋतु में खेतों में जो हरियाली छा जाती है उसका वर्णन करने को कहा। तो किसी बालक ने एक पंक्ति बनाई :

खेतों में हरियाली छाई।

अब एक पंक्ति शीतल हवा चली। इस पर बनाओ।

शीतल हवा चली सुखदाई।

पर सुखदाई शब्द इससे पहिली पंक्ति में आ चुका है। जल्दी-जल्दी उसी का प्रयोग अच्छा नहीं लगता। इसलिये सुखदाई के स्थान पर कोई दूसरा शब्द रक्खो। किसी ने कहा "पुरवाई" तभी उन्हें बताया वह मन को भाती भी तो है। मन को भाने वाली को क्या कहते हैं। उत्तर मिला—मन भाई। तो यही शब्द क्यों न रख दिया जाये। इस प्रकार पंक्ति हुई—शीतल हवा चली मनभाई। अब एक पंक्ति में सरसों की क्यारी वसन्त में फूल रही है, उसका वर्णन करो। किसी ने कहा—'फूल रही सरसों की क्यारी' "वह रंग रूप में दूर से देखने से कैसी लगती है ?" पीली पीली। "क्यारी की तुक बताओ ?"

किसी ने कहा—"प्यारी।" इसी पर एक पंक्ति और बना दो।

पीली पीली प्यारी प्यारी।

बालकों ने एक एक करके जो पंक्तियाँ बना कर दीं उन्हें क्रमशः लिखते जाने से कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ बन कर तैयार हो गईं :

फिर वसन्त ऋतु आई-आई
लगती है सबको सुखदाई
खेतों में हरियाली छाई
शीतल हवा चली मन भाई।
फूल रही सरसों की क्यारी
पीली पीली प्यारी प्यारी।

बच्चे जब चौथाई, आधी, पूरी, एक पंक्ति जोड़-जोड़ कर बनाई हुई इतनी पंक्तियाँ बनी हुई पाते हैं तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है। रचना के क्रम को और आगे चलाने के लिये बालकों से फिर पहले की तरह और प्रश्न किये और उनसे प्राप्त उत्तरों की सामिग्री को बायें कोने में लिख दिया।

डालियाँ हरी भरी हो जाती हैं और हवा में झूमने लगती हैं।	१—वसन्त में वृक्षों की डालियों की क्या दशा होती है ?
गुलाब, जूही, चम्पा चमेली और मटर के तरह-तरह के नीले, पीले, लाल, बैजनी, गुलाबी, हरे और उन्नाबी फूल खिलते हैं।	२—जब हवा चलती है तो उन पर क्या असर होता है ?
	३—इन दिनों में कौन कौन फूल खिलते हैं ?
	४—उनके क्या क्या रंग होते हैं ?
गुलाब सबसे अच्छा फूल होता है।	५—तुम्हें कौन सा फूल सबसे अच्छा लगता है ?

उनमें मीठी सुगन्धि आती है — ६—फूलों से कैसी सुगन्ध आती है ?
जिससे मन में मस्ती भर जाती है — ७—मन पर इसका क्या असर होता है ?

विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रश्न एक साथ करते रहने से बालकों का ध्यान मुख्य विषय काव्य रचना से हट जाने का भय होता है। अतएव बालकों से कहा—वृक्षों की डाली झूम रही है इस भाव को एक पंक्ति में व्यक्त करो। किसी ने कहा—

"झूम रही वृक्षों की डाली"

डाली की तुकें क्या-क्या हो सकती है। उत्तर मिला—"माली, खाली, ताली, जाली।" तभी पूछा "माली पर डाली के झूमने का क्या असर पड़ता है। उत्तर मिला—"वह मन में खुश होता है। इसी भाव को ले कर एक और पंक्ति बनाओ किसी ने कहा :

मन में खुश होता है माली।

अब एक ऐसी पंक्ति बनाओ जिसमें केवल फूलों के रंगों के नाम आयें। एक-एक रंग का नाम बता कर वह कहेंगे :—

नीले पीले लाल गुलाबी।

गुलाबी की तुक कौन से रंग से ठीक बैठ सकती है। किसी ने कहा—'उन्नावी' तभी और रंगों के नाम ले कर वैसे ही एक पंक्ति और बनाने को कहा—

हरे वसन्ती और उन्नावी।

यहाँ और के "र" अक्षर को छोड़ देने से उच्चारण में कठिनाई नहीं होगी और पंक्ति ठीक हो जायेगी यह समझ कर और के स्थान पर "औ" रख कर इस पंक्ति को इस प्रकार कर दिया—

हरे वसन्ती औ उन्नावी।

अब तरह-तरह के रंग विरंगे फूल खिले हैं इस भाव को व्यक्त करो। किसी ने कहा:

रंग विरंगे फूल खिले हैं

खिले की तुकें क्या होती है ? किसी ने बताया 'मिले'। इसी तुक के सहारे एक और पंक्ति जोड़ने को कहा और उन्हें यह बता दिया कि डाल पर खिले फूल आपस में हिले मिले भी हो सकते हैं। तभी किसी ने कहा :—

सब आपस में हिले मिले हैं

फूलों में कैसी मीठी सुगन्ध आती है। इस भाव को एक पंक्ति में व्यक्त करो।
तभी किसी ने कहा—"अति मीठी सुगन्ध आती है।"
मन पर उसका क्या असर पड़ता है। मन मस्त हो जाता है। या दूसरे शब्दों में मन में मस्ती भर जाती है। इसे सुनते ही कोई अपने आप कह देगा।

मन में मस्ती भर जाती है।

स्मरण रहे कि एक-एक करके यह सब पंक्तियाँ भी तख्ते पर लिखते गये। उसके बाद फिर प्रश्नोत्तर शैली से कुछ और तथ्य पहिले की तरह निकाल कर लिख दिये:

कोयल — १—वसन्त की मुख्य चिड़िया कौन सी है ?
काली काली — २—वह किस रंग की होती है?
आम की डाली पर — ३—वह किस वृक्ष की डाली पर बैठती है?
कू कू कू कू — ४—वह किस प्रकार बोलती है?
भौंरे — ५—उसके स्वर को क्या कहते हैं ?
पंचम स्वर — ६—फूलों पर कौन सा जीव मंडलाता फिरता है?
गुन गुन गुन गुन — ७—वह किस प्रकार का शब्द करता है?

अब काली कोयल कूक रही है। इसे एक पंक्ति में व्यक्त करो। किसी ने कहा—

कूक रही है कोयल काली

वह किस वृक्ष की डाली पर बैठकर कूकती है—'आम की'। इसी भाव पर एक और पंक्ति बन गई—

बैठी हुई आम की डाली।

वह किस स्वर में गाती है। उत्तर मिला "पंचम स्वर में"। इसी भाव को एक पंक्ति में व्यक्त करो :

वह पंचम स्वर में गाती है

वह सब के मन को कैसी लगती है। अच्छी लगती है या मन को भाती है। इसी भाव को व्यक्त करो :

वह सबके मन को भाती है

फूलों पर कौन मंडराता है। भौंरे। इसी भाव पर किसी ने कहा:

फूलों पर मंडराते भौंरे।

वह किस प्रकार का शब्द करते हुए गाते हैं। गुन गुन गुन गुन। इसे भी एक पंक्ति में ० करो। तभी किसी ने हा—

गुन गुन गुन गुन गाते भौंरे।

इसी प्रकार कुछ और पंक्तियाँ भी बनाई जा सकती हैं। पर प्रत्येक कक्षा में अध्यापक को समय का ध्यान रखना पड़ता है और विशेष रूप से अपनी परीक्षा के समय तो ऐसा करना और भी आवश्यक होता है। इसलिये आगे के रचना क्रम को वहीं रोक कर मैंने विद्यार्थी बालकों से कहा अब लो देखो तुमने वसन्त पर इतनी लम्बी कविता लिख दी। एक बालक से कह कर काले तख्ते पर देखते हुए आदि से अन्त तक उसका सस्वर पाठ करने को कहा—पूरी रचना इस प्रकार थी :

फिर वसन्त ऋतु आई आई।
लगती है सबको सुखदाई॥
खेतों में हरियाली छाई।
शीतल हवा चली मन भाई॥

फूल रही सरसों की क्यारी।
पीली पीली प्यारी प्यारी॥
झूम रही वृक्षों की डाली।
मन में खुश होता है माली॥
नीले पीले लाल गुलाबी।
हरे वसन्ती औ उन्नाबी॥
रंग विरंगे फूल खिले हैं।
सब आपस में हिले मिले हैं॥
अति मीठी सुगन्धि आती है।
मन में मस्ती भर जाती है॥
कूक रही है कोयल काली।
बैठी हुई आम की डाली॥
वह पन्चम स्वर में गाती है।
सबके ही मन को भाती है॥
फूलों पर मंडराते भौंरे।
गुन गुन गुन गुन गाते भौंरे॥

पूरी कविता को सुन कर बच्चे बहुत प्रसन्न हुए और मेरे कहने से तुरन्त अपनी कापी खोल कर इसे उतार लिया। निबन्ध लिख गया।

बिना पिंगल और छन्द के शास्त्रीय ज्ञान की शिक्षा के बच्चों को काव्य रचना की शिक्षा देने के प्रयोग में मात्राओं को साध कर तुकें जोड़ने के इस खेल में कुछ नियम भी निश्चित किये जा सकते हैं। जिससे अभ्यास और भी सरलतापूर्वक कराया जा सके। काव्य रचना की यह शिक्षा एक और दृष्टि से भी बच्चों के लिये बहुत उपयोगी हो सकती है। बच्चों की रुचि तो बाल गीतों में होती ही है। उनके लिये बाल गीत साहित्य के भण्डार की जितनी आवश्यकता है उतनी बड़ों के लिये नहीं। बड़ों में कुछ गिने हुए व्यक्ति ही कविता में रुचि लेने वाले होते हैं। बच्चे प्रायः सभी तुकबन्दियाँ और बाल गीत रुचि से पढ़ते और सुनते हैं। वह उन्हें कण्ठस्थ भी कर लेते हैं। पर बड़ों द्वारा लिखी जाने के कारण बच्चों को स्वयं उनकी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने वाला सरल बाल गीत साहित्य आवश्यकतानुसार पढ़ने को मिल ही नहीं पाता। इसलिये बच्चे यदि काव्य रचना के अभ्यास से स्वयं अपने लिए उपयुक्त तुकबन्दियाँ जोड़-जोड़ कर छोटी-छोटी कवितायें लिखने में समर्थ हो सकें तो उन्हें बाल गीत साहित्य का अभाव कभी अनुभव ही न हो। अतएव यदि हम अपने बच्चों को उनके अपने सुख-दुख, सफलता-असफलता, आशा-निराशा और कल्पनाओं को व्यक्त करने वाला बालगीत सहित्य देना चाहते हैं तो हमें चित्र कला, संगीत आदि की शिक्षा की तरह काव्य रचना की शिक्षा भी बचपन में ही देना चाहिये। हम बड़ों का बच्चों के लिये बाल साहित्य लिख कर देना तो वास्तव में हमारी अनधिकार चेष्टा है।

---

११ : सूरदास, उनके पद और बालगीत

हिंदी साहित्य के पूर्व इतिहास में सूरदास के अतिरिक्त और कोई कवि हमें ऐसा नहीं मिलता जिसने विशेष रूप से बाल भावनाओं का चित्रण काव्य में किया हो। तुलसी दास जी ने भी कुछ स्थानों पर बाल स्वभाव की अच्छी पकड़ दिखाई है पर वह कविता के इस क्षेत्र में सूर के समकक्ष नहीं पहुँच सकते। विद्वानों का अनुमान है कि सूरदास का जन्म सम्वत् १५४० अथवा १४८४ ई० में हुआ था। और उनकी मृत्यु तिथि सम्वत् १६२० के आस-पास ठहरती है। वह पुष्टि मार्ग के संस्थापक बल्लभाचार्य के शिष्य थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—"श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो।" बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठल नाथ जो उनके बाद गद्दी पर बैठे थे उन्होंने 'अष्टछाप' की स्थापना की थी और उसमें सूरदास को भी रखा था। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक पुस्तक के अनुसार सूरदास पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पूर्व आगरा और मथुरा के बीच गऊ घाट नामक ग्राम में रहा करते थे। एक बार वल्लभाचार्य मथुरा जाते हुए गऊ घाट उतरे। एक गायक के रूप में सूरदास की प्रसिद्धि सुन कर वल्लभाचार्य ने उन्हें निमन्त्रित किया। सूरदास ने उन्हें विनय के कुछ पद मधुर स्वर में गा कर सुनाये। बल्लभाचार्य सखाभाव से भक्ति का प्रचार किया करते थे अतएव उन पदों को सुन कर उन्होंने सूरदास से कहा—"सूर ह्वै के ऐसे घिघियात काहे को है।" सूरदास ने उनके इस कथन से प्रभावित हो कर पुष्टि मार्ग में दीक्षा ली थी। इसके बाद तो उनका दृष्टिकोण ही बदल गया। वह जा कर गोवर्द्धन पर्वत पर रहने लगे। बाद में उनकी लगन को देख कर वल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीनाथ के मन्दिर में कीर्त्तन करने का काम सौंप दिया। इस मन्दिर में रह कर ही सूरदास ने अपने अधिकांश पदों की रचना की।

सूरदास की जीवनी के विषय में कुछ प्रकाश भक्त माल नामक पुस्तक से भी मिलता है। पर यह अभी तक निश्चित रूप से किसी प्रकार ज्ञात नहीं हो पाया है कि उनके माता-पिता का क्या नाम था और वह किस जाति के थे। एक जनश्रुति के अनुसार वह सारस्वत ब्राह्मण थे और उनके माता-पिता अत्यन्त निर्धन थे इसलिये वह भीख माँग कर अपना पेट भरते थे। पर 'साहित्य लहरी' के एक पद के प्रमाण के आधार पर वह चन्द वरदाई के वंशज ब्रह्म भट्ट थे। वे सात भाई थे और अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। उनके ६ भाई मुसलमानों से युद्ध में मारे गये। एक बार सूरदास अन्धे होने के कारण कुयें में गिर पड़े थे। किसी ने उनकी आवाज सुन कर उन्हें नहीं निकाला। तब श्रीकृष्ण भगवान ने आ कर स्वयं अपने हाथों से निकाला। तभी से वह ब्रज में आ कर कृष्ण का गुण-गान करने लगे।

सूरदास के जीवन वृत्त के विषय में और भी अनेक जन श्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति यह है कि सूरदास अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गवइये बाबा राम दास के पुत्र थे और अपने पिता के साथ दरबार में गाने जाया करते थे। एक दूसरी जनश्रुति

के अनुसार अकबर ने सूरदास को मिलने के लिये इलाहाबाद बुलवाया था। इसी प्रकार उनके अन्धे होने के विषय में भी एक कहानी यह कही जाती है कि वह युवावस्था में एक वेश्या को प्रेम करते थे उसके सामने अपने प्रेम की परीक्षा देने के लिये उन्होंने स्वयं तपे हुए सूर्य से अपनी दोनों आँखें फोड़ ली थीं। सूरदास जन्म से अन्धे थे या बाद में अन्धे हो गये इस विषय में कोई निश्चित प्रमाण हमें नहीं मिलता। उन्होंने प्रकृति का और मानवीय चेष्टाओं और रूपों का जैसा विषद वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि बिना अपनी आँखों से देखे केवल कल्पना के सहारे कोई वैसा विषद वर्णन नहीं कर सकता। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में भी हमें इस प्रकार का कथन मिलता है—"सूरदास जी श्री आचार्य जी महाप्रभु को दर्शन करके आगे आय बैठे।" इस कथन से भी यह स्पष्ट है कि बिना आँखों के वह दर्शन नहीं कर सकते थे। अतएव उनके जन्म से अन्धे होने की बात निराधार मालूम होती है। युवावस्था या जीवन के अन्य किसी काल में उनके नेत्रों की ज्योति चली गई होगी।

किसी कवि का जीवन वृत्त कुछ भी रहा हो उसका वास्तविक परिचय हमें उसकी रचनाओं से प्राप्त होता है। सूरदास ने पदों में कृष्ण चरित्र का वर्णन किया है। उनके लिखे पदों के समूह को सूर सागर कहा जाता है और उसमें सवा लाख पद बताये जाते हैं। इन पदों में श्री मद्‌भागवत की कथा का अनुसरण किया गया है। इसमें भी भागवत की तरह ही बारह स्कन्ध हैं। पर सूरदास का उद्देश्य प्रमुख रूप से कृष्ण चरित का वर्णन करना ही था। इसलिये उन्होंने दशम स्कन्ध की कथा को ही बहुत विस्तार के साथ लिखा है। शेष स्कन्ध कुल पदों की एक चौथाई से भी कम संख्या में समाप्त हो गये हैं। प्रत्येक पद यद्यपि स्वयं अपने में पूर्ण एक गीत है किन्तु गीतों में ही कथा प्रसंगों का वर्णन करते जाने से एक प्रबन्ध काव्य का रूप भी उन्हें प्राप्त हो गया है। सूर सागर के इन पदों में कृष्ण चरित की सारी घटनायें वर्णित हैं पर जिन प्रसंगों में कवि की रुचि सबसे अधिक रमी है वह कृष्ण की भक्ति, बालकृष्ण का वर्णन तथा कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों का विरह प्रसंग ही हैं। एक कुशल कला शिल्पी संगीतज्ञ और भावुक कवि होने के साथ-साथ वह सबसे पहिले एक कृष्ण भक्त थे। संसार के माया मोह स्त्री परिवार के बन्धन और अर्थ की चिन्ताओं से मुक्त रह कर वह भगवत भजन-कीर्तन में अपना समय व्यतीत किया करते थे। पर वह कृष्ण की उपासना सखा भाव से करते थे इसलिये उनके कृष्ण चरित वर्णन में वह मानवीयता का पुट सर्वत्र विद्यमान है जो साधारण पाठकों को भी उनके काव्य की ओर आकर्षित करता है।

सूरदास ने अपने भक्तिपूर्ण पदों में जो तन्मयता दिखाई है उसमें कोई भगवान का भक्त ही सुध-बुध खो कर आनन्द लेने में सफल हो सकता है। जो भक्त नहीं हैं उन्हें उन पदों में उतना ही आनन्द मिलेगा और वह वैसे तन्मय हो कर बहेंगे यह कह सकना कठिन है। उनके गोपिकाओं के विरह सम्बधी पदों को भ्रमर गीत नाम से अभिहित किया गया है। इन गीतों में विरहविधुरा गोपिकाओं के मन की पीड़ा उद्विग्नता, और उदासी का बहुत ही हृदयग्राही वर्णन किया गया है। साथ ही उनमें ज्ञान और भक्ति के संघर्ष में भक्ति की प्रतिष्ठा कराने का भी प्रयत्न किया गया है। अतएव सूरदास के वह गीत भी विशेष रूप से उन लोगों का ही अधिक मनोरन्जन कर सकते हैं जो कृष्ण के प्रति एक भक्त के रूप में आसक्त हैं। पर उन्होंने बाल कृष्ण के चरित विषयक जो पद लिखे

हैं उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो प्रत्येक उस व्यक्ति के मन को आह्लादित कर सकते हैं जो अपनी सन्तान से प्रेम करता है। इन पदों में भी बहुत से ऐसे हैं जिनमें कृष्ण की लौकिक-लीलाओं का वर्णन है। ऐसे पदों से वह ही द्रवित हो सकते हैं जो कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हैं और उनके अनन्य भक्त हैं।

बाल कृष्ण विषयक इन पदों में सूर ने बालक कृष्ण की स्वाभाविक चेष्टाओं, क्रीड़ाओं और मनोभावों का ऐसा सुन्दर चित्रण किया है कि उन्हें वात्सल्य रस का कवि सम्राट और बाल गीत साहित्य का आदि कवि माना जाता है। कृष्ण के जन्म से ले कर घुटनों के बल चलने, नाचना सीखने क्रीडायें करने, माखन चुराने, यमुना तट पर कदम्ब पर चढ़ने, गायें चराने आदि उनकी लीलाओं के ऐसे मनोरम चित्र उन्होंने अपनी कल्पना से रंगकर प्रस्तुत किये हैं कि कोई कृष्ण भक्त न होते हुए भी उनमें पूरा आनन्द ले सकता है। पुत्र के प्रति माता के सहज स्नेह और लाड़-दुलार की ऐसी मधुर अभिव्यंजना सूरदास के इन पदों में हुई है कि कोई भी सहृदय पाठक उन्हें पढ़ कर द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। कृष्ण का जन्म कंस के उस कारावास में हुआ था जिसमें उनके माता-पिता इसलिये कैद थे कि कंस उनकी सन्तान को जीवित नहीं देखना चाहता था। जन्म के समय पिता ने नवजात शिशु के विषय में कुछ भी सोचा हो पर माता के हृदय में इस इच्छा का उठना नितान्त स्वाभाविक था कि उनका बच्चा किसी प्रकार कंस की क्रूर दृष्टि से बच कर सुरक्षित रह सके। वह अपने पति से कहती हैं:

हो प्रिय सौं उपाय कछु कीजै।
जेहि तेहि विधि दुराय यह बालक राखि कंस सौं लीजै॥

कृष्ण के पिता वासुदेव ने कृष्ण की अलौकिक शक्ति की सहायता से कृष्ण को भादों की उस अँधेरी काली रात में उमड़ी हुई यमुना को पार करके गोकुल ग्राम तक पहुँचाया। गोकुल में पहुँचने और यह प्रकट होने पर कि यशोदा के घर एक बालक का जन्म हुआ है किस प्रकार हर्ष मनाया गया इसका वर्णन करते हुए सूर ने गोकुल की रहने वाली एक गोपी के मुख से कहलाया है:

हौं एक बात नई सुन आई।
महरि जसोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई।
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई॥
अति आनन्द होत गोकुल सें रतन भूमि सब छाई।
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई॥ इत्यादि

इस प्रकार की प्रसन्नता भारतवर्ष में प्रायः जब भी किसी ऐसे व्यक्ति के घर पुत्र का जन्म होता है तो व्यक्त की जाती है, जिसके घर पुत्र उत्पन्न न हुआ हो।

यह कहा जाता है कि बालक के जब दाँत निकलते हैं तब उसका दूसरा जन्म होता है। दाँत निकलने से पहिले बच्चे प्रायः कमजोर हो जाते हैं, उन्हें दस्त आने लगते हैं। अतएव जब किसी बच्चे के आगे के दो दाँत पहली बार चमकते हैं तो माता-पिता और घर वालों

को अपार हर्ष होता है। बच्चों के इन पहिले निकलने वाले दांतों को दूध के दाँत कहा जाता है। कृष्ण के दूध के दाँत देखकर यशोदा माँ किस प्रकार प्रसन्न होती हैं——

सुत मुख देखि यसोदा फूली ।
हरषित देख दूध की दंतियाँ प्रेम मगन तन की सुधि भूली ॥
बाहर तें तब नन्द बुलाये देखो धौं सुन्दर सुखदाई ।
तनक तनक सी दूध की दंतियाँ देखो नैन सुफल करो आई ॥ इत्यादि

गोद के बच्चे को खिलाते हुए माँ स्वाभाविक रूप से यह कल्पना करती है कि बच्चे के दूध के दाँत निकलेंगे, यह घुटुओं के बल चलेगा अपने मुख से बोलेगा और वह यह सब सोचते-सोचते बच्चे को प्यार में चूम-चूम कर प्रसन्न होने लगती है। इसी का वर्णन करते हुए सूर ने कहा है——

नन्द घरनि आनन्द भरी सुत स्याम खिलावै ।
कबहुँ घुटुरुवनि चलहिंगे कहि विधहि मनावै ॥
कबहुँ दँतुलि द्वै दूध की देखौं देखौं इन नैननि ।
कबहुँ कमल मुख बोलिहैं सुनिहौं उन बैननि ॥
चूमत कर पग अधर मुख लटकति लट चूमति ॥ इत्यादि

उनके एक दूसरे पद 'जसुमति मन अभिलाष करैं', में भी इसी प्रकार का भाव है। बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है और घर से बाहर खेलने या घूमने जाने लगता है तो संध्या के समय प्रत्येक माँ की यह इच्छा होती है कि वह अपने घर पर आ जाये। इसी भाव को सूरदास ने अपने निम्न पद में व्यक्त किया है——

आवहु कान्ह साँझ की बिरियाँ ।
गाइनि माँझ भये हौ ठाड़े कहति जननि यह बड़ी कुबेरियाँ

इस प्रकार के और भी अनेक पद सूर की रचनाओं से उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें माँ के हृदय की स्वाभाविक ममता, बच्चे के हित की चिन्ता और उसे देख कर अपने मन की प्रसन्नता का बहुत ही रोचक वर्णन है। इनमें माँ के मन के सहज स्नेह और भावुकता की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है।

अपने बच्चों के लिए तरह-तरह की कल्पनाएँ, इच्छाएँ और अभिलाषाएँ करने के साथ-साथ उनके क्रीड़ा-कलाप को देख-देख कर भी माता-पिताओं को बहुत सुख प्राप्त होता है। जब बच्चे पहली बार घुटुनों के बल चलना प्रारम्भ करते हैं तो उन्हें कितने अच्छे लगते हैं——

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नन्द कै आँगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिवे धावत ॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौ कर सों पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ॥ इत्यादि

फिर बाल कृष्ण बच्चे खड़े हो कर चलने का प्रयत्न करते हैं। नन्द उन्हें दूर से अपना हाथ पकड़वाते हैं और वह अपने डगमगाते हुए पाँव धरती पर रखते हैं:

गहे अँगुरियाँ तात की नन्द चलन सिखावत ।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत ॥

रात के समय प्रायः मातायें अपने रोते हुए बालक का ध्यान बँटा कर उसे चुपाने के लिए चन्द्रमा की ओर संकेत करती हैं पर अबोध बालक जो यह नहीं जानता कि चन्द्रमा क्या है उसे देखकर यदि चुप भी हो जाता है तो सोचने लगता है कि यह चन्द्रमा मीठा है या खट्टा और फिर उसे पकड़ कर खाने के लिये माँगता है। न मिलने पर उसका रोना कलपना शान्त नहीं होता। तब माता उसका मन बहलाने के लिये आकाश में उड़ने वाली चिड़ियों की ओर उसका ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करती है। इसका बड़ा मनोवैज्ञानिक वर्णन सूरदास के इस पद में हमें मिलता है:

ठाढ़ी अजिर यसोदा अपने हरिहि लिये चन्दा दिखरावति ।
रोवत कत बलि जाऊँ तुम्हारी देखौं धौं भरि नयन जुड़ावत ॥
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लै लै जु जनावत ।
मीठो लगत किधौं, या खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत ॥
मन ही मन हरि बुद्धि करत हैं माता को कहि ताहि सुनावत ।
लागी भूख चन्द मैं खैहौं देहु देहु रिस करि बिरुझावत ॥
जसुमति कहति कहा मैं कीन्हों रोवत मोहन अति दुख पावत ।
सूर स्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त लखावति ॥

जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तो अपने साथियों के साथ खेलने लगता है। आपस में इन खेलों से ही उसके मन में प्रतिस्पर्द्धा की उस भावना का उदय होता है जो आगे के जीवन में उसे सबसे अच्छा बनने या सबसे आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करती है।

खेलत स्याम ग्वालनि संग ।
सुबल हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग ॥
हाथ तारी देत भाजत सबै करि करि होड़ ।
बरजु हलधर स्याम तुम जनि चोट लगिहै गोड़ ॥
तब कह्यो मैं दौड़ जानत बहुत बल मो गात ।
मेरी जोरी है सुदामा हाथ मारे जात ॥

सूरदास ने कृष्ण चरित विषयक पदों में जिस सामाजिक वातावरण का वर्णन किया है वह ग्रामीण समाज का वातावरण है। जिस ग्राम में कृष्ण बचपन से पाले-पोसे गये, रहे बसे और बड़े हुए थे वह ग्वालों का गाँव था। घर-घर पशु पाले जाते थे और माखन दूध-दही की बहुतायत थी। फिर भी उन्होंने कृष्ण का वर्णन एक ऐसे नटखट बालक के रूप में किया है जो अपने घर पर इन सब खाने की वस्तुओं से सन्तुष्ट न हो कर आस-पड़ोस के घरों में घुस कर इन वस्तुओं की चोरी किया करता था। इस वर्णन का आधार भागवत कथा है। पर कृष्ण भगवान के अवतार और गोकुल गाँव के सरदार महाराजा नन्द के पुत्र होते हुए भी माखन चोरी करते फिरते थे ऐसा चित्रित करने का उद्देश्य उनके सर्वसाधारण मानवीय रूप को प्रकट करके कृष्ण कथा को अधिक रोचक रूप में प्रस्तुत करना ही रहा होगा। चोरी की प्रवृत्ति बच्चों में होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है क्योंकि उसमें बिना समझाये-बुझाये अपने पराये की भावना बिलकुल होती ही नहीं है। नैतिकतावादी

शिक्षा की दृष्टि में बच्चों की चोरियों के वर्णन को बढ़ा-चढ़ा कर करने वाले साहित्य को बच्चों के लिये विषमय समझा जायेगा। उनके मतानुसार तो बालक को बचपन से ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह आदर्श रूप में ही चित्रित किया जाना चाहिये। पर सूरदास ने कृष्ण की माखन चोरी के सम्बन्ध में जितने पद लिखे हैं उन्हें पढ़ कर कोई बालक चोरी -करने की प्रेरणा ग्रहण कर लेगा ऐसा कहना उचित न होगा। उनके यह पद इतने रोचक और मनोवैज्ञानिक तथ्यों से भरे हुए हैं कि जरा भी अनैतिकता का प्रचार करने वाले और अस्वाभाविक नहीं लगते। कृष्ण जब बड़े हो कर घर घर माखन की चोरी करते फिरते हैं तो एक ग्वालिन यसोदा से आ कर उनकी शिकायत करती है :

जसोदा कहँ लौं कीजे कानि।
दिन प्रति दिन कैसे सही परति है दूध दही की हानि ॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखौ आनि ॥ इत्यादि

यशोदा को विश्वास ही नहीं होता था कि उनके कृष्ण ऐसे हैं आखिर एक बार एक ग्वालिन ने उन्हें चोरी करते हुए पकड़ ही लिया :

चोरी करत कान्ह धरि पाये।
निसि बासर मोहिं बहुत सतायो अब हरि हार्थाहिं आये ॥
माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्हीं।

इस पर कृष्ण ने कैसे स्वाभाविक ढंग से कितना सुन्दर उत्तर दिया है :

तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो सखा गये सब खाय।

अर्थात् चोरी मैंने की थी पर माखन मुझे बिलकुल खाने को नहीं मिला। यशोदा ने इस प्रकार के चोरी के उलाहनों से तंग आ कर यह आदेश दिया कि तुम घर पर ही खेला करो।

जसुमति कहति कान्ह सों मेरे अपने ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के मेरो कह्यो कबहुँ जनि पेलौ ॥

पर फिर भी जब वह न माने तो उन्होंने कृष्ण को ऊखल से बाँध दिया :

बाँधौं आजु कौन तोहि छोरे।
बहुत लंगरई कीन्हीं मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै।
जननी अति रिस जानि बंधायो चितै बदन लोचन जल ढोरै ॥

इस प्रकार की यातनायें देने से ग्वालिनों के दिल अपने आप पसीज गये और वह यशोदा से कहने लगीं :

ऐसी रिस तोको नन्द रानी।
भली बुद्धि तेरे जिय उपजी बड़ी वैस अब भई सयानी।
ढोटा एक भयो कैसेहुँ करि कौन कौन करवर विधि मानी ॥ इत्यादि

सूरदास के कृष्ण की बचपन की इन क्रीड़ाओं और उन्हें देख-देख कर माता यशोदा तथा दूसरे बड़ों के मन की भावनाओं और चेष्टाओं का चित्रण करने वाले पदों को बाल गीत की संज्ञा नहीं दी जा सकती। बच्चे ऐसे वर्णनों को पढ़ कर थोड़ा बहुत प्रसन्न भले ही हो लें पर वह उन्हें अपने लिए लिखित अपने मन के गीत समझ कर प्रसन्न नहीं हो सकते

और न बार-बार गाना दुहराना पसन्द कर सकते है। बाल गीत उन गीतों को कहते हैं जिनमें बच्चों के मन की आन्तरिक अनुभूतियों और कल्पनाओं को उन्हीं की भाषा में व्यक्त किया गया हो। सूरदास ने बाल गीत बिलकुल लिखे ही न हों ऐसी बात नहीं है। उनके पदों में से छाँट कर कुछ ऐसे पद प्राप्त किये जा सकते हैं जो बाल गीतों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। आपस में एक दूसरे को चिढ़ाना बच्चों का स्वभाव होता है। विशेष रूप से जब चिढ़ाने के लिए कोई ऐसी बात मिल जाती है जिसका प्रत्युत्तर कोई बालक न दे सके तब तो वह उसे रुला देने की सीमा तक चिढ़ाते हैं। सारा गोकुल ग्राम जानता था कि कृष्ण नन्द यशोदा के जाये नहीं हैं और कंस के भय से इस बात को भी यत्न से गोपनीय रखा गया था कि वह किसके जाये हैं। इसी बात को लेकर जब बलदाऊ ने उन्हें चिढ़ाया तो यशोदा से आत्म निवेदन करते हुए नाराज होते हैं :

मइया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो ?
कहा करौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरो तात ॥
गोरे नन्द यशोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ॥
तू मो ही कौं मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥

कृष्ण का यशोदा पर नाराज होना कितना स्वाभाविक है। और यशोदा की भी मानसिक स्थिति यह है कि वह कंस के भय से किसी पर यह प्रकट नहीं कर सकती थीं कि कृष्ण उनके अपने पुत्र नहीं हैं। कृष्ण जब नाराज हो कर उनसे यह कहते हैं कि तू मुझे ही मारती है बलदाऊ पर कभी नाराज नहीं होती, तो यशोदा इसके अतिरिक्त और क्या कर सकती थीं कि उनके क्रोध पर मन ही मन प्रसन्न होतीं। सूर के इस पद में कृष्ण का क्रोध तो स्वाभाविक है ही यशोदा का सुन-सुन कर प्रसन्न होना तो और भी अधिक स्वाभाविक है। पर इस पद के भाव का पूरा आनन्द उसे ही आ सकता है जो कृष्ण जन्म के विषय में सारी अन्तर्कथा से पूर्णतया परिचित हो। अतएव बच्चे इस पद को पढ़ कर बलदाऊ के खिझाने और कृष्ण के क्रोध प्रकट करने की बात पर तो प्रसन्न हो सकते हैं पर यशोदा माता के सुन-सुन कर रीझने की बात उनकी समझ में नहीं आ सकती और न उनका उससे मनोरंजन हो सकता है।

बलदाऊ के खिझाने के कारण कृष्ण यह निश्चय करते हैं कि वह अब उनके साथ खेलने न जायेंगे। यह निश्चय कोई बालक क्रोधवश तभी कर सकता है जब परिस्थितियाँ उसके मन के बिलकुल भी अनुकूल न हों। बालक कृष्ण के लिये स्वयं अपने माता-पिता की बात ही एक रहस्यमय पहेली बनी हुई है। यशोदा माता भी उसे सुलझा कर उनके मन को शान्त करने के लिये तैयार नहीं। अतएव उनका यह निश्चय बाल स्वभाव की दृष्टि से सर्वथा उचित ही है। वह कहते हैं :—

खेलन अब मोरी जाय बलइया।
जबहिं मोहिं देखत लरकन संग तबहिं खिझत बल भइया॥

इसी प्रकार सूर के और भी अनेक पद हैं जिनमें हमें बाल मनकी आन्तरिक अनुभूतियों का बड़ा स्वाभाविक चित्रण मिलता है। कृष्ण जब मुख में माखन लिपटाये हुए यशोदा के सामने आते हैं और उन पर माखन चोरी का आरोप लगाया जाता है तो वह कहते हैं:

मैया में नहिं माखन खायो।
जान परै सब संग सखा मिल मेरे मुख लपटायो॥
देख तुही सीके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे धरपायो॥
माखन पोंछि कहत नन्द नन्दन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँटि मुसकाइ तबहि गहि सुत को गोद लगायो॥

सूर के इस पद में बाल स्वभाव का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। माखन से मुँह सना होने पर चोरी का आरोप लगाये जाते समय कोई बालक इससे अच्छी युक्ति अपने को निर्दोष बताने के लिये और क्या सोच सकता है कि यह माखन तो सब संग सखाओं ने मेरे मुखपर लगा दिया है। वह फिर अपने कथन की पुष्टि करने के लिये और भी तर्क प्रस्तुत करता है कि माखन का भाजन तो ऊँचे सीके पर लटका था मेरे नन्हें हाथ उस तक पहुँच ही कैसे सकते थे। पर कृष्ण के झूठ बोलने और इस प्रकार के तर्क प्रस्तुत करने से पूरा आनन्द उसी को आ सकता है जो यह जानता हो कि कृष्ण अपने और साथियों की पीठ और कन्धों पर चढ़कर भी ऊँचे सीके पर लटकी मटकियों को तोड़ गिराते थे। इसलिये अलग अलग पदों में वर्णित कथा प्रसंग को अलग रखकर इस पद के भाव का पूरा आनन्द बड़े तो ले सकते हैं पर छोटे बाल पाठक नहीं।

बच्चों के खेल में कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक बच्चा अपने किसी दूसरे साथी से अपना पक्ष लेने की आशा करता है। पर वह दूसरा बालक स्वयं हार-जीत की बाजी लगी देख कर उसकी इस आशा के विपरीत आचरण करता है। पहिला बच्चा इस निराशा से दुखी हो कर रोष प्रगट करता है और इसी से आपस में कहन सुनन हो जाती है। इसी भाव को सूरदास ने निम्न पद में बड़े रोचक ढंग से व्यक्त किया है:

खेलत में को काको गुसइयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रुसइयाँ॥
जाति पाँति तुमतें कछु नाहिन बसत तुम्हारी छइयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गइयाँ॥

इस प्रकार सूर के बाल कृष्ण चरित विषयक पदों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि उनका बाल स्वभाव का ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह बच्चों की मनोवृत्तियों और स्वाभाविक चेष्टाओं से भली भाँति परिचित थे पर उनके पदों को बाल गीत की संज्ञा देना उपयुक्त न होगा। उनके पदों के कुछ भाव और कुछ पंक्तियाँ ऐसी अवश्य हैं जिन्हें हम बालगीतों के भाव या पंक्तियाँ कह सकते हैं।

लोरियां और प्रभातियां भी बाल गीतों के अन्तर्गत ही साहित्य क्षेत्र में मानी जाती हैं। उनका उपयोग बच्चों को सुलाने और जगाने के लिये किया जाता है। उनमें माताओं की भावनायें व्यक्त की जाती हैं पर साथ ही उनसे यह आशा भी की जाती है कि वह बच्चों के हृदयों को भी प्रभावित करेंगी। सूरदास ने अपने कुछ पदों में उन भावनाओं का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। यशोदा कृष्ण को पालने में झुला रही हैं और उन्हें सुलाने के लिये हिलरादुलरा कर जो कुछ भी उनके मुख में अचानक आ जाता है वही गाती जाती हैं। उसी समय वह कहती हैं

मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सी आवै तो कौं कान्ह बुलावै॥

लोरी के लिये इससे अधिक भाव भरी और मधुर पंक्तियाँ दूसरी नहीं हो सकतीं।

प्रभातियाँ भी सूर ने लखी हैं। उनकी निम्नलिखित प्रभाती तो बहुत प्रसिद्ध है:

जागिये ब्रज राज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृंद संकुचित भये भृंग लता भूले॥
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई।
राँभत गौ खरिकनि में बछरा हित धाई॥

पर सूरदास के बाल कृष्ण विषयक बहुत से पद ऐसे भी हैं जिनमें बाल कृष्ण को अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न ईश्वर के अवतार के रूप में दिखाया गया है। और बहुत से पदों में वह साधारण बाल स्वभाव का चित्रण करते हुए भक्ति के आवेश में बह कर बालक कृष्ण को अपना प्रभु और स्वामी बताने से अपने को रोक नहीं सके हैं। यशोदा बालक कृष्ण को अपना आँचल डाल कर दूध पिला रही हैं। इस साधारण बात को कहते-कहते भी वह अपनी भक्ति भावना को रोक नहीं पाये हैं—और कृष्ण को बालक कृष्ण कहने के स्थान पर अपना प्रभु कह गये हैं:—

अँचरा तर लै ढाकि सूर के प्रभु को दूध पियावत।

भक्तों के लिये यह कोई अनहोनी बात नहीं लगेगी पर किसी दास के स्वामी को कोई स्त्री आँचल डालकर दूध पिला रही है इससे जो चित्र आँखों के सामने आ उपस्थित होता है उसे वीभत्स के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

इसी प्रकार जब बालक कृष्ण दही विलोती हुई यशोदा की मथानी पकड़ कर खड़े हो जाते हैं तो सहसा वह ज्वार भाटे और भूचाल आने लगते हैं जिनसे साधारण मानवीय दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है:

मथनि दधि मथनी टेक खरयो।
आरि करत मटकी गह मोहन वासुकि संभु डर्यो
मंदर डरत, सिंधु पुनि कांपत फिर जनि मथन कर्यो।
प्रलय होय जनि गहौ मथानो प्रभु मरजात टर्यो।

ऐसे पदों में वर्णित भाव का बाल स्वभाव और बालगीतों से कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये सूर के बाल कृष्ण चरित्र के पदों में सम्मिलित होते हुए भी हम उन्हें असंगत और अनुपयुक्त ही कह सकते हैं।

बच्चे अपने बाल गीतों में स्वयं अपने जन्म पर होने वाली प्रसन्नता और हर्षोत्सव या अपने रूपसौंदर्य और चेष्टाओं का रोचक वर्णन पढ़ कर उतने प्रसन्न नहीं हो सकते जितना उनमें स्वयं अपनी भावनाओं और कल्पनाओं का चित्रण देख कर। माता की ममता या बड़ों के स्नेह लाड़-दुलार भरे वर्णनों से उन्हें प्रसन्नता अवश्य होती है। उनसे उनके मन को उसी प्रकार से तृप्ति मिलती है जैसे किसी को अपनी प्रशंसा सुन कर या अपने प्रति व्यक्त सद्-भावनाओं को पाकर होती है। छोटे होने के कारण उन वर्णनों से बच्चों को आत्म बल भी मिलता है और वह समाज में अपने को सुरक्षित समझने लगते हैं। उन्हें नये-नये काम करने की प्रेरणायें भी प्राप्त होती हैं। पर उनके मन के असली गीत तो वही होते हैं जिनमें उनके अपने उद्‌गार हर्ष क्रोध प्रसन्नता और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति की गई हो। इस दृष्टि से विचार करने पर सूरदास एक सफल बाल गीतकार कवि नहीं ठहरते। उन्होंने अपनी रच-नाओं में बड़ों की ममता, स्नेह, सद्‌भावनाओं और बाल स्वभाव का अच्छा चित्रण किया है। पर उनकी अभिव्यक्ति की शैली ऐसी नहीं जिससे उनके पदों को बच्चे अपने गीत कह कर अपना सकें। सूरदास कृष्ण के अनन्य भक्त थे और उनकी बाल लीलाओं का वर्णन ही उनके काव्य रचना का प्रमुख उद्देश्य था। उन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी न की होगी कि वह जो कुछ लिख रहे हैं उसे उनके समाज में छोटे बच्चे अपने मनोरन्जन के लिये लिखे अपने गीत कह कर अपनायेंगे। पर यह निर्विवाद सत्य है कि सूर को बाल स्वभाव की जैसी परख थी वैसी हिन्दी के किसी दूसरे कवि को नहीं। आधुनिक बाल गीतकार कवि भी बाल स्वभाव की सूक्ष्म प्रवृत्तियों और बच्चों की मनोभावनाओं और कल्पनाओं को उतनी कुशलता और भावुकता के साथ पकड़ने में सफल नहीं हुए हैं जितने सूरदास हुए थे। उनकी अपनी विशेष परिस्थितियों में बाल मन का कोई कोना ऐसा नहीं था जिस तक उनकी दृष्टि न गई हो इसी-लिये उनके पदों में स्थान-स्थान पर कुछ ऐसी पंक्तियाँ अपने आप आ गई हैं जिन्हें हम सुन्दर बाल गीतों की पंक्तियाँ कह सकते हैं। वात्सल्य रस के तो वह प्रथम और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं ही। ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी बाल कृष्ण सम्बन्धी रचनाओं का बहुत महत्व है। समाज में बड़े जब तक अपने बच्चों से प्यार करते रहेंगे उन्हें अपने बच्चों की चेष्टाओं और लीलाओं को देख कर जब तक प्रसन्नता होती रहेगी तब तक उन रचनाओं का महत्व कम नहीं होगा। इसीलिये जब कभी हम बाल गीत साहित्य पर विचार करेंगे हम सूर साहित्य को अपनी आँखों से ओझल नहीं कर सकते।

---

१२ : हिन्दी बालगीत साहित्य के इतिहास की भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास को मोटे तौर से निम्नलिखित कालों में विभक्त किया गया है। १—अपभ्रंश काव्य काल। २—देश भाषा काव्य अथवा वीर गाथा काल। ३—भक्ति काल लगभग सन् १३१८ से सन् १६४३ तक। इसे निर्गुण और सगुण धारा में विभक्त किया गया है। और इनमें से निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी और सगुण धारा की राम भक्ति तथा कृष्ण भक्ति नाम से अलग-अलग शाखायें मानी गई हैं। ४—रीति काल सन् १६४३ से १८४३ तक। ५—आधुनिक काल सन् १८४३ से अब तक। आधुनिक काल के अन्तर्गत खड़ी बोली काव्य के अतिरिक्त गद्य साहित्य के विभिन्न रूपों में विकास का काल भी आता है।

इस काल-विभाजन में विद्वान इतिहास लेखकों ने अपनी रुचि और समझ के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन भी कहीं-कहीं किया है। पर साधारणतया इसे सभी लेखकों ने स्वीकार किया है। हिन्दी में आधुनिक काल से पूर्व साहित्य के एक अंग माने जाकर बाल-गीत कभी नहीं लिखे गये। अपभ्रंश काल की रचनाओं के विषय में हमें पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है पर जो कुछ भी रचनायें प्राप्त हैं उनमें बच्चों के लिए लिखित काव्य के कहीं दर्शन नहीं होते। वीर गाथा काल युद्धों के वर्णन और राजा महाराजाओं की प्रशस्ति गान का काल था। इसलिए उस काल के किसी कवि की रचना में हमें ऐसे कोई अंश नहीं मिलते जिन्हें बच्चों के लिए लिखित काव्य कहा जा सके। इस काल के कवि जगनिक का आल्हा ऊदल काव्य बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ है। इसके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"जगनिक के काव्य का आज कहीं भी पता नहीं है। पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के गाँव-गाँव में सुनाई पड़ते हैं। यह गीत 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरसात में गाये जाते हैं। ......यदि यह ग्रंथ साहित्यिक प्रबन्ध पद्धति पर लिखा गया होता तो कहीं न कहीं राजकीय पुस्तकालयों में इसकी कोई प्रति रक्षित मिलती। पर यह गाने के लिए ही रचा गया था। इससे पंडितों और विद्वानों के हाथ इसकी रक्षा की ओर नहीं बढ़े, जनता के ही बीच इसकी गूँज रही—पर यह गूँज मात्र है, मूल शब्द नहीं।" संवत १९०० के प्रथम चतुर्थांश में फर्रुखाबाद के तत्कालीन कलक्टर श्री० चार्ल्स इलियट ने पहिले-पहिल इन गीतों का संग्रह करके छपवाया था।

जगनिक ने किसी भी मूल रूप में इस काव्य को लिखा हो किन्तु उसके गीतों का जो रूप हमें आजकल मिलता है उसकी जितनी लोकप्रियता है उसे देखते हुए यह निष्कर्ष निकाले बिना नहीं रहा जा सकता कि यह काव्य या गीत अपने रचनाकाल के बाद से जनता में हजारों लाखों मनुष्यों के मुखों से गाये जाते रहे हैं। इन गाने वाले मुखों में सब जवान या बूढ़े ही नहीं रहे होंगे क्योंकि बड़ों के लिए जो गीत इतने प्रिय रहे कि वह पीढ़ी दर

पीढ़ी उन्हें गाते आये उन्होंने बच्चों का भी कुछ न कुछ मनोरंजन अवश्य किया होगा। आज भी इन गीतों की सरल पंक्तियाँ बच्चे भी अपने मनोरंजन के लिए दुहराते पाये जाते हैं। पर इन गीतों के इतना लोकप्रिय होते हुए भी उनमें कहीं बच्चों की भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं मिलती।

वीर गाथा काल के एक कवि अमीर खुसरो ऐसे अवश्य मिलते हैं जिनके सरल दोहे, तुकबन्दियाँ, पहेलियाँ और मुकरियाँ इतनी सरल भाषा में और इतने मनोरंजक ढंग से लिखी गई थीं कि उन्होंने बड़ों के साथ-साथ बच्चों की कविताओं का भी काम दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार खुसरो ने सन् १२८३ के आस-पास काव्य रचना की और उनकी मृत्यु सन् १३२८ में हुई थी। खुसरो की यह एक पहेली तो अब तक बच्चे-बच्चे की जबान पर रही है––

एक थाल मोती से भरा।
सब के सिर पर औंधा धरा॥
चारों ओर वह थाली फिरे।
मोती उससे एक न गिरे॥

इसी प्रकार खुसरो की और भी बहुत-सी पहेलियाँ मुकरियाँ और ढकोसले ऐसे हैं जो पिछली अनेक शताब्दियों से बड़ों के अतिरिक्त बच्चों को भी बहुत प्रिय रहे हैं। उनकी क्रमशः दिया, मोरी, पतंग और लोटा पर निम्नलिखित पहेलियाँ और मुकरी हैं:

बाला था जब सब को भाया।
बढ़ा हुआ कुछ काम न आया॥
खुसरो कह दिया उसका नाम।
अर्थ करो या छोड़ो ग्राम॥ (दिया)
सावन भादों बहुत चलत है माघपूस में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहें तू बूझ पहेली मोरी॥ (मोरी)
एक कहानी मैं कहूँ तू सुन ले मेरे पूत।
बिन परों वह उड़ गया बांध गले में सूत॥ (पतंग)
जब माँगूँ तब जल भर लावे।
मेरे तन की तपन बुझावे॥
मन का भारी तन का छोटा।
ऐ! सखि साजन, ना सखि लोटा॥

खुसरो के इसी ढंग पर उनकी शैली से प्रभावित होकर और भी अनेक जन कवियों ने इसी प्रकार की पहेलियाँ, बुझौवल और ढकोसले लिखे हैं। उनमें से खवासी खेरे के घासी राम, बिगहपुर के पंडित और वासू की खगीनियाँ बहुत प्रसिद्ध हुए। घासीराम की एक पहेली है––

कारो है पर कौआ नाहिं।
रूख चढ़ै पर बन्दर नाहिं॥

मुँह को मोटो भिड़हा नाहिं।
कमर को पतलो चीता नाहिं॥
घासी कहें खवासी खेरे।
है नियरे पर पइहौ हेरे॥

जगनिक के आल्हा के गीत जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, ग्रामीण समाज के लोगों का ही अधिक मनोरंजन कर सके पर खुसरो के काव्य को नगरों के सभ्य समाज के पढ़े-लिखे लोगों ने भी अपनाया। पहेलियों के रूप में होने के कारण बच्चों को भी उसमें विशेष आनन्द आया। इन सब बातों पर विचार करते हुए खुसरो को बच्चों का सबसे पहिला प्रिय कवि माना जा सकता है। पर खुसरो ने बच्चों को ही ध्यान में रखकर विशेष रूप से उनके लिए ही काव्य रचना की थी ऐसी बात नहीं है। उनके समय में हिन्दी भाषा का कोई साहित्यिक रूप स्थिर नहीं हो सका था। उस समय की प्रचलित भाषा में जो कुछ भी सरल भावपूर्ण तुकबन्दियाँ गढ़ दी जाती थीं वह पाठकों का वैसा ही मनोरंजन करती थीं, जैसे अब की बड़ी-बड़ी भावपूर्ण और साहित्यिक भाषा में लिखी हुई रचनायें करती हैं। खुसरो ने अपनी पहेलियाँ और मुकरियाँ अपने समय की आम जनता के लिए लिखी थीं। यह संयोग की ही बात है कि वह बच्चों के लिए भी उतनी ही मनोरंजक सिद्ध हुईं। फिर भी बाल साहित्य की दृष्टि से उनका महत्व कम नहीं आँका जा सकता। खुसरो के सब उपलब्ध काव्य में से बच्चों के लिए उपयुक्त रचनायें छाँट कर अलग कर ली जायें तो उनका महत्व और भी बढ़ सकता है।

भक्ति काल के सबसे प्रमुख कवि कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा हैं। कबीर ने अपनी कविता में हिन्दुओं के राम और मुसलमानों के रहीम का खंडन करके दोनों में एकता स्थापित करने की चेष्टा की। उन्होंने ब्रह्म और आत्मा के गूढ़ रहस्यमय सम्बन्ध को अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की है। ईश्वर को माता और अपने को पुत्र मानकर भी उन्होंने उसी सम्बन्ध को समझाया है––

हरि जननी मैं बालक तोरा।
काहे न औगुन बकसहु मोरा॥

बाह्य रूप से इन पंक्तियों में माता और पुत्र के सम्बन्ध की बात ही कही गई है पर इसकी मूल भावना रहस्यवादी ढंग की है इसलिए यह बालोपयोगी काव्य के आस-पास भी कहीं नहीं आ सकती।

कबीर के समान ही जायसी भी अपने समय के सिद्ध सन्तों में से एक थे। उन्होंने अपनी रहस्य भावना को एक प्रेमाख्यान का रूप देकर व्यक्त किया है। उसमें ऐसे स्थल भी आ सकते थे जिनमें बाल स्वभाव का वर्णन हो। पर जायसी का ध्यान उस ओर गया ही नहीं है।

सगुण धारा के प्रतिनिधि कवि सूर और तुलसी ने अवश्य बच्चों की चेष्टाओं और क्रीड़ाओं इत्यादि का सजीव चित्रण ही नहीं किया उनकी मनोभावनाओं को व्यक्त करने

वाली कवितायें भी लिखी हैं। तुलसी का जीवन काल सन् १५२३ से सन् १६२३ तक के बीच तथा सूर का जीवन काल सन् १४८४ के आस-पास से सन् १५६३ के आस-पास तक का ठहरता है। तुलसी दास को राम भक्ति शाखा ही नहीं भारतीय संस्कृति, धर्म और परम्परा का प्रतिनिधि कवि कहा जाता है। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित वर्णन के द्वारा भारतीय समाज के सामने वह आदर्श प्रस्तुत किया जो आज तक विद्वान् विचारक, ग्रामीण अनपढ़, स्त्री-पुरुष और बालक सभी के लिए प्रेरणा का आधार बना हुआ है। पर बच्चों की सरल भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने में सूर उनसे कहीं अधिक सफल हुए हैं। तुलसी बालक राम के बाह्य रूप का काव्यमय रोचक वर्णन ही कर सके हैं—

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद तें भूपति लै निकसे।

उनकी रामचरित मानस या हनुमान चालीसा का प्रतिदिन नियमित पाठ करने वाले बहुत से भक्त जनों के परिवारों में प्रायः उनकी कुछ चौपाइयाँ या दोहे बच्चों को याद करा दिए जाते हैं। पर इससे उनकी कविता किसी अर्थ में बालोपयोगी नहीं हो सकती। उन्होंने गीतावली के कुछ पदों में रामलक्ष्मण आदि के बाल स्वभाव का कुछ चित्रण अवश्य किया है। पर यह कविता न तो बच्चे के मनोभाव या स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन करने के उद्देश्य से लिखी गई है और न बच्चों का मनोरंजन करने के लिए। वह इस बाल रूप के वर्णन में भी अपने आराध्य देव भगवान राम के देवत्व को जरा भी नहीं भूल सके हैं। गीतावली में उनके लिखे कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जिनसे बच्चों के प्रति माँ के मन में उठने वाली भावनाओं और बालकों के मनोभावों तक उनकी पहुँच का आभास हमें मिलता है। उनकी इस रचना के विषय में आचार्य शुक्ल का मत है—"गीतावली की रचना गोस्वामी जी ने सूरदास के अनुकरण पर की है। बाल लीला के कई पद ज्यों के त्यों सूरसागर में मिलते हैं, केवल 'राम' 'श्याम' का अन्तर है।" इसीलिए सूर और तुलसी के इन पदों में वैसा ही अन्तर है जैसा मूल रचना और अनुकरण में होना स्वाभाविक है।

बच्चों के मनोभावों का जितना स्वाभाविक और सजीव चित्रण हमें सूरदास के बाल कृष्ण विषयक पदों में मिलता है उतना अन्य किसी पुराने कवि की रचनाओं में नहीं। वात्सल्य रस के वह हिन्दी ही नहीं संसार की सब भाषाओं में शिरमौर कवि हैं। बालक रूप में कृष्ण की क्रीड़ाओं और मनोदशाओं का इतना सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है कि उनके 'सूर' होने पर आश्चर्य होता है। यशोदा माता बालक कृष्ण को 'पच-पच' कर दूध पिलाती हैं। न पीने पर उन्हें बताती हैं कि दूध पीने से तुम भी बलदाऊ की तरह हृष्ट-पुष्ट और मोटी चोटी वाले हो जाओगे। पर अनेक बार इस लालच में आकर दूध पी चुकने के बाद भी जब चोटी नहीं बढ़ी तो बालक कृष्ण का उनसे यह कहना कितना स्वाभाविक है—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितो बार मोंहि दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी
तू जो कहति बलि की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।

जब बालक कृष्ण कुछ बड़े हुए तो ब्रज में घर-घर जाकर गोपियों का माखन चुरा कर खा आया करते थे। एक बार एक गोपी ने उन्हें रंगे हाथों पकड़ लिया। उनका मुख खाये हुए माखन से सना था। माँ के डाँटने-डपटने पर वह किस तरह बाल सुलभ चालाकी से कहते हैं—

मैया मैं नहिं माखन खायो।
जान परै सब संग सखा मिल मेरे मुख लपटायो॥
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचो धरि लटकायो।
तुही निरखि नन्हें कर अपने मैं कैसे धर पायो॥

इन पंक्तियों में बाल स्वभाव का बड़ा सुन्दर चित्रण है। प्रतारणा के भय से झूंठ बोल जाने की प्रवृत्ति चतुर बच्चों में प्रायः पाई जाती है।

बच्चे खेल-खेल में एक दूसरे को चिढ़ाते और हँसी बनाते हैं। उन्हें जब किसी बच्चे के बारे में कोई ऐसी बात ज्ञात होती है जिससे वह चिढ़ता है तब तो वह उसे बार-बार कहकर और भी अधिक चिढ़ाते हैं। भोला बच्चा उस चिढ़ाने का अर्थ ठीक से नहीं समझ पाता तो लाचार हो अपनी माँ से कहता है। गोकुल के बच्चों को यह ज्ञात था कि कृष्ण वास्तव में यशोदा नन्द की सन्तान नहीं हैं। इससे उन्हें कृष्ण को चिढ़ाने का एक अच्छा अवसर मिल गया। इसी बात को लेकर सूर ने एक अत्यन्त भावपूर्ण पद लिखा है। कृष्ण यशोदा के पास आकर शिकायत करते हैं—

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हों तोहि जसुमति कब जायो॥

छोटे बड़े, ऊँच नीच, धनी निर्धन आदि के जो भाव बड़ों को पग-पग पर सताते हैं वह बच्चों के मन में कभी नहीं आते। फिर भी कोई उच्च कुल का बालक अपने समवयस्क दूसरे साथियों से जब कुछ अधिक अधिकारपूर्वक बातें करता है तो वह उसका प्रतिकार करते हैं—

खेलत में को काको गुसैयाँ।
जात पात हमसे कछु नाहीं न बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ॥

बाल स्वभाव का चित्रण करने वाले ऐसे बहुत से पद हमें सूर सागर में मिलते हैं। उनमें बालकृष्ण की अन्तरात्मा बोलती है। सूरदास ने इस प्रकार के पदों के अतिरिक्त बहुत सी सुन्दर लोरियाँ और भातियाँ भी लिखी हैं। यशोदा कृष्ण को सुलाने के लिए उन्हें पालने में झुलाते हुए गाती हैं—

मेरे लाल की आओ निदरिया काहे न आन सुवावै।

उन्हें प्रातःकाल जगाने के लिए वह कहती हैं—

जागिये ब्रज राज कुँवर कमल कुसुम फूले।

कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन सूरदास ने ऐसे मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है जिससे ज्ञात होता है कि उनका बाल स्वभाव का ज्ञान बहुत विशद था। बच्चों के मन के राग-द्वेष, हर्ष विषाद इत्यादि मनोभावों से वह भलीभाँति परिचित थे। बाल स्वभाव का ऐसा सुन्दर चित्रण हिन्दी के और किसी पुराने कवि की रचनाओं में हमें नहीं मिलता इसलिए हम उन्हें हिन्दी में बाल भावनाओं को चित्रित करने वाला प्रथम कवि कह सकते हैं। पर समय और परिस्थितियों के अनुसार बाल गीतों में भाव भाषा और शैली की दृष्टि से

परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सूरदास के पद बच्चों के लिए उतने ही उपयोगी हो सकते हैं जितने आधुनिक काल में लिखे गए बालगीत। दूसरे सूरदास कोरे कवि ही नहीं थे। बालकृष्ण उनके आराध्य देव भी थे। इसलिए उनके कृष्ण की बाल लीलाओं के पदों में प्रायः ऐसे पद भी मिलते हैं जिनमें ईश्वर के अवतार बालक कृष्ण की लीलाओं का वर्णन चमत्कारपूर्ण ढंग से किया गया है। यशोदा के दही बिलोते समय बालक कृष्ण के मथनी पकड़ कर खड़े हो जाने से होने वाले चमत्कार का वर्णन इस पद में देखने योग्य है—

जब दधि मथनी टेकि अरै।
आरि करत मटकी गहि मोहन, वासुकि संभु डरै॥
मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत फिरि जनि मथन करै।
प्रलय होइ जनि गहौ मथानी, प्रभु मरजाद टरै॥
सुर अरु असुर ठाढ़े सब चितवत नैननि नीर ढरै।
सूरदास मन मुग्ध जसोदा, मुख दधि बिन्दु परै॥

इसमें वासुकि संभु और मंदराचल पर्वत के डरने, सिंधु के काँपने और प्रलय होने का जो विचित्र वर्णन किया गया है उसका किसी बालक के मथनी पकड़ कर खड़े हो जाने से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं हो सकता। ऐसी असंगत और अद्भुत बातों का आनन्द वही ले सकता है जो सूर की भाँति ही कृष्ण का अन्ध भक्त हो और उन्हें परब्रह्म परमेश्वर का अवतार मानता हो। उनके ऐसे पदों को हम किसी प्रकार भी बाल काव्य के अन्तर्गत नहीं ले सकते। पर साधारणतया सूर के बाल कृष्ण विषयक पदों को पढ़ते समय हम माँ बच्चे और सखा साथियों के एक ऐसे मधुर सम्बन्धों से पूर्ण वातावरण में पहुँच जाते हैं जो बच्चों का अपना एक अलग संसार न होते हुए भी कम आकर्षक नहीं। इसीलिए आज सूर के इतने वर्ष बाद भी उनके यशोदा कृष्ण हमारे समाज में माता-पुत्र के प्रेम के प्रतीक बने हुए हैं।

रीति काल के प्रतिनिधि कवि आचार्य केशव दास जीवन काल की दृष्टि से भक्ति काल में ही हुए थे। वह तुलसी दास के समकालीन थे। पर इस काल के कवियों का ध्यान कविता के हृदय पक्ष की ओर न होकर उसके कला पक्ष की ओर ही अधिक था। कविता कामिनी को अनेक प्रकार के अलंकारों से अलंकृत करने में वह कवि-कर्म की कुशलता मानते थे। इस काल के अधिकांश कवि राज्याश्रित थे और वाग्विलास द्वारा अपना तथा अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन किया करते थे। अतएव उनसे तो यह आशा करना ही व्यर्थ है कि उन्होंने छोटे बच्चों के लिए भी काव्य रचना की होगी। फिर भी इस काल में ही घाघ, भडडरी और लाल बुझक्कड़ जैसे कुछ ऐसे जन कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा बड़ों के साथ-साथ बच्चों का भी मनोरंजन किया होगा। यह कवि सीधे-सादे भावों को साधारण बोल-चाल की जन भाषा में व्यक्त कर दिया करते थे। कला पक्ष का कोई चमत्कार उनमें नहीं होता था। उनमें कही गई बात सीधी जाकर हृदय को छूती थी। प्रायः ऐसी विनोदपूर्ण बातें भी उनकी रचनाओं में आ गई हैं जिन्हें सुनकर कोई भी हँसे या मुस्कराये बिना नहीं रह सकता। लाल बुझक्कड़ की तो सारी कवितायें हास्य के भाव से परिव्याप्त मिलती हैं। बच्चे भी उन्हें चाव से पढ़ते और दुहराते हैं।

पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार लाल बुझक्कड़ जिला फर्रुखाबाद के रहने वाले थे। उनका असली नाम लाल और बुझक्कड़ पदवी थी। घाघ की देखा-देखी उन्होंने भी अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किया था। घाघ के विषय में यह कहा जाता है कि वह कन्नौज के रहने वाले थे और उनके वंशधर वहाँ सराय घाघ चौधरी ग्राम में आज तक विद्यमान हैं। उनके जन्म संवत् का पता नहीं पर एक किंवदन्ती के अनुसार वह अकबर के काल में हुए थे और अकबर ने ही उन्हें अपने नाम से एक गाँव बसाने की आज्ञा दी थी। घाघ की रचनाओं में अनुभव ज्ञान की गंभीर बातें ही अधिक हैं। पर लाल बुझक्कड़ की रचनायें सरल और हँसाने वाली होने के कारण छोटों-बड़ों सब का ही मनोरंजन करने वाली हैं। एक बार एक हाथी किसी गाँव में होकर निकल गया था। सब ने आश्चर्यचकित होकर उसके बड़े-बड़े पाँवों के गोल-गोल निशान खेतों में पड़े हुए देखे। वह यह नहीं समझ सके कि वह किस पशु के पैरों के निशान हैं। इसी विषय पर लाल बुझक्कड़ ने कहा है—

लाल बुझक्कड़ बूझते
और न बूझै कोय।
पाँव में चक्की बाँध के
हरिना कूदा होय॥

इसी प्रकार एक काई लगे हुए पुराने कोल्हू को कहीं पड़ा हुआ देखकर उन्होंने यह उक्ति बनाई थी—

लाल बुझक्कड़ बूझते
वह तो हैं गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी
खुदा की सुरमा दानी॥

पर यह रचनायें विशेष रूप से बच्चों का मनोरंजन करने के उद्देश्य से नहीं लिखी गई थीं।

इसी काल के कुछ दूसरे कवियों ने नीति सम्बन्धी दोहे और कुंडलियाँ ऐसी सरल भाषा में लिखे हैं जिससे बच्चे उन्हें पढ़ कर उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अन्य उपलब्ध बाल गीतों के अभाव में उनका उपयोग भी बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में होता रहा है। इन कवियों में रहीम, वृन्द, गिरिधर कवि राय प्रमुख हैं। गिरिधर कवि राय की निम्नलिखित दो कुँडलियाँ तो बहुत प्रसिद्ध हुई हैं :

साईं बैर न कीजिए गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पौरिया, यज्ञ करावन हार॥
यज्ञ करावन हार राज्य मन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य आपकी तपै रसोई॥
कह गिरिधर कवि राय युगन तें यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं॥

लाठी में गुन बहुत हैं सदा राखिये संग।
गहरि नदी नाला जहाँ, तहाँ बचावै अंग।

तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता को मारै।
दुसमन दावागीर गरब तिनहूँ को झारै॥
कह गिरिधर कविराय सुनौ हो बेद के पाठी।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ में लीजै लाठी॥

इन कुंडलियों में जो व्यवहारिक ज्ञान की बातें कही गई हैं वह बच्चों के भी उसी प्रकार लाभ की हैं जैसे बड़ों के। पर ऐसी रचनाओं को हम बाल साहित्य किसी प्रकार नहीं कह सकते।

सन् १८४३ ई० से हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल प्रारम्भ होता है। इस काल के सर्व प्रथम और सबसे प्रमुख साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को अपनी प्रतिभा के वरदान से इतना प्रभावित किया कि उन्हें आधुनिक हिन्दी का जन्मदाता कहा जाता है। भारतेन्दु जी का जन्म सन् १८५० ई० और मृत्यु सन् १८८५ में हुई थी। यह उनके प्रभाव का ही फल था कि उनके बाद ही हिन्दी कविता प्राचीन रीतिकालीन परम्पराओं से मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक गति से विकास की ओर अग्रसर हो सकी। काव्य के क्षेत्र में वह स्वयं पुरानी परम्परा के ही अनुयायी थे पर उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ उन्होंने साधारण विषयों पर कुछ ऐसी सरल रचनायें भी की हैं जिनसे आगे चलकर हिन्दी कविता का पथ प्रशस्त हो सका। उनके 'अंधेर नगरी चौपट्ट राजा' नामक नाटक में हास्य रस की तीन कवितायें हैं। इनमें से 'चने का लटका' तथा 'चूरन का लटका' भाव और भाषा शैली की दृष्टि से ऐसी हैं जिनसे बच्चों का भी मनोरंजन हो सकता है। 'चने का लटका' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ तो अपने रूप में बाल गीत जैसी ही लगती हैं।

चने बनावै घासी राम।
जिनकी झोली सें दूकान॥
चना चुर मुर चुर मुर बोले।
बाबू खाने को मुँह खोले।
चना खावै तोकी मैना।
बोले—अच्छा चना चबैना॥
चना खायँ गफूरन, मुन्ना।
बोलै और नहीं कुछ सुन्ना॥
चना खाते सब बंगाली।
जिनकी धोती ढीली ढाली॥
चना खाते मियाँ जुलाहे।
दाढ़ी हिलती गाह बगाहे॥
चना हाकिम सब जो खाते।
सब पर दूना टिकिस लगाते॥

बाल गीतों में भी इसी प्रकार साधारण बातों पर तुकबन्दियाँ गढ़कर बच्चों का मनोरंजन किया जाता है। भारतेन्दु जी की इस रचना में वह तत्व विद्यमान हैं जो एक रोचक बालगीत के लिए आवश्यक होते हैं। इसलिए इसे ऐतिहासिक दृष्टि से हम आधुनिक हिन्दी का पहला बालगीत भी कह सकते हैं। इस कविता की तरह की ही उनकी दूसरी कविता चूरन का लटका है—

चूरन अमल बेद का भारी।
जिसको खाते कृष्ण मुरारी॥
चूरन पाचक है पचलोना।
जिसको खाता श्याम सलोना॥
चूरन बना मसाले दार।
जिससें खट्टे की बहार॥
मेरा चूरन जो कोई खाय।
मुझको छोड़ कहीं न जाय॥ इत्यादि

पर इसमें कुछ इस प्रकार की बातें भी कही गई हैं जो तत्कालीन राजनीति से सम्बन्ध रखती हैं, जैसे—

हिन्दू चूरन इसका नाम।
विलायत पूरन इसका काम॥
चूरन अमले सब जो खावें।
दूनी रिश्वत तुरत पचावें॥
चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा हिन्द हजम कर जाता॥

अतएव इस सम्पूर्ण रचना को हम उपयुक्त बालगीत नहीं कह सकते। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ बच्चों का भी मनोरंजन अवश्य कर सकती हैं। और वह एक बालगीत ही हैं।

भारतेन्दु ने अमीर खुसरो की मुकरियों की तरह नये जमाने की मुकरियाँ भी लिखी हैं। उनकी भाषा और भाव सरल हैं पर इससे ही उन्हें बालगीत साहित्य के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। उदाहरण के लिए एक मुकरी 'रेल' हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

सीटी देकर पास बुलावै।
रुपया ले तौ निकट बिठावै॥
ले भागै मोहि खेलहि खेल।
क्यों सखि साजन? ना, सखि रेल॥

उर्दू की भाषा शैली से प्रभावित उनकी कुछ और कवितायें इस प्रकार की हैं जिनमें छोटे बच्चे भी रस ले सकते हैं। 'दशरथ विलाप' कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
कहाँ तुम छोड़ कर मुझको सिधारे॥
बुढ़ापे में यह दिन भी देखना था।
इसी के देखने को मैं बचा था॥

उनकी यह कविता पाठ्य पुस्तकों में भी पढ़ाई जाती रही है। पर इस कविता का भाव बच्चों के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। बच्चे कौतूहलवश यह तो जानना चाहते हैं कि वह हँसी-हँसी में थोड़ी देर के लिए छिप जायें तो उनके माता-पिता को कैसा लगेगा। पर सदा के लिए या बहुत लम्बे समय के लिए बिछुड़ जाने पर उन्हें कैसा लगेगा ? यह जानने को वह उत्सुक नहीं हो सकते।

अपनी 'नील देवी' नामक नाटक पुस्तक में भारतेन्दु जी ने बच्चों को सुलाने के लिए एक लोरी भी लिखी है :

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे, दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ॥
भई आधी रात बन सनसनात।
पथ पंछी कोउ आवत न जात ॥
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हिलन ॥

इस लोरी में माँ की बच्चे के प्रति स्वाभाविक रूप से होने वाली मनोभावनाओं का उतना चित्रण नहीं है जितना प्रकृति के वाह्य रूपों का। फिर भी आधुनिक काल में लिखी जाने वाली लोरियों की कड़ी में यह पहिली लोरी है इसलिए इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। सूरदास के बाद हिन्दी में लोरी लिखने की ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था। भारतेन्दु जी ने इसे लिखकर उसकी ओर संकेत किया।

भारतेन्दु जी की जिन कविताओं का ऊपर उल्लेख किया गया है उनमें से कोई भी विशेष रूप से बच्चों के लिए नहीं लिखी गई थीं। फिर भी उनका ध्यान बाल साहित्य को विकसित करने की ओर था यह इस बात से सिद्ध है कि सन् १८७४ ई० में उन्होंने 'बाल बोधिनी' नाम से एक पत्रिका निकाली थी। वह अधिक दिनों तक चलती न रह सकी पर यदि भारतेन्दु जी को दीर्घायु प्राप्त हुई होती तो हमें विश्वास है कि वह अवश्य ही बाल साहित्य के विकास की ओर भी ध्यान देते।

पं० प्रताप नारायण मिश्र (१८५६–१८९४) भी भारतेन्दु जी के समकालीन कवियों में से थे। वह बड़े मनमौजी और विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने बुढ़ापा, गोरसा इत्यादि साधारण विषयों पर सरल भाषा में कुछ कवितायें लिखी हैं। उनकी 'हरगंगा' कविता तो एक समय में बच्चों तक को मुखाग्र हो गई थी——

आठ मास बीते जजमान।
अब तौ करो दच्छिना दान ॥

पर उनकी रचनाओं से बच्चों का कोई भावनात्मक सम्बन्ध नहीं हो सकता था इसलिए हम उन्हें बाल साहित्यकारों की कोटि में नहीं ले सकते।

इसके बाद ही हिन्दी में मिरजापुर और बनारस के उन लावनीबाजों का समय आता है जो सर्वसाधारण की समझ में आ सकने वाली टकसाली भाषा में लावनी और ख्याल बना बनाकर जनता के बीच सुनाया करते थे। पं० श्रीधर पाठक ने भी उन्हीं के प्रभाव में आकर अपनी 'जगत सचाई सार' पुस्तक में उसी प्रकार की कविता लिखी है——

जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा ! इसका भेद।
पीओ खाओ, सब सुख पाओ कभी न लाओ मन में खेद ॥

पं० श्रीधर पाठक का जन्म सन् १८६० और मृत्यु सन् १९२८ में हुई थी। वह पहले कवि हैं जिन्होंने बड़ों के साथ-साथ विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखने की ओर सबसे पहिले ध्यान दिया। उनकी कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना, कोयल, चकोर, मोर आदि बच्चों के सुपरिचित विषयों पर छोटी-छोटी सरल कवितायें बच्चों के लिये ही लिखी गई थीं। बड़े उनमें कोई विशेष रस या आनन्द नहीं ले सकते। यह कवितायें पाठक जी ने अपने अंग्रेजी भाषा के अध्ययन के प्रभाव से लिखी थीं। उनकी बड़ों के लिए लिखी अनेक पुस्तकों के समान वह अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद नहीं हैं। पर आधुनिक समय में लिखी गई बालोपयोगी कविता का प्रारम्भिक रूप हमें उनकी इन कविताओं में ही मिलता है। उनकी यह बालोपयोगी कवितायें उनकी सन् १९१७ में प्रकाशित पुस्तक मनोविनोद के बाल-विलास भाग में सम्मिलित हैं। उनका रचना काल देखने से ज्ञात होता है कि वह सब उनकी मृत्यु से २५–३० वर्ष पूर्व के बीच में ही लिखी गई थीं।

पाठक जी की बालोपयोगी कविताओं में वह स्वाभाविक सरलता सर्वत्र विद्यमान मिलती है आधुनिक काल में जिसे बालगीतों की सबसे प्रमुख विशेषता कहा जाता है। उनमें बड़ों के भाव कहीं छू भी नहीं गए हैं और न उनकी शैली में कोई खटकने वाली कृत्रिमता है। उदाहरण के लिए मैना शीर्षक कविता देखिए——

सुन सुन री प्यारी ओ मैना।
जरा सुना तो मीठे बैना ॥
काले पर, काले हैं डैना।
पीली चोंच, कटीले नैना ॥
काली कोयल तेरी भैना।
यद्यपि तेरी तरह पढ़े ना ॥
पर्वत से तू पकड़ी आई।
जगह बन्द पिंजड़े में पाई ॥
बानी विविध भाँति की बोलै।
चंचल पग पिंजड़े में डोलै ॥
उड़ जाने की राह न पावै।
अचरज में आकर घबरावै ॥

इत्यादि

इसी प्रकार उनकी एक दूसरी कविता है——

कुक्कुट इस पक्षी का नाम।
जिसके माथे मुकुट ललाम ॥

निकट कुक्कुटी इसकी नार।
जिस पर इसका प्रेम अपार॥
इनका बड़ा कुटुम परिवार।
किन्तु कुक्कुटी पर सब भार॥
कुक्कुट जी कुछ करें न काम।
चाहें बस करना आराम॥

इत्यादि।

इन कविताओं में भाषा की दृष्टि से कुछ ऐसे शब्द रूप आ गए हैं जो खड़ी बोली के शुद्ध रूपों से भिन्न हैं जैसे भैना, पढ़ै ना, बैना, नार, इत्यादि। पर यह उस समय की कवितायें हैं जब कविता में हिन्दी खड़ी बोली भाषा का रूप निश्चित हो रहा था। इसलिए उसे हम उनकी कविता का दोष कहकर उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। मूल प्रश्न भावों कौ बाल सुलभ सरलता से मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने का है। और इस दृष्टि से पाठक जी को इस कार्य में पर्याप्त सफलता मिली है। उनकी बालोपयोगी कविताओं की कुछ पंक्तियाँ तो इतनी परिष्कृत और शुद्ध हैं कि उनके परवर्ती किसी भी श्रेष्ठ बाल गीतकार के गीतों की पंक्तियों के समकक्ष रक्खी जा सकती हैं।

हुआ सबेरा जागो भैया।
खड़ी पुकारे प्यारी मैया॥

या

सब बालक मिल साथ बैठकर।
दूध पिओ, खाने को खा लो॥

उन्होंने 'बालभूगोल' नाम से भूगोल विषय की एक पुस्तक पद्य में लिखी है। इससे सम्भवतः वह यह सिद्ध करना चाहते थे कि ज्ञान-विज्ञान की बातें भी बच्चों को पद्य में कहकर सरलता से याद कराई जा सकती हैं। उस पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ इस दृष्टि से देखने योग्य हैं—

भूमि हमारी गोल है नारंगी की भाँत।
चक्कर देती सूर्य का, मत पूछो यह बात॥
कीली पर घूमी तभी होता है दिन रात।
और सूर्य के चक्र से होय वर्ष विख्यात॥

श्रीधर पाठक से पूर्व का समस्त हिन्दी साहित्य बाल गीतों की दृष्टि से अंधकारपूर्ण युग का साहित्य है। अपने-अपने बच्चे सभी को प्यारे होते हैं और जो पढ़े-लिखे लोग कविता और साहित्य के द्वारा अपना मनोरंजन करने में रुचि रखते हों वह अपने बच्चों की भावनाओं के प्रति सर्वथा उदासीन रहे होंगे इस पर विश्वास नहीं होता। सम्भव है समय-समय पर कुछ कवियों ने बच्चों के मनोरंजन के लिए कुछ कवितायें लिखी हों पर बड़ों के साहित्य की चकाचौंध में किसी पारखी का ध्यान उनकी ओर न गया हो। विद्वान विचारकों ने

उन्हें बच्चों का खिलवाड़ समझ कर उल्लेख योग्य ही न समझा हो और वह क्रूर काल के हाथों में पड़कर नष्ट हो गई हों। यह भी सम्भव है बच्चों में परम्परा से प्रचलित जो दो-चार पंक्तियों के अलिखित बालगीत आज भी हमें उपलब्ध होते हैं वह किन्हीं प्राचीन बालगीतों के भग्नावशेष हों। इसलिए इस दिशा में खोज करके हिन्दी में बालगीत साहित्य के इतिहास को लिखने की आवश्यकता है। लोक गीतों की बहुत-सी पंक्तियों ने भी बच्चों का मनोरंजन किया होगा। इस क्षेत्र में भी खोज करने की आवश्यकता है तभी बालगीत साहित्य का सच्चा इतिहास लिखा जा सकता है।

———

१३. हिन्दी बालगीत साहित्य का इतिहास

हिन्दी में बालोपयोगी कवितायें लिखने वाला प्रथम कवि अमीर खुसरो को माना जा सकता है। पर जिसकी कवितायें निश्चित रूप से सर्वप्रथम बालस्वभाव का चित्रण करने वाली हैं, वह हिन्दी कवियों की 'वृहत्रयी' के शिरोमणि भक्त कवि सूरदास हैं। इस प्रकार इतिहास लेखन की दृष्टि से हिन्दी बालगीत साहित्य का इतिहास लगभग चार-पाँच सौ वर्ष प्राचीन कहा जा सकता है। पर बालगीतों की आधुनिक परिभाषा के अनुसार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की एक कविता 'चने का लकटा' को छोड़कर अन्य किसी कवि की कोई कविता बालगीतों की कोटि में नहीं आती। श्रीधर पाठक (१८६०–१९२८) से पूर्व हम किसी भी हिन्दी कवि की कवितायें विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखित नहीं पाते। उनकी भी अधिकांश बालोपयोगी कवितायें सन् १९०० के बाद ही लिखी गईं। इसलिए आधुनिक बालगीत साहित्य के इतिहास को हम किसी प्रकार सन् १९०० से पूर्व नहीं ले जा सकते। इस प्रकार हिन्दी बालगीत साहित्य का यह इतिहास लगभग ६० वर्ष पुराना ही है। इतने कम और आधुनिक काल का भी इतिहास लिखने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन और सामग्री नहीं हैं। बालगीतकारों को कभी कोई स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास में दिया ही नहीं गया। और न हिन्दी के विद्वान आलोचकों की ही कृपादृष्टि कभी उन पर पड़ी। जिस साहित्य पर बच्चों ही नहीं देश का भविष्य निर्भर होता है उसकी हमारे देश में इतनी उपेक्षा कम आश्चर्य की बात नहीं है। विद्वान इतिहास लेखक और समालोचक बाल साहित्य को बच्चों का खिलवाड़ समझते हैं पर वह यह नहीं जानते कि वह बड़ों के साहित्य से कम महत्त्वपूर्ण किसी भी दृष्टि से नहीं होता।

विद्वान लेखकों की बाल-साहित्य के प्रति इस उपेक्षा के कारण आज हमें कोई भी ऐसी लिखित सामग्री कहीं नहीं मिलती जिससे हम बाल साहित्य के किसी भी लेखक, उसके रचना काल या रचनाओं के विषय में कोई क्रमबद्ध जानकारी प्राप्त कर सकें। इसलिए बालगीत साहित्य का इतिहास लिखने के लिए हमें उन लेखकों और उनके वंशजों का ही मुँह ताकना पड़ता है जिनमें से अधिकांश हमारे सौभाग्य से आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। उनमें से भी बहुतों के पते मिल सकना आसान नहीं। और बहुत कुछ अंशों में तथ्य एकत्रित करने का यह कार्य केवल पत्र व्यवहार के आधार पर नहीं चल सकता।

हिन्दी बालगीत साहित्य के पिछले ६२ वर्ष को हम मोटे तौर से बीस-बीस वर्ष के तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं। पहिला सन् १९०० से १९२१ तक दूसरा १९२१ से १९४२ तक और तीसरा १९४२ से १९६२ तक। यह काल विभाजन हमने किन्हीं निश्चित कारणों के आधार पर नहीं किया है। इसलिए हम यह नहीं कहते कि इस काल विभाजन के अतिरिक्त कोई दूसरा काल विभाजन हो ही नहीं सकता। वास्तव में यह ६० साल का समय इतिहास में इतना कम है कि उसे अलग-अलग कालों में विभाजित करने की आव-

श्यकता ही नहीं है। पर अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से हमने उसे उपर्युक्त तीन कालों में विभक्त कर लिया है और उन्हें आदि, मध्य और वर्त्तमान काल कह सकते हैं।

आदि काल

(१९००—१९२१)

इस काल में भारतवर्ष में अंग्रेजों का सुव्यवस्थित शासन स्थापित था। अंग्रेजी शिक्षा देश में फैल चुकी थी और फैलती जा रही थी। नौकरियों और सम्मान के लोभ में नागरिक जनता हिन्दी और संस्कृत को अपने घरों तक सीमित रखकर बाहर के जीवन में अंग्रेजी भाषा और ढंग को अपनाने का प्रयत्न करने लगी थी। शासन की दृष्टि से जनता में अमन-चैन था। अंग्रेजी पढ़े-लिखे और कुछ अधिक समझदार लोग शासन में अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए संगठित होकर कार्य करने की उपयोगिता को समझने लगे थे। ह्यूम द्वारा स्थापित कांग्रेस में ऐसे लोगों का प्रभाव बढ़ने लगा था जो संघर्ष करके बृटिश शासन के भार को उतार फेंकने के पक्ष में थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने इसी काल में उस सिंहनाद का स्वर ऊँचा किया जिसने देश के जन-जन में नये प्राण भर दिये। उन्होंने कहा था—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' देश में अनेक शिक्षण संस्थायें भी खोली गईं जो भावी राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने लगीं। अनेक डी० ए० वी० स्कूल, गुरुकुल कांगड़ी और शान्तिनिकेतन जैसी संस्थायें इसी समय में स्थापित की गईं थीं। अंग्रेजी शासन भी राजकीय स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्यूनिसिपल बोर्डों के द्वारा प्राथमिक तथा मिडिल पाठशालायें खुलवा कर शिक्षा के विकास में सहयोग दे रहा था।

इसी काल में सन् १९१४ में प्रथम विश्व महायुद्ध का प्रारम्भ योरुप में हुआ। भारतवर्ष एक पराधीन देश होने के कारण भारतीय जनता का कोई सीधा सम्बन्ध उस युद्ध से न था। फिर भी जब अंग्रेजी शासन ने युद्ध में सहायता के लिए माँग की तो देश के अधिकांश नेताओं ने उन्हें सहायता देना ही स्वीकार किया। महात्मा गांधी स्वयं भी उस समय उस सहयोग के विरोधी नहीं थे। युद्ध में सहयोग देने से एक लाभ यह हुआ कि विदेशी लोगों के सम्पर्क में आने और देश विदेश घूमने के कारण यहाँ के लोगों के मस्तिष्कों का विकास हुआ और उनके दृष्टिकोण व्यापक हो गए।

साहित्य के क्षेत्र में इस काल में हिन्दी कविता परम्परागत रूढ़ियों से निकल कर नये-नये विषयों और शैलियों की ओर आकर्षित होने लगी थी। सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर भी कवितायें लिखी जाने लगी थीं। इस काल की हिन्दी कविता में प्रधानतया दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं। एक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति और दूसरी राष्ट्रीय भावना की प्रवृत्ति। पहिली प्रवृत्ति के प्रमुख कवि पं० श्रीधर पाठक थे। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन का उनपर पर्याप्त प्रभाव था। उन्होंने न केवल कवितायें ही अंग्रेजी शैली में लिखीं बल्कि कई अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद भी किये। श्री गोपाल शरण सिंह, श्री जगमोहन सिंह, पं० रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने उसी शैली को अपनाया और आगे चलकर प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी जी आदि छायावादी कवियों की कविताओं में हम उसी शैली का विकसित रूप देखते हैं। दूसरी प्रवृत्ति के कवियों ने अंग्रेजी की छाया से भी बचकर

राष्ट्र का गुण गान करने और भारत के प्राचीन गौरव को जगाने का प्रयत्न अपनी कविताओं द्वारा किया। इनमें राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय प्रमुख है।

हिन्दी बाल गीतों का विकास इन्हीं दो प्रवृत्तियों की छाया में हुआ। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अंग्रेजी बाल गीतों से प्रभावित होकर वैसे ही बालगीत हिन्दी में लिखने की चेष्टा की और राष्ट्रीयतावादी कवियों ने कुछ ऐसी सरल प्रेरणादायक कवितायें लिखना भी आवश्यक समझा जिन्हें बच्चे भी पढ़कर आनन्द ले सकें। इस काल के पं० श्रीधर पाठक, पं० कामता प्रसाद गुरु, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री मैथिलीशरण गुप्त, डा० विद्याभूषण 'विभु' पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी आदि सभी की रचनाओं पर हम इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों की झलक स्पष्ट देख सकते हैं। अनेक बालोपयोगी पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन भी इस काल में प्रारम्भ हुआ। पं० सुदर्शनाचार्य ने 'शिशु' नामक छोटे बच्चों का एक मासिक पत्र सन् १९१६ में प्रयाग से निकाला जो लगभग ४० वर्ष तक निरन्तर शिशु साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहने के उपरान्त सहसा बन्द हो गया। बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए इतना उपयुक्त कोई दूसरा पत्र अभी तक देखने में नहीं आया। सन् १९१७ में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से 'बाल सखा' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उसके सम्पादकों में श्री० पं० बद्रीनाथ भट्ट, श्री कामता प्रसाद गुरु, श्री० देवी दत्त शुक्ल, श्री गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश' तथा श्री० ठाकुर श्रीनाथ सिंह जैसे बाल साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् और लेखक कवि रहे हैं। 'बाल सखा' अक्षुण्ण रूप से निकलता रह कर आज भी बाल साहित्य की सेवा कर रहा है। बाल सखा के इतने सुचारु रूप से निकलते रहने में पं० लल्ली प्रसाद पांडेय की लगन और श्रम का बड़ा महत्त्वपूर्ण योग दान है। पिछले कुछ वर्षों से पं० सोहन लाल द्विवेदी भी उसके सम्पादक हैं।

विषय वस्तु की दृष्टि से इस काल के कवियों द्वारा लिखे गए बाल गीतों को हम दो श्रेणियों में स्पष्ट रूप से विभाजित देख सकते हैं। एक तो वह बाल गीत हैं जो बच्चों का केवल मनोरंजन करने वाले हैं। कोई शिक्षा या उपदेश की बात उनमें नहीं कही गई है। पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय के चमकीले तारे, चुहिया, चूँ चूँ चूँ चूँ, म्याऊँ म्याऊँ, तथा डा० विद्या भूषण 'विभु' के 'घूम हाथी झूम हाथी, रेल का खेल, हेंचू बेंचू, बलई की चकई, इत्यादि इसी प्रकार के बाल गीत हैं। दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत वह बाल गीत हैं जिनमें आवश्यक समझी जाकर कोई न कोई ज्ञान या उपदेश की बात कही गई है। पं० लाल जी राम शर्मा की सबेरे की सैर श्री० मैथिली शरण गुप्त की ओले की कहानी, पं० राम नरेश त्रिपाठी की हम भाई बहनें हैं, प्रिंसिपल मनोरंजन की जागो भैया इत्यादि उस दूसरी श्रेणी के बालगीत हैं। पर उन दोनों ही श्रेणियों के बालगीतों का भाव पक्ष कुछ अधिक व्यापक नहीं है। उनमें से अधिकांश में यथातथ्य निरूपण ही किया गया है। भाव पक्ष की व्यापकता और बालोचित की दृष्टि से पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, डा० विद्याभूषण 'विभु' पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा ठाकुर श्रीनाथ सिंह के बालगीत इस काल के बाल गीतों में अधिक श्रेष्ठ हैं।

इस काल के बाल गीत भाषा शैली की दृष्टि से अपने विकास के प्रथम सोपान पर ही हैं। उनमें प्रायः बहुत से ऐसे शब्द आ गए हैं जो अब की दृष्टि से अप्रचलित और ग्रामीण

कहे जा सकते हैं जैसे रार, ढिठाई, बांट, बबुई, ठौर इत्यादि। कुछ ऐसे वाक्यांश भी प्रयुक्त हुए हैं जो अब हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते। पं० रामनरेश त्रिपाठी, डा० 'विभु' और ठाकुर श्रीनाथ सिंह की भाषा में यह बात बहुत कम पाई जाती है।

इस काल के कुछ प्रमुख कवियों के जीवन परिचय और रचनाओं के उद्धरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

पं० श्रीधर पाठक—पं० श्रीधर पाठक का जन्म सन् १८६० में आगरा जिले के जोधरी नामक ग्राम में हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने वंश परम्परा के अनुसार संस्कृत की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। मिडिल और प्रवेशिका परीक्षायें उन्होंने जिले भर में सबसे अधिक अंक प्राप्त करके पास कीं। सन् १८८० में वह नौकरी करने के विचार से कलकत्ता चले गए। उसके बाद विभिन्न राजकीय विभागों में सरकारी पदों पर काम करते रहे और अवकाश प्राप्त किया। सन् १९२८ में जब वह स्वास्थ्य लाभ के लिए मंसूरी गए हुए थे तो वहीं उनका स्वर्गवास हो गया। हिन्दी कविता के क्षेत्र में वह स्वच्छन्दतावादी धारा के प्रवर्त्तक कवि कहे जाते हैं। अंग्रेजी साहित्य के वह मर्मज्ञ ज्ञाता थे। और उन्होंने अंग्रेजी भाषा शैली से प्रभावित होकर कवितायें ही नहीं लिखीं, कई अंग्रेजी पुस्तकों के पद्यानुवाद भी किए। बच्चों के लिए छोटी-छोटी कवितायें लिखने की ओर उनका ध्यान अंग्रेजी के अध्ययन से ही गया होगा। उनकी अनेक बालोपयोगी कवितायें सन् १९१७ ई० में ओंकार प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित पुस्तक 'मनोविनोद' के 'बाल विलास' भाग में संगृहीत हैं। 'भारत गीत' पुस्तक में उन्होंने देश का गुण गान किया है। उसकी कुछ कवितायें राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण बच्चों के लिए भी उपयोगी हो सकती हैं। पर उनकी भाषा बालोपयोगी नहीं है। विद्यार्थियों के लिए उन्होंने एक पुस्तक भूगोल विषय पर 'बाल भूगोल' नाम से पद्य में लिखी है। उनकी एक बालोपयोगी कविता है—

तीतर

लड़कों इस झाड़ी के भीतर। छिपा हुआ है जोड़ा तीतर॥
फिरते थे यह अभी यहीं पर। चारा चुंगते हुए जमीं पर॥
एक तीतरी है इक तीतर। हमें देख कर भागे भीतर॥
आओ इनको जरा डराकर। ढेला मार निकालें बाहर॥
यह देखो वह दोनों भागे। खड़े रहो चुप बढ़ो न आगे॥
अब सुन लो इनकी गिटकारी। एक अनोखे ढंग की प्यारी॥
तीइत्तड़ तीइत्तड़ तीइत्तड़ तीइत्तड़। नाम इसी से इनका तीतर॥

पं० अयोध्यसिंह उपाध्याय—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय का जन्म सन् १८६५ में निजामाबाद जिला आजमगढ़ में हुआ था। कुल की परम्परा के अनुसार इनकी शिक्षा ७ वर्ष की अवस्था में उर्दू फारसी भाषा में घर पर ही प्रारम्भ हुई। बाबा सुमेर सिंह की प्रेरणा से उनकी रुचि हिन्दी कविता की ओर हुई। कानूनगो के सरकारी पद पर रहने के बाद सन् १९२३ में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। और उसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में हिन्दी के प्राध्यापक हो गए। वह हिन्दी के मूर्धन्य कवियों में माने जाते हैं। कठिन से कठिन

और सरल से सरल कवितायें लिखने में वह सिद्धहस्त थे। उनका लिखा 'प्रिय प्रवास' नामक महाकाव्य उनकी अमर कृति है। चुभते चौपदे, चोखे चौपदे इत्यादि और भी बहुत-सी कविता पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। बच्चों के लिए विशेष रूप से बहुत-सी कवितायें लिखी हैं जिनके संग्रह 'बाल विभव; 'बाल विलास; 'फूल पत्ते', पद्य प्रसून', 'चन्द्र खिलौना' तथा 'खेल तमाशा' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता यहाँ उद्धृत है——

देखो लड़कों बन्दर आया। एक मदारी उसको लाया॥
उसका है कुछ ढंग निराला। कानों में पहने है बाला॥
फटे पुराने रंग बिरंगे। कपड़े हैं उसके बेढंगे॥
मुँह डरावना आँखें छोटी। लम्बी दुम थोड़ी सी मोटी॥
भौंह कभी है वह मटकाता। आँखों को है कभी नचाता॥
ऐसा कभी किलकिलाता है। मानो अभी काट खाता है॥
दाँतों को है कभी दिखाता। कूद फाँद है कभी मचाता॥
कभी घुड़कता है मुँह बाकर। सब लोगों को बहुत डराकर॥
कभी छड़ी लेकर है चलता। है वह यों ही कभी मचलता॥
है सलाम को हाथ उठाता। पेट लेटकर है दिखलाता॥
ठुमक ठुमक कर कभी नाचता। कभी कभी है टके जाँचता॥
देखो बन्दर सिखलाने से। कहने सुनने समझाने से॥
बातें बहुत सीख जाता है। कई काम कर दिखलाता है॥
बनो आदमी तुम पढ़लिखकर। नहीं एक तुम भी हो बन्दर॥

कामताप्रसाद गुरु——पं० कामता प्रसाद गुरु का जन्म सन् १८७५ में परकोटा, जिला सागर म० प्र० में हुआ था। सागर में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। और उसके बाद ही वह अध्यापक पद पर नियुक्त हो गए। ३५ वर्ष तक अध्यापन कार्य करते रहने के उपरान्त उन्होंने नार्मल स्कूल जबलपुर के प्रधानाध्यापक पद से अवकाश ग्रहण किया। हिन्दी में वह अपनी व्याकरण विषय पर लिखी पुस्तक के लिए प्रसिद्ध हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। 'बाल सखा' मासिक के वह सम्पादक भी रहे थे। 'हिन्दुस्तानी शिष्टाचार', 'सुदर्शन', 'पद्य पुष्पावली' आदि बालोपयोगी पुस्तकें उनकी लिखी हुई हैं। उनकी अपने समय में बहुत प्रसिद्ध एक कविता हम यहाँ उद्धृत करते हैं जिसे बच्चे अभिनय के साथ मंच पर सुनाया करते थे——

छड़ी

यह सुन्दर छड़ी हमारी। है हमें बहुत ही प्यारी॥
यह खेल समय हर्षाती। मन में है साहस लाती॥
तन में अति जोर जगाती। उपयोगी है यह भारी॥
हम घोड़ी इसे बनायें। कम घेरे में दौड़ायें॥
कुछ ऐब न इसमें पायें। है इसकी तेज सवारी॥
यह जीन लगाम न चाहे। कुछ काम न दाने का है॥
गति में यह तेज हवा है। यह घोड़ी जग से न्यारी॥

यह टेक छलांग लगाये। उँगली पर इसे नचायें॥
हम इससे चक्कर खायें। हम हलके हैं यह भारी॥
हम केवट हैं बन जाते। इसकी पतवार बनाते॥
नैया को पार लगाते। लेते हैं कर सरकारी॥
इसको बन्दूक बनाकर। हम रख लेते कन्धे पर॥
फिर छोड़ इसे गोली भर। कितनी भरकम है भारी॥
अन्धे को बाट बताये। लंगड़े का पैर बढ़ाये॥
बूढ़े का भार उठाये। यह छड़ी परम उपकारी॥
लकड़ी यह बन से आई। इसमें है भरी भलाई॥
है इसकी सत्य बड़ाई। इससे हमने यह धारी॥

गुरु जी की इस कविता की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर सागर के ही सुप्रसिद्ध कवि गुणाकर जी ने बिल्कुल इसी प्रकार की एक कविता 'यह छाता है सुखदाई' लिखी थी। गुरु जी ने अपने व्यक्तित्व और अपनी रचनाओं से और भी अनेक कवियों को बाल साहित्य लिखने के लिए प्रेरित और उत्साहित किया।

रामजीलाल शर्मा——पं० रामजीलाल शर्मा का जन्म सन् १८७९ में ग्राम उतराला जिला मेरठ में हुआ था। उन्होंने घर पर ही अपने पिता से हिन्दी संस्कृत का अध्ययन किया। सन् १९०५ में वह इंडियन प्रेस प्रयाग में नौकर हो गए और 'बाल सखा पुस्तक माला' का सम्पादन किया। बाद में स्वयं अपना प्रेस 'हिन्दी प्रेस' नाम से प्रयाग में खोल दिया। सन् १९१० में 'विद्यार्थी' नामक एक मासिक पत्र निकाला जिसने तत्कालीन विद्यार्थी जगत में हलचल मचा दी थी। सन् १९२७ में 'खिलौना' नामक एक बालोपयोगी पत्र भी निकाला था। इसके ३ वर्ष बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। "खिलौना" का प्रकाशन उसके बाद उनके सुयोग्य पुत्र पं० रघुनन्दन शर्मा सन् १९६० तक बराबर करते रहे। पं० रामजीलाल ने लगभग ५० बालोपयोगी पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कीं। उनमें से कुछ के नाम यह हैं—— बाल रामायण, बाल भागवत, बाल गीता, टके सेर मुक्ति, टके सेर लक्ष्मी, बाल चरित माला के अन्तर्गत ४० जीवन चरित। इनमें से अधिकांश पुस्तकें गद्य में ही हैं। पर वह पद्य भी बहुत सरस लिखते थे। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है——

मदरसे जाते पढ़ने खूब, बालकों से रखते हैं मेल।
शाम को घर आ सबके साथ, द्वार पर अपने खेलें खेल॥
शान से अहा एक किक मार खेलते हैं हँस कर फुटबाल।
खिलाड़ी बने उछलते खूब हमारे लाला लल्लू लाल॥

मन्नन द्विवेदी गजपुरी——पं० मन्नन द्विवेदी का जन्म सन् १८८५ में ग्राम राजपुर जिला गोरखपुर में हुआ था। बनारस के राजकीय कालिज से उन्होंने बी० ए० पास किया। और उत्तर प्रदेश के राजकीय शासन विभाग में उनकी नियुक्ति हो गई। तहसीलदार पद पर राजकीय कार्यों में बहुत व्यस्त रहते हुए भी वह हिन्दी सेवा के कार्यों में बड़े उत्साह से भाग

ते थे सन् १९२१ में उनका स्वर्गवास हो गया। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। निम्नलिखित विनती तो बहुत प्रसिद्ध है—

विनती सुन लो हे भगवान। हम सब बालक हैं नादान ॥
विद्या बुद्धि नहीं कुछ पास। हमें बना लो अपना दास ॥
बुरे काम से हमें बचाना। खूब पढ़ाना खूब लिखाना ॥
हमें सहारा देते रहना। खबर हमारी लेते रहना ॥
तुमको शीश नवाते हैं हम। विद्या पढ़ने आते हैं हम ॥

मैथिलीशरण गुप्त—श्री० मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन् १८८६ में झाँसी में हुआ था। शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, बँगला भाषाओं का ज्ञान उन्हें था। वैष्णव परिवार में जन्म लेने के कारण राम-भक्ति उनमें कूट-कूट कर भरी थी। 'साकेत' महाकाव्य उनकी अमर कृति है। इसके अतिरिक्त भारत भारती, यशोधरा, पंच-वटी, जयद्रथ बध, गुरुकुल इत्यादि और भी अनेक कविता पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। सन् १९१७ में जब 'भारत भारती' प्रकाशित हुई थी तब आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे 'युगान्तर कारिणी' रचना कहा था। बच्चे भी उनकी प्रतिभा के वरदान से वंचित नहीं रहे हैं। उनके लिए भी उन्होंने कुछ बालोपयोगी कवितायें लिखी हैं। उनमें से एक हम उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

होकर कौतूहल के बस में। गया एक दिन मैं सरकस में ॥
भय विस्मय के खेल अनोखे। देखे बहु व्यायाम अनोखे ॥
एक बड़ा-सा बन्दर आया। उसने झटपट लैम्प जलाया ॥
डट कुर्सी पर पुस्तक खोली। आ तब तक मैना यों बोली ॥
'हाजिर है हजूर का घोड़ा।' चौंक उठाया उसने कोड़ा ॥
आया तब तक एक बछेरा। चढ़ बन्दर ने उसको फेरा ॥
टट्टू ने भी किया सपाटा। टट्टी फांदी, चक्कर काटा ॥
फिर बन्दर कुर्सी पर बैठा। मुँह में चुरट दबाकर ऐंठा ॥
माचिस लेकर उसे जलाया। और धुआँ भी खूब उड़ाया ॥
ले उसकी अधजली सलाई। तोते ने आ तोप चलाई ॥
एक मनुष्य अन्त में आया। पकड़े हुए सिंह को लाया ॥
मनुज सिंह की देख लड़ाई। की मैंने इस भाँति बड़ाई ॥
किसे साहसी जन डरता है। नरनाहर को वश करता है ॥
मेरा एक मित्र तब बोला। भाई तू भी है बस भोला ॥
'यह सिंही का जना हुआ है। किन्तु स्यार यह बना हुआ है ॥
यह पिंजड़े में बन्द रहा है। नहीं कभी स्वच्छन्द रहा है ॥
छोटे से यह पकड़ा आया। मार मार कर गया सिखाया ॥
अपने को भी भूल गया है। आती इस पर मुझे दया है ॥'

रामनरेश त्रिपाठी—पं० रामनरेश त्रिपाठी का जन्म सन् १८८९ में ग्राम कोइरीपुर जि० जौनपुर में हुआ था। इनके पिता कट्टर सनातनी पंडित थे इसलिए वह उन्हें ग्राम में अपर प्राइमरी स्कूल की परीक्षा पास कर लेने के बाद अंग्रेजी पढ़ने के लिए जौनपुर नहीं भेजना चाहते थे। इसी बात पर पिता-पुत्र में विरोध हो गया। और त्रिपाठी जी उस छोटी अवस्था में अपना घर छोड़कर कलकत्ता चले गए। वहाँ से राजस्थान में जाकर शेखावाटी नामक स्थान पर रहने लगे। इसी समय में उन्होंने बंगाली, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषायें भी सीख लीं। ग्राम गीतों का संकलन भी इस प्रवास काल में ही उन्होंने किया। सन् १९१५ में पिता के स्वर्गवास का समाचार सुनकर अपने घर वापस आये। और सन् १९१७ से आकर प्रयाग में बस गये। सन् १९२४ में प्रयाग में हिन्दी मन्दिर प्रेस की स्थापना करके प्रकाशन कार्य प्रारम्भ किया और सन् १९३१ में 'बानर' नाम का एक बालोपयोगी मासिक पत्र निकाला। उनकी बड़ों के लिए लिखी कविता कौमुदी ७ भाग, रामचरित मानस की टीका तथा पथिक, मिलन और स्वप्न खंड काव्य प्रसिद्ध हैं। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा। बाल कथा कहानी १७ भाग, गुप-चुप कहानियाँ, मोहन माला, बताओ तो जान, बानर संगीत, हंसू की हिम्मत, नेता बुझौवल, बुद्धि विनोद, मोतीचूर के लड्डू, पेखन, अशोक, चन्द्रगुप्त, हिन्दी ज्ञानोदय रीडर, आदि अनेक बालोपयोगी पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। उनके दो बालगीत हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

आई एक छींक नन्दू को, एक रोज वह इतना छींका।
इतना छींका, इतना छींका, इतना छींका, इतना छींका।
सब पत्ते गिर गये पेड़ के, धोखा उन्हें हुआ आँधी का।

हम भाई बहनें हैं

आसमान है एक हमारा एक नाव पर घर है।
है एक ही विराम हमारा और एक बिस्तर है ॥
एक तरह के अंग हमारे चाहे रंग कई हों।
रहन सहन है एक हमारी चाहे ढंग कई हों ॥
भाव एक हैं, भाषाओं की पोशाकें पहने हैं।
परमेश्वर है एक हमारा, हम भाई बहने हैं ॥

डा० विद्याभूषण 'विभु'—डा० विद्याभूषण 'विभु' का जन्म सन् १८९२ में ग्राम मनोहरपुर जि० कानपुर में हुआ था। भूगोल विषय लेकर उन्होंने बी० ए० पास किया। फिर एम० ए० पास करने के बाद प्रयाग विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० किया। और डी० ए० वी० इन्टर कालिज में अध्यापक हो गए। रायल भूगोल सोसायटी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भूगोल समिति के वह सदस्य भी रहे। बच्चों के लिए कविता लिखने का उन्हें अपने विद्यार्थी जीवन से ही शौक था। उनके बाल गीतों पर आधुनिकता की छाप है। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी के शब्दों में 'हिन्दी में उनके ही बालगीत ऐसे हैं जो अंग्रेजी बालगीतों के समकक्ष रक्खे जा सकते हैं।' उन्होंने बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए दो-दो चार-चार पंक्तियों की सरल तुकबन्दियाँ लिखने का कार्य सबसे पहिले किया। 'चार साथी', 'चन्दा', 'बबुआ' 'पंख शंख', 'ता', 'गोबर गणेश', 'लाल बुझक्कड़', 'शेखचिल्ली', 'ढपोर शंख', 'खेलो भैया', 'चाँद तारा' खेल खिलौने, लाल खिलौना, गुड़िया, फूल बगिया में, पाँच

पंखुरियाँ, राष्ट्रीय गान ३ भाग, झुनमुन, गुंजाफल, गगन गंगा, कोकाबेली, सागर है या जादूघर आदि उनकी लिखी बहुत-सी बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ हम उनका एक बालगीत उद्धृत करते हैं—

घूम हाथी, झूम हाथी।
घूम हाथी, झूम हाथी॥
राजा झूमें रानी झूमें झूमें राज कुमार।
घोड़े झूमें फौजें झूमें झूमें सब दरबार॥
हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम॥
झूम झूम, घूम घूम, घूम हाथी, झूम हाथी।
धरती घूमें, बादल घूमें सूरज चाँद सितारे।
चुनिया घूमें मुनिया घूमें, घूमें राज दुलारे॥
हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम॥
घूम झूम, झूम घूम, घूम हाथी, झूम हाथी।
राज महल में बांदी झूमे पनघट पर पनिहारी।
पीलवान का अंकुश घूमें सोने की अम्बारी॥
हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम॥

घूम झूम, झूम घूम, घूम हाथी, झूम हाथी।

मुरारीलाल शर्मा 'बालबन्धु'—श्री० मुरारीलाल शर्मा का जन्म सन् १८९३ में ग्राम साईं मल की टीकरी जिला मेरठ में हुआ था। स्कूल लीविंग परीक्षा पास करने के बाद वह अध्यापक हो गए। और कई स्कूलों में कार्य करने के उपरान्त सन् १९५३ में नानक चन्द हाई स्कूल मेरठ में अध्यापक पद से अवकाश ग्रहण किया। वह आजीवन सेवासमिति बालचर मंडल, उ० प्र० के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे। और स्काउट कमिश्नर भी रह चुके हैं। 'भारतीय बालक' तथा 'सेवा' नामक बालोपयोगी पत्रिकाओं का उन्होंने सम्पादन भी किया है। बच्चों के लिए उनकी 'साहसी बच्चे', 'होनहार बिरवे', 'गोदी भरे लाल', 'मौत से अठखेलियाँ', 'ज्ञान गंगा', 'कोकिला', 'संगीत सुधा' आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके बालगीत स्कूलों तथा बालचर संस्थाओं में बच्चों द्वारा गाये जाते हैं। उनका एक सुप्रसिद्ध बालगीत हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर सेवा पर उपकार में हम जग जीवन सफल बना जावें॥
हम दीन हीन निबलों विकलों के सेवक बन सन्ताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें खुद तर जावें॥
हम छल दम्भ द्वेष पाखंड झूठ अन्याय से निशिदिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधारस बरसावें॥
निज आन मान मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया बलिदान उसी पर हो जावें॥

देवी प्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'—श्री देवी प्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' जी का जन्म सन् १८९३ में ग्राम बनखेड़ी जिला होशंगाबाद में हुआ था। उनके पिता उर्दू-फारसी के अच्छे विद्वान् थे। अतएव इन्हीं भाषाओं के द्वारा उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। राबर्टसन कालिज जबलपुर से बी० ए० और नागपुर से कानून की परीक्षा उन्होंने पास की और वकालत करने लगे। सोहागपुर में वकालत करते-करते ही सन् १९५५ में उनका स्वर्गवास हो गया। साहित्य के क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए उन्हें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। उनकी एक कविता हम उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

दादा का मुँह

दादा का जब मुँह चलता है मुझे हंसी तब आती है।
अम्मा मेरे कान खींच कर मुझको डाट बताती है॥
किन्तु हंसी बढ़ती जाती है मेरे वश की बात नहीं।
चलते देख पोपले मुख को रुक सकती है हंसी कहीं॥
ठुड्डी की वह उछल कूद-सी और पिचकना गालों का।
और कवायद वह होंठों की नाच मूँछ के बालों का॥
मित्र देखते ही बनता है बहुत कठिन है समझाना।
तुम्हें देखना हो तो तुम भी ऐसे समय चले आना॥

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'—पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' का जन्म जौनपुर जिले के जोदईपुर गाँव में सन् १८९८ में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। बाद में वह प्रयाग आकर पढ़ने लगे और बी० ए० पास कर लिया। उनका सारा जीवन साहित्य-सेवा में ही बीता। उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, कविता सभी कुछ उन्होंने लिखे हैं। उनकी कीर्त्ति का प्रमुख आधार 'तारक बध' नामक महाकाव्य है। वह उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री तथा अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रह मन्त्री रहे। सन् १९४९ के अधिवेशन में सह साहित्य परिषद् के सभापति भी थे। ६ जून सन् १९५९ को दारागंज में उनका स्वर्गवास हो गया। बाल साहित्य की श्रीवृद्धि में उनकी विशेष रुचि थी। 'बाल सखा' मासिक का सम्पादन भी उन्होंने कुछ दिन किया था। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। एक यहाँ प्रस्तुत है—

यहीं हिमालय-सा पहाड़ है यहीं गंग की धारा है।
जमुना लहराती है सुन्दर भारत कितना प्यारा है॥
फल फूलों से भरी भूमि है खेतों में हरियाली है।
आमों की डालों पर बैठी गाती कोयल काली है॥
बच्चों! माँ ने पाल पोस कर तुमको बड़ा बनाया है।
लेकिन यह मत भूलो तुमने अन्न कहाँ का खाया है॥
तुमने पानी पिया कहाँ का खेले मिट्टी में किसकी।
चले हवा में किसकी बोलो, वह हैं प्यारे भारत की॥

मनोरंजन प्रसाद सिनहा—श्री मनोरंजन प्रसाद सिनहा का जन्म सन् १९०० में डुमरांव जिला शाहाबाद बिहार में हुआ था। अपने विद्यार्थी जीवन से ही वह सामाजिक कार्यों में

सक्रिय भाग लेने लगे थे। सन् १९२० में वह कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में विषय निर्वाचन समिति के सदस्य चुने गए। हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से अंग्रेजी विषय लेकर उन्होंने प्रथम श्रेणी में एम० ए० पास किया। और वहीं प्राध्यापक हो गए। उसके बाद राजेन्द्र कालिज, छपरा में प्रिंसिपल होकर चले गए। सन् १९६० में उसी पद से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। उनकी हास्य रस की कविताओं का एक संग्रह 'गुन गुन' नाम से प्रकाशित हुआ था। भोजपुरी साहित्य में वह अपनी 'फिरंगिया' कविता के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। पर वह अभी तक पुस्तक रूप में प्रकाशित होकर सामने नहीं आईं। उनकी एक बालोपयोगी कविता है—

जागो भैया

शोर मचाती है गौरैया। हुआ सबेरा जागो भैया।।
उठो उठो अब आँखें खोलो। प्रातः कृत्य करो मुँह धोलो।।
गाती हैं सब प्रात चिरैया। हुआ सबेरा जागो भैया।।
सुन्दर स्वच्छ हवा बहती है। शान्त मन्द स्वर में कहती है।।
हर लूँगी मैं पीर बलैया। हुआ सबेरा जागो भैया।।
सूरज से पहिले जग जाओ। जीवन का आनन्द उठाओ।।
नाचो गाओ ताता थैया। हुआ सबेरा जागो भैया।।
उछलो कूदो धूम मचाओ। पढ़ने में भी चित्त लगाओ।।
राजा मेरे कुँवर कन्हैया। हुआ सबेरा जागो भैया।।

ठाकुर श्रीनाथ सिंह—ठाकुर श्रीनाथ सिंह का जन्म सन् १९०१ में हुआ था। उन्होंने कोई अंग्रेजी शिक्षा की डिग्री नहीं प्राप्त की। एक स्वतन्त्र पत्रकार के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया। 'शिशु', 'देशबन्धु', 'बाल सखा', 'अभ्युदय', 'सरस्वती', 'देश दूत' 'हल' इत्यादि अनेक पत्रों के वह सम्पादक रहे। बाद में स्वयं अपना प्रेस खोलकर प्रयाग से 'दीदी' और 'बाल बोध' नामक पत्रिकायें निकालीं। बड़ों के लिए अनेक उपन्यास और कहानियों की पुस्तकें लिखने के अतिरिक्त बच्चों के लिए उन्होंने बड़े सुन्दर बालगीत लिखे हैं। 'पिपहरी' 'खेल घर' तथा 'बाल कवितावली' इत्यादि उनके बालगीतों के कई संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनका एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत है—

मक्खी की निगाह

कितनी बड़ी दीखती होंगी मक्खी को चीजें छोटी।
सागर-सा प्याला भर जल, पर्वत-सी एक कौर रोटी।।
खिला फूल गुलदस्ते जैसा काँटा भारी भाला-सा।
तालों का सूराख उसे होगा बैरगिया नाला-सा।।
हरे भरे मैदान की तरह होगा एक पीपल का पात।
पेड़ों के समूह-सा होगा बचा खुचा थाली का भात।।
ओस बूंद दरपण-सी होगी सरसों होगी बेल समान।
साँस मनुज की आँधी-सी करती होगी उसको हैरान।।

शम्भूदयाल सक्सेना—शम्भुदयाल सक्सेना का जन्म सन् १९०१ में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में हुआ था। अंग्रेजी शिक्षा की कोई उपाधि उन्होंने प्राप्त नहीं की। प्रारम्भ में वह इंडियन प्रेस प्रयाग में नौकर हो गए थे। सन् १९३१ में उन्होंने फर्रुखाबाद में नवयुग ग्रंथ कुटीर नाम से एक प्रकाशन संस्था स्थापित की। और इसकी एक शाखा बीकानेर में भी खोली। वहाँ उस शाखा ने इतनी उन्नति की कि वह अब राजस्थान की एक प्रमुख प्रकाशन संस्था है। 'सेनानी' नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी वह वहाँ से निकालते हैं। उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास सभी की अनेक पुस्तकें बड़ों के लिए लिखी हैं। बच्चों के लिए उनकी 'पालना', 'मधुलोरी' 'लोरी और प्रभाती' 'फूलों का गीत' 'चन्द्र लोरी', 'आरी निदिया', 'रेशम झूला', 'शिशु लोरी', 'नाचो गाओ', 'दुपहरिया के फूल', 'बाल कवितावली', आदि लगभग २० पुस्तकें प्रकशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत हम यहाँ उद्धृत करतेहैं—

खिड़की

खिड़की है मकान की आँख। लेते सभी उसी से झाँक।।
आता जब कोई इस ओर। खिड़की तब कर देती शोर।।
अगर जानना हो यह बात। कहाँ जायँगे पापा प्रात।।
तो बैठो खिड़की को खोल। देती पीट भेद का ढोल।।
माँ के मन्दिर की यदि राह। तुम्हें जानने की हो चाह।।
खिड़की में बैठो चुपचाप। बतला देगी अपने आप।।
हो सीखना बहिन का खेल। करो दौड़ खिड़की से मेल।।
लोगे सभी भेद तुम जान। तब दीदी होगी हैरान।।

"स्वर्णसहोदर"—श्री० सभा मोहन अवधिया 'स्वर्णसहोदर' का जन्म सन् १९०२ में शहपुरा जि० मंडला (म० प्र०) में हुआ था। हिन्दी मिडिल तथा नार्मल स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद वह अपने ग्राम की पाठशाला में अध्यापक हो गये थे। और वहीं ३१ वर्ष तक कार्य करने के उपरान्त सन् १९५० में प्रधानाध्यापक पद से अवकाश ग्रहण किया। बच्चों के कवियों में उनका प्रमुख स्थान है। उन्होंने बच्चों के लिए ही विशेष रूप से बहुत लिखा है। यदि उनका लिखा सब प्रकाशित हो जाये तो दर्जनों पुस्तकें हो सकती हैं। उनकी लिखी चगन मगन, गिनती के गीत, नटखट हम, हर हर बम, ललकार, लाल फाग, बाल खिलौना, वीर बालक बादल, वीर हकीकत राय, वीर शतमन्यु, बच्चों के गीत ४ भाग, हम्मीर राव आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ हम उनकी एक कविता के कुछ छन्द प्रस्तुत करते हैं—

नटखट हम हाँ, नटखट हम। करने निकले खटपट हम।।
आ गये लड़के पा गये हम। बन्दर देख लुभा गये हम।।
बन्दर को बिजकावें हम। बन्दर दौड़ा, भागे हम।।
बच गए लड़के, बच गये हम।

बर्र का छत्ता पा गये हम। बाँस उठाकर आ गए हम॥
छत्ते लगे गिराने हम। ऊधम लगे मचाने हम॥
छत्ता टूटा बर्र उड़े। आ लड़कों पर टूट पड़े॥
झटपट हटकर छिप गये हम। बच गये लड़के बच गये हम॥
बिच्छू एक पकड़ लाये। उसे छिपाकर ले आये॥
सबक जाँचने भिड़े गुरू। हमने नाटक किया शुरू॥
खोला बिच्छू चुपके से। बैठे पीछे दुबके से॥
बच गये गुरू जी खिसके हम। पिट गये लड़के बच गये हम॥
बुढ़िया निकली पहुँचे हम। लगे चिढ़ाने जम जम जम॥
बुढ़िया खीझे, डरे न हम। ऊधम करना करें न कम॥
बुढ़िया आई नाकों दम। लगी पीटने धम धम धम॥
जान बचाकर भग गये हम। पिट गये लड़के बच गये हम॥

इस काल के इन कवियों के अतिरिक्त और भी अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने बच्चों के लिए बड़े सुन्दर भावभरे गीत लिखे हैं। विस्तार भय से हम उन सब के विस्तृत परिचय यहाँ नहीं दे पा रहे हैं। पर उनके नामोल्लेख यहाँ कर देना इसलिये आवश्यक है कि जब कभी हिन्दी में बालगीत साहित्य का पूरा इतिहास लिखा जाये तो वह ध्यान से ओझल न हो जायें। उनके नाम यह हैं पं० सुदर्शनाचार्य, पं० लोचन प्रसाद पांडेय, पं० सुखराम चौबे गुणाकर, दमोदार सहायसिंह 'कवि किंकर', पं० देवीदत्त शुक्ल, श्री०आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, रामचरित उपाध्याय, गोकुल चन्द्र शर्मा, रामलोचन शर्मा 'कंटक', माखनलाल चतुर्वेदी जहर बख्श, लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी, सैयद कासिम अली, प्रो०-मणिराम गुप्त इत्यादि।

मध्य काल १९२१–१९४२

विगत प्रथम विश्व महायुद्ध सन् १९१८ में अंग्रेजों की विजय के साथ समाप्त हुआ। भारतीय जनता ने इस युद्ध में अंग्रेजों का साथ दिया था। और लोगों को यह आशा थी कि उसके बदले में अंग्रेज शासक उन्हें कुछ ऐसे राजनीतिक अधिकार देंगे जिनकी वह कामना करते थे। पर मिली निराशा। इसलिए महात्मा गांधी ने सन् १९२१ में स्वदेशी आन्दोलन चलाया जिससे सारे देश में एक नई चेतना की लहर दौड़ गई। सन् १९२३ में होने वाली जलियाँ वाले बाग की घटना ने उसे और भी बढ़ावा दे दिया। सन् १९३०–३१ में कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन चलाया। लोग नौकरी, व्यापार और पढ़ाई तक छोड़कर इस आन्दोलन में कूद पड़े। विदेशी राजनीति और दर्शन के अध्ययन से साम्यवादी विचारों का प्रभाव भी राष्ट्रीय आन्दोलनों पर पड़ने लगा था पर वह बहुत अप्रत्यक्ष था। सन् १९३७ में अंग्रेजी सरकार से समझौता हो जाने के कारण प्रान्तों में कांग्रेस की राज्य सरकारें बन जाने से स्वतन्त्र विचारों के विकास को और भी प्रोत्साहन मिला। सन् १९३९ में द्वितीय विश्व महायुद्ध छिड़ गया। कांग्रेस और उसके नेता गांधी जी ने युद्ध में अंग्रेजों को सहयोग देने से मना कर दिया। देश के शान्तिप्रिय नेता जेलों में जाने लगे और उग्र विचारों के लोग बृटिश

शासन भारतवर्ष में समाप्त कर देने के लिए लूट-मार और तोड़-फोड़ तक करने लगे। यह सब बातें सन् १९४२ की क्रान्ति के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

इन सब राजनीतिक हलचलों का प्रभाव हमारे देश के सामाजिक और साहित्यिक जीवन पर भी पड़ना सर्वथा स्वाभाविक था। कविता के क्षेत्र में जहाँ एक ओर छायावादी कविता का विकास हुआ वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीयतावादी कवितायें बहुतायत से लिखी जाने लगीं। पाश्चात्य दर्शन और राजनीति के अध्ययन से प्रभावित होकर एक नई प्रवृत्ति कविता में प्रगतिवाद के रूप में हमारे सामने आई। यह काल हिन्दी साहित्य के सर्वांगीण विकास का काल था। प्रेम चन्द, प्रसाद, पन्त, निराला, मैथिली शरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास और हरि औध जैसे सब महान कवि और लेखक हिन्दी में इसी काल में हुए और विभिन्न रूपों में साहित्य के भंडार को भरा।

बाल साहित्य के विकास की दृष्टि से भी यह काल बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। बहुत से कवियों का ध्यान उसके सृजन की ओर गया। बच्चों के लिए बहुत-सी पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगीं। इससे लोगों का ध्यान बाल साहित्य की आवश्यकता की ओर गया और उन्हें हिन्दी में बाल साहित्य का अभाव खटकने लगा था। बालोपयोगी अनेक पत्र-पत्रिकायें इस काल में प्रकाशित हुईं। सन् १९२६ में पं० लाल जी राम शर्मा ने अपने पुत्र पं० रघुनन्दन शर्मा के सम्पादकत्व में 'खिलौना' नाम का एक मासिक पत्र प्रयाग से प्रकाशित किया जो १९६० तक निकलता रह कर बन्द हो गया। सन् १९२७ में आचार्य रामलोचन शरण बिहारी ने, श्री० राम वृक्ष बेनीपुरी, श्री० शिवपूजन सहाय आदि के सहयोग से 'बालक' नामक एक मासिक पत्र पटना से निकालना प्रारम्भ किया और वह अब तक लगातार निकल रहा है। कालाकाँकर के राजा सुरेश सिंह ने सन् १९३२ में 'कुमार' नाम से एक बालोपयोगी मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। सन् १९३० में श्री० गंगा प्रसाद उपाध्याय ने कला प्रेस प्रयाग से 'चमचम' नाम से बच्चों का एक पत्र निकाला। सन् १९३१ में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'बानर' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रयाग से प्रारम्भ किया। पर वह ७ वर्ष तक निकलता रह कर बन्द हो गया। १९३३ में श्रीमती सरस्वती के सम्पादकत्त्व में 'बाल विनोद' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। वह बाद में श्री ज्योति लाल भार्गव तथा श्री दुलारे लाल भार्गव के संचालन में निकलता रह कर सन् १९४८–'४९ में बन्द हो गया। उदयपुर की विद्याभवन सोसायटी ने सन् १९३७ में 'बाल हित' नामक एक मासिक पत्र वर्त्तमान शिक्षा मन्त्री श्री० श्रीमाली जी के सम्पादन' में निकाला था। सन् १९४२ में श्री० रामकृष्ण शर्मा खद्दर जी ने एक पत्र 'हमारे बालक' देहली से निकाला। इनके अतिरिक्त और भी अनेक बालोपयोगी पत्र-पत्रिकायें इस काल में ही प्रकाशित हो होकर बन्द हो गईं।

इस काल के बालगीत भाषा की दृष्टि से पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक परिमार्जित हैं। उनके विषयों के क्षेत्र भी पहिले से अधिक विस्तृत हो गये हैं। शिक्षा और उपदेश ही इस काल के बालगीतों की रचना के मुख्य उद्देश्य नहीं रह गए। राष्ट्रीय भावना पहिले से कहीं अधिक प्रच्छन्न और सुन्दर रूप में इन बालगीतों में व्यक्त हुई है।

इस समय के कुछ प्रमुख कवि निम्नलिखित हैं—

रामसिंहासन सहाय 'मधुर'––'मधुर' जी का जन्म सन् १९०३ में सागर पाली, जि० बलिया में हुआ था। बचपन में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा ठीक से न हो सकी। फिर भी उन्होंने सन् १९२५ में मुखत्यारशिप की परीक्षा पास की और बलिया में वकालत करने लगे। सन् १९२१ के राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और तभी से उन्हें लिखने के लिए प्रेरणा मिली थी। उनके लिखे राष्ट्रीय गीत उत्सवों और जलूसों तक में गाये जाते थे। बच्चों के भी वह सिद्धहस्त कवि हैं। 'बच्चों के गीत' 'बच्चों के मधुर गीत, नाम से उनकी दो पुस्तकें भी छप चुकी हैं। यहाँ हम उनका एक बालगीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत करते हैं––

हीरा चमके, मोती चमके, चमके चाँदी सोना।
सबसे चम चम सबसे सुन्दर मेरा श्याम सलोना ॥
सूरज चमके चन्दा चमके बलिहारी बलिहारी।
काजल के टीके से चमके घर का कोना कोना ॥
चम्पा और चमेली चमकें सोन जुही सैलानी।
सबसे चम चम सबसे सुन्दर मेरी बिटिया रानी ॥
इन्द्र लोक इन्द्रानी चमके बलिहारी बलिहारी।
बिटिया की गुड़िया से चमके कुटिया में रजधानी ॥

सुभद्राकुमारी चौहान––सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म सन् १९०४ में प्रयाग में हुआ था। और शिक्षा भी प्रयाग तथा बनारस में हुई। उनका विवाह जबलपुर के सुप्रसिद्ध वकील ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान से हुआ था। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण वह सबसे पहले १७ वर्ष की आयु में जेल गईं। सन् १९४८ में मोटर दुर्घटना से उनका अकस्मात स्वर्गवास हो गया। उस समय वह एम० एल० ए० भी थीं। कविता और कहानी दोनों ही लिखने में उनकी रुचि थी। उनके 'मुकुल' नाम से कविता संग्रह और 'बिखरे मोती' नाम से कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनकी कविता 'झांसी की रानी' बहुत प्रसिद्ध हुई। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। 'कोयल' तथा 'सभा का खेल' नाम से उनकी बालोपयोगी कविताओं के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक कविता यहाँ प्रस्तुत है––

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन-सी फूल उठी वह छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
'माँ ओ' कह कर बुला रही थी मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने लाई थी ॥
मैंने पूछा–'यह क्या लाई' बोल उठी वह–'माँ काओ'।
फूल-फूल मैं उठी खुशी से, मैंने कहा–'तुम्हीं खाओ ॥'

ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'––'निर्मल' जी का जन्म सन् १९०४ में सिंह गढ़ जिला इलाहाबाद में हुआ था। उन्होंने पत्रकारिता से अपना जीवन प्रारम्भ किया और मनोरमा, भारतेन्दु, भारत, देशदूत आदि पत्रों के सम्पादक रहे। इस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मुख पत्रिका 'सम्मेलन पत्रिका' का सम्पादन कर रहे हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं जो पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो चुकी हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं––

प्यारा भारतवर्ष हमारा, दुनिया में है सबसे न्यारा।
ऊँचे पर्वत से हैं भारी, रहते सुन्दर झरने जारी ॥
बाग बगीचे नदियाँ नाले, सब का मन बहलाने वाले।
मुग्ध हुआ इस पर जग सारा, प्यारा भारत वर्ष हमारा ॥
हुए यहीं हैं कितने दानी, वीर बहादुर औ अभिमानी।
हम सब शिक्षा लेते प्रतिदिन, सुनकर जिनकी कथा कहानी ॥
जग में यश अपना विस्तारा, प्यारा भारतवर्ष हमारा ॥
सब सुख हम हैं इससे पाते, प्रतिदिन इसका ही गुण गाते।
बड़े प्रेम से बिनती करके, हम सब इसको शीश नवाते ॥
है सबकी आँखों का तारा, प्यारा भारतवर्ष हमारा ॥

बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक'––रसिक जी का जन्म सन् १९०५ में प्रयाग में हुआ था। और शिक्षा भी वहीं पर हुई। मदारी लीला आलोक, अंगूरों के गुच्छे आदि कई पत्रों के वह सम्पादक रहे। और राष्ट्र के कर्णधार, महान आत्मायें आदि कई पुस्तकें लिखीं। सन् १९३१ तथा '४२ के राष्ट्रीय आन्दोलनों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। और जेल भी गए। अब सेवा समिति विद्या मन्दिर स्कूल प्रयाग में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी कहानियाँ तथा कवितायें लिखी हैं। उनकी वीरों की कहानियाँ, परियों की कहानियाँ, साहसी ध्रुव, बीर बालक अभिमन्यु, सत्याग्रही प्रह्लाद, चतुर लोमड़ी, जादू की खुरपी, मणिमाला आदि बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक कविता का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं––

कुछ तो बतला दो तुम हमको नदी कहाँ से आती हो ?
यह पानी यह शोर और यह लहर कहाँ से लाती हो ?
हमें है अद्भुत हैरानी। कहाँ पाया इतना पानी ?
सुनता हूँ पर्वत ने तुमको पाल पोस कर बड़ा किया।
झीलों और सागरों ने है तुमको चलना सिखा दिया ॥
हमें तुम जी से भाती हो। मधुर स्वर सें क्या गाती हो ?
नदी तुम्हारी चाल हमारी नहीं समझ में है आती।
उथली हो या गहरी हो क्या कहें बुद्धि चकरा जाती ॥
न करती हो आना कानी। सभी को देती हो पानी ॥

सोहनलाल द्विवेदी––सोहनलाल द्विवेदी का जन्म सन् १९०५ में बिंदकी जिला फतहपुर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा बिंदकी और फतहपुर से समाप्त करके उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से एम० ए० एल-एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। घर से सम्पन्न होने के कारण वकालत नहीं की। उनकी राष्ट्रीय कवितायें बड़ी ओजपूर्ण होती हैं। भैरवी, वासव दत्ता, कुणाल, युगाधार, चित्रा, बासन्ती आदि उनकी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'शिशु' तथा 'बाल सखा' पत्रों के वह सम्पादक भी रहे। बच्चों के वह सिद्धहस्त

कवि है। बच्चों को देश प्रेम सिखाने वाली बहुत-सी कविताये उन्होंने लिखी हैं। **शिशु भारती, बाल भारती**, दूज बतारा, बाँसुरी, बिगुल, बच्चों के बापू, हँसो हँसाओ आदि उनकी बालोपयोगी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी एक कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

संगति का फल

खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगंध फैलाओगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से तो गन्दे बन जाओगे॥
कौये का यदि साथ करोगे तो बोलोगे कड़वे बोल।
कोयल का यदि साथ करोगे तो तुम दोगे मिसरी घोल॥
जैसा भी रंग रंगना चाहो, घोलो ले वैसा ही रंग।
अगर बड़े तुम बनना चाहो तो तुम रहो बड़ों के संग॥

विश्वप्रकाश 'कुसुम'—विश्व प्रकाश 'कुसुम' का जन्म सन् १९०७ में हुआ था। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय के पुत्र होने के कारण १३ वर्ष की आयु में ही उन्होंने प्रथमा तथा उसके दो वर्ष बाद मध्यमा परीक्षायें पास कर लीं। प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने एम-ए० एल-एल० बी० की परीक्षायें पास कीं। पर वकालत नहीं की। और साहित्य सेवा के विचार से प्रेरित होकर प्रयाग में कला प्रेस खोला। बच्चों के लिए सन् १९३० में 'चम चम' नामक एक मासिक पत्र निकाला जो १४ वर्षों तक निकलता रहने के बाद बन्द हो गया। उनकी गुल-गुल, तुरही, चन्द्र खिलौना, परी रानी, फूल कुमारी, बाल नाट्य शाला, छत्रपति शिवाजी, सिन्दबाद की कहानी, जापान की सैर आदि बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक कविता यहाँ प्रस्तुत है—

दावत ने है मन ललचाया।
क्या लोगे तुम? आलू गोभी?
क्या लोगे तुम ? आलू गोभी?
गोभी का है स्वाद बढ़ाया।
सबकी यही पुकार, आलू गोभी।
सब करते तकरार, आलू गोभी॥

जैसी गोभी वैसे आलू। आलू का है बना कचालू॥
गोभी गोभी हैं चिल्लाते। गोभी की हैं धूम मचाते॥
गोभी जैसे हो रसगुल्ला। नरम नरम खाते अबदुल्ला॥
नहीं चाहिये हमें मिठाई। आलू गोभी दे दो भाई॥

रामदेवसिंह 'कलाधर'—कलाधर जी का जन्म सन् १९०८ में घनघटा, बस्ती में हुआ था। इन्टर बी० टी० सी० तथा साहित्य रत्न परीक्षायें उन्होंने पास कीं और अध्यापक हो गए। हिन्दी, उर्दू, फारसी और बंगाली भाषायें वह जानते हैं। इस समय जूनियर हाई स्कूल घनघटा में प्रधानाध्यापक हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता यहाँ उद्धृत की जाती है—

सवेरा

सदा सबेरे ही उठ जाती। उठते ही झट मुझे जगाती॥
बड़े प्रेम से हृदय लगाती। कहती युग युग जीओ भैया।
मेरी मैया, मेरी मैया॥
हाथ पैर मुँह मेरा धोती। मुझ पिन्हाती कुर्त्ता धोती॥
देख देख मुझको खुश होती। लेती बीसों बार बलैया।
मेरी मैया, मेरी मैया॥
बढ़िया चावल रोज पकाती। अरहर की है दाल बनाती॥
देकर माखन और चपाती। झट दुहने लग जाती गैया।
मेरी मैया, मेरी मैया॥

बाबूलाल भार्गव 'कीर्त्ति'—बाबूलाल भार्गव का जन्म सन् १९०८ में गढ़ कोटा, जिला सागर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा गढ़ कोटा और सागर में प्राप्त करने के बाद उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस से बी० ए० तथा जबलपुर से बी० टी० की परीक्षायें पास कीं और म्यूनिसिपल हाई स्कूल, सागर में अध्यापक हो गए। सन् १९५८ से वहीं प्रिंसिपल हैं। मध्य प्रदेश शिक्षा विभाग की अनेक कमेटियों के वह सदस्य भी रहे। उनकी बाल कथा, मंजरी, लोमड़ी रानी, परियों का दरबार, पौराणिक कथायें, पद्य प्रसून, कला कुंज, वीर गाथायें, उज्ज्वल सितारे, इत्यादि कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। एक कविता का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

हलवाई

अम्मा से पैसे ले आओ आया है हलवाई।
धरे खोनचे में वह अपने ताजी भरी मिठाई॥
रस से भरी जलेबी लाया, लाया मोती चूर।
पैसे देकर उसको बच्चों, खाओ तुम भरपूर॥
कैसी सुन्दर टिकियाँ काटीं, बरफी खूब जमाई।
जिस जिसने लेकर यह खाई, करता बहुत बड़ाई॥
जो चाहो झट से लेलो यदि पैसे लाये साथ।
चला जायगा जल्दी फिर तो, मलना होगा हाथ॥

गौरीशंकर 'लहरी'—लहरी जी का जन्म सन् १९०९ में सागर में हुआ था। छिन्दवाड़ा में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। और जबलपुर में अध्यापक हो गए। अब मध्य प्रदेश के सूचना विभाग में कार्य कर रहे हैं। 'तितली के पंख' नाम से उनकी बालोपयोगी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो चुका है। उनकी एक बालोपयोगी कविता यहाँ प्रस्तुत है—

बीज बहादुर

बोली हवा बीज से उस दिन चलो घूमने मेरे साथ।
दूर दूर के देश दिखाऊँ जाने क्या लग जाये हाथ॥
बीज आ गया इन बातों में खुश हो घर से निकल पड़ा।
गया नहीं था बहुत दूर तब मिट्टी ने उसको पकड़ा॥

मिट्टी कहने लगी–'कहाँ तुम सोच समझे बिना चले।
यहाँ रहो कुछ दिनों साथ में अंग अंग से हिले मिले॥'
हवा बह गई अपनी धुन में बीज रह गया वहीं खड़ा।
मिट्टी के भीतर जा बैठा, नभ में बादल देख बड़ा॥
मिट्टी ने बातों बातों में उसका सब कुछ जान लिया।
धीरे धीरे उसको अपने घर का भाई मान लिया॥
लेकिन कुछ काँटे कीड़े थे उसको दुख देते हर दिन।
बीज निडर लड़ता रहता था उन सबसे रखकर खुश मन॥
आगी पानी ओले आये, बीज न कुछ भी कर पाया।
मिट्टी के भीतर से उसका अंकुर ऊपर उठ आया॥
बीज बहादुर बढ़ने वाला नहीं किसी का उसको डर।
अपनी ताकत से बढ़ता वह नये नये अंकुर बनकर॥

रमापति शुक्ल––रमापति शुक्ल का जन्म सन् १९११ में ग्राम नारायणपुर जिला गोरखपुर में हुआ था। थ्योसोफिकल नेशनल स्कूल तथा हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने हिन्दी तथा अर्थशास्त्र में एम० ए० तथा बी० टी० की परीक्षायें पास कीं। कुछ काल तक विद्याभवन उदयपुर में अध्यापक रहे। उसके पश्चात् बीसेंट कालिज बनारस में अध्यापक हो गए। अब विश्वविद्यालय बनारस के टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में प्राध्यापक हैं। बाल मनोविज्ञान के वह अच्छे ज्ञाता हैं। और बच्चों के लिए कवितायें लिखने में विशेष रुचि रखते हैं। 'अंगूरों का गुच्छा' और 'हुआ सबेरा' शैशव, राष्ट्र के बापू नाम से उनकी बालोपयोगी कविताओं के चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ हम उनकी एक कविता प्रस्तुत करते हैं––

आलपीन के सिर होता पर बाल न होता उसके एक।
कुर्सी के दो टाँगें हैं पर दूर नहीं सकती है फेंक॥
कंघी के हैं दाँत मगर वह चबा नहीं सकती खाना।
गला सुराही का है पतला किन्तु न गा सकती गाना॥
जूते के हैं जीभ मगर वह स्वाद नहीं चख सकता है।
आँखें रखते हुए नारियल कभी न कुछ लख सकता है॥
है मनुष्य के पास सभी कुछ ले सकता है सबसे काम।
इसी लिए सबसे बढ़कर वह दुनिया में पाता है नाम॥

त्रिभुवननाथ 'नाथ'––त्रिभुवन नाथ 'नाथ' का जन्म सन् १९१० में ग्राम कल्याणपुर जिला शाहाबाद बिहार में हुआ था। उन्होंने बी० एन० कालिज, पटना से बी० ए० पास किया। अब चक्रधरपुर बिहार में अध्यापक हैं। बच्चों के लिए कवितायें लिखने में उनकी रुचि रही है। उनकी एक कविता है––

कब चींटी किससे कहती है दाना पानी लाओ।
कब चिड़ियाँ किससे कहती हैं नाज मुझे दे जाओ॥
कहाँ चाकरी अजगर करता किसका भरता पानी।
बादल किससे कब कहता है लाओ भरकर पानी॥

कीट पतंग मकोड़े अनगिन किस पर निर्भर करते।
लाकर दे वो भोजन जिससे जीव बनों के रहते॥
श्रम का भोजन सब करते हैं नहीं भरोसा पर का।
अपने पर ही निर्भर रहना, यही काम है नर का॥

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'––देवीदयाल चतुर्वेदी का जन्म सन् १९११ में जिला सागर में हुआ था। जबलपुर में रह कर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। सरस्वती, बाल सखा, मंजरी आदि कई पत्रिकाओं के वे सम्पादक रहे। उनकी कई उपन्यास, कहानी और कविताओं की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत-सी कहानियाँ और कवितायें लिखी हैं। उनकी मीठी तानें, झिलमिल तारे, मीठे गीत, हवा महल, सोने की वर्षा, शेर का शिकारी और आल्हा ऊदल आदि कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक कविता यहाँ प्रस्तुत की जाती है––

टन टन टन टन घंटा बजता शाला को हम जाते हैं।
वहाँ पहुँच कर पंडित जी को हम सब शीश झुकाते हैं॥
अच्छी अच्छी बातें हमको पंडित जी बतलाते हैं।
रोज कहानी गीत बहुत से वह हमको सिखलाते हैं॥
माता पिता बड़ों की सेवा करना हमें सिखाते हैं।
गांधी वीर जवाहर का वह बचपन हमें सुनाते हैं॥
छोटे थे तब गांधी बाबा भी तो शाला जाते थे।
हम जैसे ही पढ़ते लिखते. ऊधम बहुत मचाते थे॥
पढ़ लिखकर ये भारत को अब सेवा भाव सिखाते हैं।
इसी लिये तो ईश्वर जैसे घर घर पूजे जाते हैं॥

आरसीप्रसाद सिंह––आरसी प्रसाद सिंह का जन्म सन् १९११ में दरभंगा, बिहार में हुआ था। उन्होंने इन्टर तक शिक्षा प्राप्त की। पहिले वह मुंगेर में एक कालिज में अध्यापक थे अब आकाशवाणी लखनऊ में काम करते हैं। बड़ों के लिए उनकी आरसी, कलापी, पाँचजन्य, आँधी के पत्ते आदि कई कविता पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए भी उन्होंने सुन्दर कवितायें लिखी हैं। 'चन्दा मामा' चित्रों में लोरियां' नाम से उनके बालगीतों के संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ हम उनकी एक कविता का कुछ अंश उद्धृत करते हैं––

अखाड़ा

बहुत मशहूर दुनिया में हमारा यह अखाड़ा है।
भयंकर भीम भी आकर यहाँ पढ़ता पहाड़ा है॥
बहादुर वीर रुस्तम से यहाँ सुहराब लड़ता है।
यहाँ बलवान गामा से जिविस्को भी पछड़ता है॥
सितारे हिन्द है कोई यहाँ बनराज है कोई।
हिरण पर शेर है कोई बया पर बाज है कोई॥
यहाँ खरगोश ने धर कर शिकारी को पछाड़ा है।
बहुत मशहूर दुनिया में हमारा यह अखाड़ा है॥

रामेश्वरदयाल दुबे—रामेश्वरदयाल दुबे का जन्म सन् १९११ में हिन्दूपुर जिला मैनपुरी में हुआ था। उन्होंने एम० ए० साहित्य रत्न तक शिक्षा प्राप्त की। ६ वर्ष तक उत्तर प्रदेश में अध्यापन कार्य करते रहने के उपरान्त वह बापू के आकर्षण से वर्धा चले गए और सन् १९३६ से राष्ट्र भाषा प्रचार समिति में काम कर रहे हैं। वर्धा में वह आर्टस कालिज में अध्यापक भी रहे। बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य लिखने में उनकी विशेष रुचि है। उनकी बाल भारती, भारत के लाल, गुलदस्ता मां यह कौन, आलू चना आदि बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ हम उनकी एक कविता प्रस्तुत करते हैं—

क्या कहा कठिन है काम

क्या कहा कठिन है काम कभी ऐसा मत बोलो तुम।
कर सकते हो हर काम शक्ति अपनी तो तोलो तुम॥
यदि कठिन नहीं है काम भला उसका फिर करना क्या ?
जिसको मंजिल तक जाना है उसको फिर डरना क्या ?
श्रम करते ही रहने से हर मुश्किल हल होती है।
डूबे बिन सागर तल में मिलता किसको मोती है॥
इसलिए कमर कस भाई स्वागत कर कठिनाई का।
जूझा जो हँस कर लाल वही है अपनी माई का॥
कायर ही कठिनाई का रोना ले रुक जाते हैं।
वीरों के चरणों पर आकर पर्वत झुक जाते हैं॥

अब्दुलरहमान सागरी—सागरी जी का जन्म सन् १९११ में ग्राम गढ़ कोटा जिला सागर में हुआ था। हिन्दी मिडिल तथा नार्मल पास करने के बाद वह सागर नगरपालिका की एक प्राथमिक शाला में अध्यापक हो गये थे। हिन्दी और उर्दू दोनों ही पर उनका समान अधिकार था और दोनों में ही वह काव्य रचना करते थे। चित्र कला में भी उनकी रुचि और गति थी। बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। मोतियों की माला नाम से उनके बालगीतों का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। सन् १९४५ में तपेदिक रोग के कारण उनका स्वर्गवास हो गया। यहाँ हम उनकी एक बालोपयोगी कविता प्रस्तुत करते हैं—

जागो और जगाओ

बीत चुकीं आलस की घड़ियाँ,
जाग उठीं अब सारी चिड़ियाँ।
जागे फूल खिलीं अब कलियाँ॥
तुम भी जागो आओ। जागो और जगाओ।
जाग रहा है कोना कोना,
फिर अपना यह कैसा सोना।
क्या सोकर है सब कुछ खोना॥
उठो होश में आओ। जागो और जगाओ।

जागे तुर्क उठे जापानी,
संभल चुके हैं अब ईरानी।
तुमको है कैसी हैरानी॥
आगे कदम बढ़ाओ। जागो और जगाओ।

सुमित्राकुमारी सिनहा—सुमित्राकुमारी सिनहा का जन्म सन् १९१५ में हुआ था। उन्नाव के सुप्रसिद्ध समाज सेवी श्री० राजेन्द्र शंकर चौधरी से उनका विवाह हुआ। अतएव वह समाज सेवा के कार्यों में सदैव अग्रसर रहीं। और उन्नाव म्यूनिसिपल बोर्ड की सदस्या भी रहीं। उनकी कहानी और कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए लिखने में भी उनकी रुचि है। आंगन का फूल, दादी का मटका, कथा कुंज आदि उनकी कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

सहगान

हम मन मोहन, हम गोपाल, नाचें सब मिल देकर ताल।
ता-ता थैया, ता-ता थैया॥
खिलती हैं बागों में कलियाँ, गमक रहीं फूलों की डलियाँ।
चलो मनायें हम रंग रलियाँ, देश हमारा ब्रज की गलियाँ॥
हम मन मोहन, हम गोपाल, नाचें सब मिल देकर ताल।
ता-ता थैया, ता-ता थैया॥
हम बलदाऊ हमीं कन्हैया, हम ग्वाले हैं हमीं चरैया।
हम राधा हैं रास रचैया, बंसी बजे कदम की छैया॥
नव भारत के हम हैं लाल, देश हमी से है खुशहाल।
ता-ता थैया, ता-ता थैया॥

शकुन्तला सिरोठिया—शकुन्तला जी का जन्म सन् १९१५ में कोटा, राजस्थान में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अधिकतर इलाहाबाद में हुई। उसके उपरान्त अध्यापन कार्य के साथ-साथ उन्होंने बी० ए० और फिर एम०ए० की परीक्षायें पास कीं। अध्यापन कार्य के सिलसिलेमें वह बाँदा, अलीगढ़, मुरादाबाद, मंडला (म० प्र०) बिलासपुर (म० प्र०) आदि स्थानों पर रहीं। सन् १९५३ से राजकीय महिला शिशु प्रशिक्षण केन्द्र प्रयाग में अध्यापन कार्य कर रही हैं। उनके बड़ों के लिए लिखी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित, हो चुके हैं। बच्चों के लिए लिखने में उनकी विशेष रुचि है। काँटों में फूल, गा ले मुन्ना, चटकीले फूल, गीतों भरी कहानियाँ, आ री निंदिया, नन्हीं चिड़िया, कारे मेघा आदि उनकी कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उन्होंने लोरियाँ भी बहुत सुन्दर लिखी हैं। एक लोरी हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

चाँदनी की चादर उढ़ाऊँ तुझे मोहना।
सो जा मेरे लालना॥
सूरज भी सो गया पंथ सभी सो गये।
डालों की गोदी में फूल सभी खो गये॥

तू भी चुप सो जा झुलाऊँ तुझे पालना।
सो जा मेरे मोहना, सो जा मेरे लालना॥
चिड़ियाँ भी सो गई चिरौटे भी सो गये।
गोदी में छिप उनके मुन्ने चुप हो गये॥
तू भी चुप सो जा, जा सपनों से खेलना।
सो जा मेरे मोहना, सो जा मेरे लालना॥

रामावतार यादव 'शक्र'—रामावतार यादव 'शक्र' का जन्म सन् १९१५ में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ था। बच्चों के लिए उन्होंने सुन्दर कवितायें और कहानियाँ लिखी हैं। उनकी गधा से आदमी, साँप की सवारी, लम्बी दाढ़ी, कानूनी मल, बचनू पांडे वीर बेटियाँ, अमर शहीद आदि अनेक बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक कविता यहाँ प्रस्तुत हैं—

गुलाब

**चारों ओर घिरे हैं काँटे फिर भी वह गुलाब का फूल।
खिल खिल कर हँस रहा गर्व से देख रहे सब के सब शूल॥
मलय पवन को पास बुलाकर देता निज सुगंध का दान।
कभी नहीं वह दुखी दीखता, सुनता भौरों के मृदु गान॥
इसी तरह चाहिए तुम्हें भी कभी नहीं करना मुख म्लान।
लाखों संकट रहें घेर कर फिर भी हो मुख पर मुस्कान॥**

सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ—सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ का जन्म सन् १९१५ में ग्राम पाढ़म जिला मैनपुरी में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पाढ़म में ही हुई। उसके बाद शिकोहाबाद से मैट्रिक और आगरा से इन्टर पास किया। फिर निजी तौर से अध्ययन करते हुए एम० ए० और उसके बाद एल-एल० बी० की परीक्षायें पास कीं। पाढ़म में ही एक हाई स्कूल उन्होंने इस विचार से खोला था कि उसे वह किसी दिन विश्वविद्यालय का रूप दे सकें। पर सन् १९४९ में चेचक रोग से अकस्मात उनका स्वर्गवास हो गया। बच्चों के लिए वह बहुत सुन्दर कवितायें लिखते थे। पर उनका कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। उनकी एक कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

मैं गोरी तुम काले

**मेरे गोरे गोरे प्यारे, हाथ पैर हैं बुरे तुम्हारे।
अरे तुम्हारी छोटी छोटी, कैसी लम्बी मेरी चोटी॥
मोती गुछे निराले॥
तुम काले मैं गोरी भैया, मैं गोरी तुम काले॥
बाबू जी ने तुमको ला दी, टोपी कुरता धोती सादी।
मेरे कपड़े रंग कर सारे, लेकर सलमें और सितारे॥
बीबी फूल निकाले॥**

**तुम काले मैं गोरी भैया, मैं गोरी तुम काले॥
काले होकर रोब जमाना, आता है तुमको बहकाना।
बातों में बहलाना चाहो, काले हो कहलाना चाहो
इस घर के उजियाले?
तुम काले मैं गोरी भैया, मैं गोरी तुम काले॥
नहीं तुम्हारा रंग बदलेगा, माँ का नहीं उपाय चलेगा।
मीठा मीठा दूध पिलाकर, सेब सन्तरे खूब खिलाकर॥
कितना ही माँ, पाले॥
तुम काले मैं गोरी भैया, मैं गोरी तुम काले॥**

प्रह्लादनारायण रायजादा—प्रह्लादनारायण रायजादा का जन्म अब से लगभग ४७ वर्ष पूर्व अलवर में हुआ था। उन्होंने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की और एल० टी० की परीक्षा भी पास की। तब से वह राजस्थान के विभिन्न स्कूलों में अध्यापक और प्रधानाध्यापक रहे। इस समय जोधपुर के एक हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक हैं। गद्य और पद्य दोनों में ही वह बच्चों के लिए सुन्दर रचनायें करते हैं। उनकी कई पुस्तकें पाठ्य पुस्तक के रूप में भी निर्धारित रही हैं। यहाँ हम उनकी एक कविता प्रस्तुत करते हैं—

सवेरा

**पूरब में है लाली छाई। सूरज निकला मेरे भाई॥
चिड़ियों ने तज दिया बसेरा। उठो बालकों हुआ सबेरा॥
पक्षी हैं सब मंगल गाते। उड़ उड़कर यह कहते जाते॥
तुमको क्यों आलस ने घेरा। उठो बालकों हुआ सबेरा॥
तारे सारे छिपते जाते। चमगादड़ यह कहते जाते॥
हुआ उजाला गया अँधेरा। उठो बालकों हुआ सबेरा॥
बड़े सबेरे अगर उठोगे। दुनिया में नित सुखी रहोगे॥
कहता है यह सच मन मेरा। उठो बालकों हुआ सबेरा॥**

इस काल में इन उपरियुक्त कवियों के अतिरिक्त डा० राम कुमार वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय 'बच्चन', वीरेश्वर सिंह, विद्याभास्कर शुक्ल, अनन्त राम तिलवार, टीकाराम सिंह 'अंशु माली,' लक्ष्मीकान्त झा. विक्रमादित्य सिंह 'विक्रम' विद्यावती कोकिल, शंकर देव विद्यालंकार, रामाशंकर जैतली, नरेन्द्र मालवीय, शिक्षार्थी, नर्मदा प्रसाद खरे, रामेश्वर प्रसाद गुरु 'कुमार हृदय', राल गोपाल 'रुद्र,' कमला चौधरी आदि और भी बहुत से कवियों ने बच्चों के लिए सुन्दर तथा उपयोगी कवितायें लिखीं। इनमें से कई कवियों की कवितायें पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। बहुत से कवियों की तो पुस्तकें भी अच्छे प्रकाशन के अभाव में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकीं। इनमें से कई की लिखी कविताओं की पांडु लिपियाँ अभी उपलब्ध हो सकती हैं। यदि किसी संस्था के द्वारा उन्हें एकत्रित कर किसी संग्रहालय में सुरक्षित कर लिया जाये तो अच्छा हो।

आधुनिक काल
(१९४२—१९६२)

सन् १९३९ में प्रारम्भ हुए द्वितीय विश्व महायुद्ध ने हमारे देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन को झकझोर कर उसमें बहुत से परिवर्त्तन ला दिये थे। सन् १९४२ का विद्रोह जिसे राष्ट्र के बड़े नेताओं का व्यक्त रूप से समर्थन प्राप्त नहीं था बृटिश सरकार को उखाड़ फेंकने में समर्थ नहीं हो सका। सन् १९४५ में अणु बम के विस्फोट से जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पल भर में जल भुन कर नष्ट हो गए। युद्ध को समाप्त घोषित कर दिया गया। इसी समय भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने की चर्चा छिड़ी। जेलों में बन्द नेता स्वतन्त्र हुए। सन् १९४७ में हमारे देश को स्वतन्त्रता मिली और पाकिस्तान एक अलग देश बन गया। कांग्रेस की राष्ट्रीय सरकार कायम हुई। देश का नया विधान बना। सदियों की गुलामी के भार से मुक्त होकर देश की जनता में नई चेतना और जागृति की लहर फैल गई। जन-जन को जनमत का अधिकार मिला। राजा महाराजाओं के देशी राज्य समझौते के आधार पर राष्ट्र में विलीन कर दिए गए। जमींदारी प्रथा नष्ट हुई। पंचायत राज्य कायम किये गए। पंचवर्षीय योजना और विकास खंडों द्वारा देश की कृषि सम्बन्धी और औद्योगिक उन्नति की दिशा में हमारा देश अग्रसर होने लगा। प्रचार और प्रसार के साधन भी जनता को प्राप्त हुए।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद एक धक्का-सा लगा। प्राप्त करने के आवेश में जितना सुन्दर राष्ट्रीय साहित्य लिखा गया वह प्राप्त कर लेने के बाद प्राप्ति के गुण गान करने में उतना सुन्दर नहीं लिखा जा सका। छायावादी कविता धारा यथार्थ की चट्टानों से टकरा कर छिन्न-भिन्न हो गई। प्रगतिवाद को भी विदेशी दर्शन से प्रभावित होने के कारण पनपने का अधिक अवसर नहीं मिला और उसे पीछे ढकेल कर प्रतीक और प्रयोगवाद ने स्थान ले लिया। कुछ नये कवियों ने गीतों की ऐसी धारा प्रवाहित की कि सब कुछ प्रेम की तरल तरंगों में बहता हुआ दिखाई देने लगा। बालगीतों के विकास के लिए यह समय बहुत उपयुक्त था। उसके अभाव को दूर करने के लिए अनेक नये कवि मैदान में आये। शिक्षा के विस्तार ओर सभी राज्यों में निरक्षरता को समाप्त कर देने के निश्चय ने चिर उपेक्षित बाल साहित्य का भंडार भरने के लिए और भी प्रोत्साहित किया उसके प्रसार और प्रचार के साधनों में भी अभिवृद्धि हुई। रेडियो पर बाल साहित्य की रचनायें प्रसारित होने लगीं। केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने पुरस्कार दे देकर बाल साहित्य के सृजन को प्रोत्साहन दिया। प्रकाशक भी इस कार्य में पीछे नहीं रहे।

बच्चों की अनेक पत्र-पत्रिकायें इस काल में प्रकाशित हुईं। ग्वालियर से कुमार (१९४४) इलाहाबाद से लल्ला, बाल बोध तथा शेर बच्चा (१९४४) और बाल भारती तथा मनमोहन (१९४८), जोधपुर से झरना (१९४७) दिल्ली से बाल भारती (१९४७) तथा राजा भैया, कानपुर से बाल सेवा (१९४७), पटना से किशोर (१९४८) तथा चुन्नू मुन्नू, लखनऊ से होनहार (१९४४) भारती (१९४७) तथा बाल शिक्षा (१९६२) बनारस से जीवन शिक्षा तथा राजा बेटा (१९६०) जमशेदपुर से खिलौना (१९५०), मद्रास से चन्दा मामा तथा बम्बई से पराग बालोपयोगी मासिक पत्रों का प्रकाशन इसी काल में प्रारम्भ

हुआ। इनके अतिरिक्त हिन्दी के आज, संसार, भारत, नव भारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, नवजीवन, स्वतन्त्र भारत आदि दैनिक पत्रों ने भी बालोपयोगी साहित्य को अपने साप्ताहिक संस्करणों में स्थान देना प्रारम्भ किया। हिन्दुस्तान साप्ताहिक तथा धर्म युग और उनकी देखा-देखी और भी साप्ताहिक तथा बहुत से मासिक पत्रों ने बाल स्तम्भ को स्थान दिया। बच्चों के लिए निकलने वाले उपरियुक्त पत्रों में से बहुत से तो कुछ दिन निकल कर बन्द हो गए। कुछ लगातार निकल रहे हैं। प्रचार की दृष्टि से चन्दा मामा, पराग, बाल सखा, बालक और मनमोहन इस समय बच्चों के मुख्य पत्र हैं। पर यह कहना कठिन है कि वह सब अलग-अलग या मिल कर भी बच्चों की साहित्यिक भूख को शान्त कर सकने में समर्थ हो पा रहे हैं। बाल साहित्य को आयु वर्गों की दृष्टि से विभाजित करके ठीक से प्रकाशित करने की ओर उन पत्रों का ध्यान अभी नहीं गया है। और उनमें जो रचनायें छपती हैं वह सब बच्चों के लिए उपयुक्त ही होती हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए अलग से कोई भी उपयुक्त पत्र नहीं है और न बच्चों के लिए कोई साप्ताहिक पत्र निकालने का प्रयास किसी ने किया है। सन १९६४ से 'नन्दन' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी दिल्ली से प्रारम्भ हुआ है।

जो बालगीत इस काल में लिखे गए उनमें से कुछ तो पहिले के लिखे बाल-गीतों की छाया मात्र हैं। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित बाल गीत भी बहुत से लिखे गए पर उनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप का समुचित विकास नहीं हुआ। इससे पूर्व दोनों कालों में लिखे गए राष्ट्रीय बालगीत अधिक हृदयग्राही है। बालगीतों के भाव क्षेत्र का विकास इस काल में अवश्य हुआ। चाचा नेहरू और बापू आदि के जीवनादर्शों से प्रेरित बालगीत ही नहीं लिखे गए बल्कि सागर, राकेट, कलकत्ता जैसे असाधारण विषयों पर भी लिखे हुए बालगीत अब मिल सकते हैं। प्रयाण गीत, लोरियाँ और प्रभातियाँ भी इस काल में बहुत लिखी गईं।

भाषा शैली की दृष्टि से इस काल में बालगीत साहित्य ने बहुत विकास किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह बच्चों के मन के अधिक पास और उनकी भावनाओं और कल्पनाओं के अपेक्षाकृत अधिक निकट हैं। बड़ों की कविताओं की देखा-देखी अतुकान्त छन्द में भी इधर कुछ वर्षों से बच्चों के लिए कविताएँ लिखी जाने लगी हैं। यह प्रयोग कहाँ तक सफल होगा इसका निर्णय भविष्य ही करेगा।

इस काल में बच्चों के प्रमुख कवि यह हैं—

रामकृष्ण शर्मा खद्दर जी—आदत से खद्दर पहनने के कारण छोटे बच्चे उन्हें खद्दर जी कहने लगे थे इसलिए उन्होंने अपना उपनाम ही खद्दर जी रख लिया। इनका जन्म सन् १९१६ में दिल्ली में हुआ था। इन्होंने इंटर तक शिक्षा प्राप्त की। उनका सारा जीवन ही बाल शिक्षण संस्थाओं को खोलने और चलाने में बीता। दिल्ली में उन्होंने बालभारती, हैप्पी स्कूल तथा बाल प्रशिक्षण केन्द्र, और अलवर में बाल मन्दिर नाम से बच्चों के स्कूल खोल कर चलाये। कुछ दिनों मसूरी की बालभारती नामक संस्था में भी काम किया। सन् १९५६ से बिरला बाल मन्दिर पिलानी में मुख्याध्यापक है। दिल्ली से वह 'हमारे बालक' नाम से एक मासिक पत्र भी निकालते थे जो ६ वर्ष निकलता रहने के उपरान्त बन्द हो गया। बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए बालगीत लिखने में वह बहुत सफल हुए हैं। उनके दो छोटे बालगीत यहाँ प्रस्तुत हैं—

छः साल की छोकरी। भरकर लाई टोकरी॥
टोकरी में आम हैं। नहीं बताती दाम है॥
दिखा दिखाकर टोकरी। हमें बुलाती छोकरी॥
हमको देती आम है। नहीं बताती नाम है॥
नाम नहीं अब पूछना। हमें आम है चूसना॥
छुट्टी हुई खेल की। चढ़ी कढ़ाई तेल की॥
सुर सुर उठता बुल बुला। छुन छुन सिकता गुल गुला॥
भूरा भूरा पुल पुला। बड़े मजे का गुल गुला॥
भुल भुला और पुल पुला। मीठा मीठा गुल गुला॥

द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी—माहेश्वरी जी का जन्म सन् १९१७ में रोहना जिला आगरा में हुआ था। आगरा से एम०ए०करने के बाद उन्होंने एल०टी० पास किया। और उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग में अध्यापक हो गए। शिक्षा विभाग की ओर से निकलने वाली 'नव ज्योति' मासिक पत्रिका का सम्पादन उन्होंने किया और शिक्षा प्रसार अधिकारी भी रहे। इस समय वह उसी विभाग में पाठ्य पुस्तक अधिकारी हैं। बच्चों के लिए उनकी लहरें, माखन मिसरी, बढ़ेचलो, फूल और शूल, कातो गाओ, बुद्धिबड़ी या बल, यह मित्रता आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

हम बाल हैं, गोपाल हैं, हम हिन्द की सन्तान हैं।
पढ़ने चलो, बढ़ने चलो, गाने चले गुणगान हैं॥
जो हैं बड़े, आगे बढ़े, उनका करें सम्मान हम।
हम वीर हैं, रणधीर हैं, चलते लिए मुस्कान हम॥
रुकते नहीं, झुकते नहीं, हिम धार हिम चट्टान हैं।
निज देश पर, निज वेष पर करते निछावर प्राण हैं॥
हम कर रहे, हम भर रहे निज देश में धनधान हैं॥

डा० सुधीन्द्र—डा० ब्रह्म दत्त मिश्र 'सुधीन्द्र' का जन्म सन् १९१७ में खैराबाद, कोटा राज्य में हुआ था। उन्होंने निरन्तर अपनी निर्धनता से संघर्ष करते हुए एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। और बनस्थली विद्यापीठ जयपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो गए। राजपूताना विश्वविद्यालय से उन्होंने 'हिन्दी कविता में युगान्तर' विषय पर पी-एच० डी० किया। और उसके उपरान्त बलवन्त राजपूत कालिज आगरा में प्रोफेसर हो गए। उनके कई कविता संग्रह और आलोचना विषयक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए भी उन्होंने एक पुस्तक 'मेरे गीत' लिखी है। उसी का एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत है—

पोथी मेरी, पोथी मेरी।

इसके पन्ने पन्ने में है लगी हुई विद्या की ढेरी।
इसमें हैं तसवीरें सुन्दर, सिंह मगर पंछी नर बन्दर।
अरे कहें क्या बड़े बड़े हैं भरे तमाशे इसके अन्दर॥
इसके पन्ने पन्ने में है लगी हुई विद्या की ढेरी।

नये नये यह पाठ सिखाती, मनमें विद्या भरती जाती।
कलसे आज आज से कल यह हमको गुणी बनाती जाती॥
इसके पन्ने पन्ने में है लगी हुई विद्या की ढेरी॥

शिवदत्त शर्मा—शिवदत्त शर्मा का जन्म सन् १९१८ में भरतपुर राज्य के नगर नामक कस्बे में हुआ था। आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। इस समय वह गंगा नगर बीकानेर में प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी सुन्दर कवितायें लिखी हैं। एक यहाँ प्रस्तुत है—

धरती तेरी ही गोदी पर खेल कूद हम बड़े हुए।
तेरी मिट्टी से बल पाकर ही पैरों पर खड़े हुए॥
अन्न फूल फल दूध और घी हमने तुझसे ही पाये।
तेरे ही पानी को पीकर हमने पर्वत तक ढाये॥
कैसे फिर तेरी छाती पर सहन करें अत्याचारी।
टूट पड़ेंगे वज्र सरीखे हम तो हैं इतने भारी॥

ब्रजकिशोर 'नारायण'—ब्रजकिशोर 'नारायण' का जन्म सन् १९१९ में ग्राम बड़इला जिला चम्पारन में हुआ था। ८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने पहिली कविता लिखी और तभी से लोग हंसी में उन्हें कवि जी कहने लगे थे। उनका जीवन एक पत्रकार के रूप में प्रारम्भ हुआ। सन् १९४१ में वह पंजाब की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका शान्ति के सम्पादक हुए। उसके उपरान्त हिन्दी मिलाप, हिन्दुस्तान, लोकमान्य इत्यादि अनेक पत्रों के वह सम्पादक रहे। और इस समय बिहार राज्य सरकार के समाज शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रकाशित 'जन जीवन' पत्र के सम्पादक हैं। बड़ों के लिए कविता, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, व्यंग आदि सभी कुछ उन्होंने लिखे हैं। बच्चों के लिए उनकी लिखी आरी निंदिया, हँसी खुशी, गोल गपोड़े, ताक धिना धिन, पेटू पाँडे आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक लोरी हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

मेरी बिटिया सो जा, सो जा।
कुत्ता तबला बजा रहा है नाच रही है बिल्ली।
कुत्ता जायेगा कलकत्ता, बिल्ली जाये दिल्ली॥
घोड़ा बाबू ढोल बजायें, बछड़ा जी सारंगी।
बन्दर बाबू काम न करते, खाते हैं नारंगी॥
मेरी बिटिया सो जा सो जा।

निरंकारदेव सेवक—स्वयं अपने विषय में क्या कहूँ। पर नहीं कहता हूँ तो इतिहास मुझे पीछे छोड़ कर आगे बढ़ जायेगा। इसलिए मेरा जन्म सन् १९१९ में बरेली उत्तर प्रदेश में हुआ था। वहीं शिक्षा पाकर एम० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षायें पास कीं। बनारस से बी० टी० और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य रत्न परीक्षा भी पास की। प्रारम्भ में अध्यापक रहा और अब वकालत कर रहा हूँ। बड़ों के लिए मेरी कलरव, स्वस्तिका, चिनगारी, जनगीत, वीरों के गीत और बच्चों के लिए मुन्ना के गीत, धूप छाया, चाचा नेहरू के गीत, दूध जलेबी, माखन मिसरी, रिमझिम, फूलों के गीत, पंच तन्त्री, मटर

के दाने, टेसू के गीत, महापुरुष के गीत, हाफ़िज का सपना, शेखर के बालगीत, पप्पू के बालगीत, ईसप की गीत कथायें २ भाग फ्रांस, की कहानियाँ, रूस की कहानियाँ, जर्मनी की कहानियाँ, जापान की कहानियाँ आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। एक बालगीत है—

अगर मगर

अगर मगर दो भाई थे। लड़ते खूब लड़ाई थे॥
अगर मगर से छोटा था। मगर मगर से खोटा था॥
अगर मगर कुछ कहता था। मगर नहीं चुप रहता था॥
बोल बीच में पड़ता था। और अगर से लड़ता था॥
अगर एक दिन झल्लाया। गुस्से में भर कर आया॥
और मगर पर टूट पड़ा। हुई खूब गुत्थम गुत्था॥
छिड़ी महाभारत भारी। गिरीं मेज कुर्सी सारी॥
माँ यह सुनकर घबराई। बेलन ले बाहर आई॥
दोनों के दो दो जड़कर। अलग दिये कर अगर मगर॥
खबरदार जो कभी लड़े। बन्द करो यह सब झगड़े॥
एक ओर था अगर पड़ा। मगर दूसरी ओर खड़ा॥

शान्ति अग्रवाल—श्रीमती शान्ति अग्रवाल का जन्म सन् १९२० में बरेली (उ० प्र०) में हुआ था। पहिले पिता और फिर पति के घर पर अध्ययन करके उन्होंने एम० ए० साहित्य रत्न तक शिक्षा प्राप्त की। उनके पति श्री० विश्वम्भर नाथ अग्रवाल राजकीय इन्टर कालिज बरेली में इतिहास के प्राध्यापक हैं। बड़ों के लिए शान्ति जी की स्वतन्त्रता संग्राम और गौरव गाथा नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बच्चों के लिए उनके बालगीतों के दो संग्रह 'बाल वीणा' 'जागा हिन्दुस्तान' नाम से प्रकाशित हुए है। उनका एक बालगीत हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

अभी खबर लन्दन से आई। मक्खी रानी उसको लाई॥
भुनगे ने हाथी को मारा। भुनगा क्या करता बेचारा॥
घुस बैठा मटके के अन्दर। मटके में थे ढाई बन्दर॥
उन्हें देखकर हाथी रोया। रोते रोते ही वह सोया॥
रुकी न पर आँसू की धारा। मटका बना समुन्दर खारा॥
लगे डूबने हाथी बन्दर। तब तक आया एक कलन्दर॥
पर वह उनको पकड़ न पाया। उसने फौरन ढोल बजाया॥
उसको सुन कर आया मच्छर। लात जमाई उसने कसकर॥
मटका फूटा बहा समन्दर। निकल पड़े सब हाथी बन्दर॥
उन्हें बिठा अपने पंखों पर। आता है भारत को मच्छर॥
करती हैं फौजें सरकारी। उनके स्वागत की तैयारी॥

बन्धुरत्न—भैया लाल सिंह 'बन्धुरत्न' का जन्म सन् १९२० में कोरौता, वाराणसी में हुआ था। वह 'संसार' दैनिक, नया हिन्दुस्तान साप्ताहिक तथा शिक्षण-संसार मासिक में सहायक सम्पादक रह चुके हैं। अब हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के पाकेट बुक विभाग के व्यवस्थापक हैं। उनकी कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। उनका एक बालगीत है—

आई चिड़िया वाले आई, आई चिड़िया वाले आई।
लिए चोंच में अपने दाना, चूं चूं करती चिड़िया आई॥
दाना आया, पानी आया, माटी से मिल बीज उगाया।
धरमें जड़ लगी फैलन, ऊपर फैल गई बिरवाई॥
चिड़िया कहती दाना मेरा, मुनुआ कहता—ना, ना, मेरा।
बादल कहता सींचा मैंने, तीनों में छिड़ गई लड़ाई॥
पौधा बोला तुम सब आओ, सब मिल कर मुझको अपनाओ।
सबसे पहले धरती माँ है, जिसने मेरी जड़ें जमाई॥

अशोक एम० ए०—सुन्दरलाल वर्मा 'अशोक' का जन्म सन् १९२२ में जाजगीर जि० बिलासपुर म० प्र० में हुआ था। उन्होंने हिन्दी एम० ए०, साहित्यालंकार, साहित्य रत्न तथा हिन्दी प्रभाकर परीक्षायें पास कीं। इन्द्रधनुष, गौरव, आरती और मंगला पत्रिकाओं के सम्पादक रहे और अब भारत सरकार के गृह मन्त्रालय की ओर से हिन्दी शिक्षण योजना में शिक्षण अधिकारी हैं। बच्चों के लिए उनकी सहोदरा, शैल गाथा, शिकारी, बाल गीतांजलि, मोती चूर का लड्डू, मुर्दा राजकुमार, रेलगाड़ी, भूतों का डेरा, समुद्र परी, जादू की सारंगी, जादू का झूला, सोने की मछलियाँ, फुलझड़ी, स्वप्न लोक, घुनघुना, राजा मैया, मोहन भोग, सोन चिरैया, धूल भरे हीरे, धरती के लाल, तितली आदि अनेक बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी धर्म पत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी 'चन्द्रिका' भी बच्चों के लिए सुन्दर कवितायें लिखती हैं। अशोक जी की एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

चन्दा मामा चन्दा मामा अपने पास बुलाओ।
अपने रथ में मुझे बिठाकर नभ की सैर कराओ॥
चन्दा मामा जल्दी से अब मुझे दिखाओ तारे।
चमक रहे हैं दमक रहे हैं लगते हैं जो प्यारे॥
चन्दा मामा रोज रात को सजधज कर तुम आते।
सूरज की किरनें आते ही कहो कहाँ छिप जाते॥
चन्दा मामा मेरे घर में रोज रात को आना।
दूध मलाई पेड़े बर्फी बड़े प्रेम से खाना॥
चन्दा मामा मेरे घर में रहता है अंधियारा।
लाना अपने साथ याद से नन्हां-सा इक तारा॥

कृष्णकान्त तैलंग—कृष्णकान्त तैलंग का जन्म सन् १९२२ में बिलहरा ग्राम जिला सागर म० प्र० में हुआ था। उन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की और गन कैरिज फैक्ट्री जबलपुर में सरकारी नौकरी करते हैं। उनकी बच्चों के लिए मौज मजे, फूल माला, परियों का नाच, फूल परी, जादू की सारंगी, सोने की चिड़िया आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ हम उनकी एक बालोपयोगी कविता का कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

बाबा की मूँछें

लम्बी लम्बी भूरी मोटी बाबा की थीं मूँछें।
मानो होठों पर रक्खी हों ला घोड़े की पूँछें॥

बड़ी शान से बाबा उनको दिन भर ऐंठा करते।
मुझे चिढ़ाते गोदी में ले जब वह बैठा करते॥
बाबा के ढिंग जाते हरदम मैं था अति घबराता।
गोदी लेने मुझे बुलाते मैं था चट भग जाता॥
पीछे दौड़ा करते बाबा मुझे पकड़ यदि लेते।
मूँछ गड़ाकर चूम चूम कर आफत सी कर देते॥
बाबा की मूँछों से अति ही मुझको थी हैरानी।
मूँछ दिखाकर धमकी देते यदि करता शैतानी॥
एक दिवस थे बाबा सोते सुख से खर्राटे भर।
नाक बजाकर गाल फुलाकर मुँह अपना बिचकाकर॥
मुझको तब सूझी शैतानी लख बाबा की मूँछें।
कैंची लाकर मैंने कतरीं वे घोड़े की पूँछें॥

दीनदयाल उपाध्याय—दीनदयाल उपाध्याय का जन्म सन् १९२४ में सागर जिले में हुआ था। उन्होंने इन्टर तक शिक्षा प्राप्त की और सागर में ही मिडिल स्कूल के अध्यापक हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत-सी कवितायें लिखी हैं। एक हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

साइकिल

दौड़ लगा कर सट पट जाकर शाला झट पहुँचाती मुझको।
खूब घुमाती मन बहलाती, बाइसिकिल ले जाती मुझको॥
कभी गिराकर कभी रुलाकर फिर बैठा घर लाती मुझको।
सैर कराती सर सर जाती, शान दिखाती भाती मुझको॥

चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक'—मयंक जी का जन्म सन् १९२५ में कानपुर में हुआ था। वहीं रह कर उन्होंने बी० ए०, एल-एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। और अब कानपुर में वकालत करते हैं। अनेक संस्थाओं के वह मन्त्री तथा प्रधान हैं। 'सहयोगी' साप्ताहिक के बाल स्तम्भ का भी वह सम्पादन करते रहे हैं। उनकी जीवन वीणा, वीरांगना लक्ष्मी, पागल, किसान गीत, साहसी सेठानी, परियों का नाच, सैर सपाटा, आदि अनेक बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

कुत्तों की लड़ाई

कुत्तों में हो गई लड़ाई। फिर तो भारी आफत आई॥
आस पास के कुत्ते आकर। सभी जमा हो गए वहाँ पर॥
लगे भौंकने शोर मचाने। जोर जोर से वह चिल्लाने॥
बड़ा मजा बच्चों को आया। बच्चों ने भी रंग दिखाया॥
लड़ते कुत्तों को उकसाया। कुत्तों के संग शोर मचाया॥
लेना शेरा शू शू शू शू। हाँ, हाँ आगे चढ़कर ले तू॥
अरे टाइगर बेटा चंचल। शू शू शू बढ़ करदे हलचल॥
फिर तो ऐसी हुई लड़ाई। मानो भारी आफत आई॥
बड़ी जोर का शोर हुआ जब। ऐसी हलचल घोर मची तब॥

सब मुहाल वाले घबराये। छड़ी लिए बाबू जी आये॥
कुत्तों को फिर छड़ी जमाई। बच्चों को भी डाँट बताई॥
तितर बितर थे कुत्ते सारे। भागे फिर तो डर के मारे॥
कुत्तों की रुक गई लड़ाई। चली गई जो आँधी आई॥

प्रेम नारायण गौड़—प्रेम नारायण गौड़ का जन्म सन् १९२७ में प्रयाग में हुआ था। वहीं उन्होंने बी० ए० प्रथम वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद बहुत दिन बेकार रहे। और बच्चों के लिए लेख कहानियां और कवितायें लिखते रहे। सन् १९५१ में उन्होंने प्रयाग में बाल परिषद नाम से एक संस्था की स्थापना की। उनकी लिखी चम-चम चन्दा आदि लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक बालपोयोगी कविता यहाँ प्रस्तुत है—

चन्दा मामा चमक रहे हैं नभ में आसन मारे।
देख उन्हें कितने खुश होते हैं हम बच्चे सारे॥
लिये साथ तारों की टोली नभ में चक्कर खाते।
आँख मिचौनी खेला करते हरदम हैं मुस्काते॥
पहुँच वहाँ तक पाते यदि होता सुखमन में भारी।
किन्तु वहाँ पहुँचाये मुझको ऐसी कौन सवारी?

कामिनी दीदी—श्रीमती कामिनी दीदी का पूरा नाम उमा सूद है और सिनेमा संसार में वह कामिनी कौशल के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म सन् १९२७ में लाहौर में हुआ था। उन्होंने क्यूनर्ड कालिज में अंग्रेजी विषय लेकर बी० ए० आनर्स तक शिक्षा प्राप्त की। भारतवर्ष की अनेक सुप्रसिद्ध फिल्मों में उन्होंने अभिनय किया है। और योरुप तथा एशिया के अनेक देशों की यात्रा भी की है। 'पराग' मासिक की वह सम्पादिका रह चुकी हैं। बच्चों के लिए उन्होंने कविता कहानी और उपन्यास की कई पुस्तकें लिखी हैं पर वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुईं। उनका एक बालगीत हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

आज रात बिस्तर में लेटे सोचा मैंने ध्यान लगाकर।
कितने रंग की चीजें खाईं मैंने दिनभर मँगा मँगा कर॥
श्वेतरंग का दूध पिया था। पीला मक्खन साथ लिया था॥
फिर थे लाल सन्तरे खाये। रंग बिरंगे सेब चबाये॥
आइस क्रीम गुलाबी चाटी। भूरी चाकलेट भी काटी॥
पेट भरा था हरी मटर से। और लाल लाल गाजर से॥
मैंने इतना सब था खाया। पेट अचानक फटने आया॥
अगर कहीं सचमुच जाता फट। इन्द्र धनुष बाहर आता झट॥

रामावतार चेतन—रामावतार चेतन का जन्म सन् १९२८ में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बिंदकी जिला फतहपुर और कानपुर में हुई। फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० किया और पेन्टिंग में डिप्लोमा भी पाया। सन् १९५३ में उन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया। और उसके बाद लगभग २॥ वर्ष तक धर्मयुग साप्ताहिक के सम्पादकीय विभाग में रहे। अब सोमिया कालिज बम्बई में हिन्दी के प्राध्यापक

है। सन् १९५५ से वह 'आधार' नामक एक ललित कला प्रधान मासिक पत्रिका भी निकाल रहे है। पहिले उनकी बालोपयोगी रचनायें बाल मित्र के नाम से छपती थी। उन्होंने बच्चों के लिए सुनो कहानी, दूब के मोती आदि पुस्तकें लिखी हैं। उनकी एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं–

यश के हाथी

सुनो सुनो हे मेरे साथी। हम पालेंगे यश के हाथी॥
एक पाँत तैयार करेंगे। गलियों गलियों में विचरेंगे॥
देख हमारी चाल निराली। लोग सभी पीटेंगे ताली॥
भारी होंगे कदम हमारे। कुछ न करेंगे बिना विचारे॥
नाक हमारी होगी ऊँची। आदर देगी धरा समूची॥
सदा सामने को हेरेंगे। आँख न पीछे को फेरेंगे॥
काम दिखायेंगे अनदेखे। कभी नहीं जो हमने देखे॥
पहिले ऐसी बात कहाँ थी? हम पालेंगे यश के हाथी॥

राधेश्याम सक्सेना 'रसिकेश'—रसिकेश जी का जन्म सन् १९२८ में ग्राम ललौर जिला फर्रुखाबाद में हुआ था। उन्होंने बी० ए० साहित्य रत्न तक शिक्षा प्राप्त की। बच्चों के लिए सुन्दर कवितायें लिखने के अतिरिक्त उनका सुनाने का ढंग भी रोचक होता है। उनकी बालोपयोगी कविताओं की एक पुस्तक 'ठठोली' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। उनकी एक कविता हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

नन्हें मुन्ने भाई। करना नहीं लड़ाई॥
आओ खेल खेलें। गेंद बल्ला लेलें॥
तुमको कैरम प्यारी। करो जल्द तैयारी॥
मेरी मुट्ठी खोलो। इसमें क्या है बोलो॥
मेरी मुट्ठी खाली। खाली बजती ताली॥
खेल खतम है सारा। पैसा हजम तुम्हारा॥
लायें चलो बताशा। देखें खूब तमाशा॥
देखो आती नानी। सुन लें एक कहानी॥
भाई साहब आये। देखो क्या हैं लाये॥
चाचा जी ने हँस कर। चपत जमाई कसकर॥
बाबू जी के आगे। माँ से लड्डू माँगे॥
बढ़िया मिली मिठाई। सबने मौज उड़ाई॥

विश्वदेव शर्मा—विश्वदेव शर्मा का जन्म सन् १९३१ में इलाहाबाद में हुआ था। गोवर्धन हाई स्कूल नाथ द्वारा से उन्होंने हाई स्कूल पास किया। और आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए०, पंजाब विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम० ए० तथा पत्रकारिता की उपाधि प्राप्त की। दिल्ली तथा मेरठ के कई पत्रों का वह सम्पादन करते रहे। अब केन्द्रीय राज्य सरकार में इन्वेस्टीगेटर के पद पर कार्य कर रहे हैं। उनकी बच्चों के लिए लिखी फूल पत्ती, धरती के गीत, श्रम के स्वर, बाल संकेत गान, प्रतिनिधि हास्य कहानियाँ

प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ आदि कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत है—

भरा समन्दर गोपीचन्दर बोल मेरी मछली कितना पानी?
बहता कल कल कल कल नाला। नदिया में जा मिलने वाला॥
बोल मेरी मछली कितना पानी। घुटनों घुटनों छिछला पानी॥
बोल मेरी मछली कितना पानी।
भरा समन्दर गोपी चन्दर बोल मेरी मछली कितना पानी?
मिला नदी में नाला जाकर। तब उमड़ी नदिया उफना कर॥
बोल मेरी मछली कितना पानी। कमर कमर तक गहरा पानी॥
भरा समन्दर गोपीचन्दर बोल मेरी मछली कितना पानी?
मिली नदी तो सागर लहरा। नाप न पाते कितना गहरा॥
बोल मेरी मछली कितना पानी। बोल मेरी मछली कितना पानी?
भरा समन्दर गोपीचन्दर बोल मेरी मछली कितना पानी?

चिरंजीत—चिरंजीत का जन्म सन् १९३२ में पंजाब में हुआ था। हिन्दू कालिज अमृतसर से उन्होंने बी० ए० पास किया और उसके बाद ही दिल्ली आ गए। साप्ताहिक अर्जुन, मासिक मनोरंजन, साप्ताहिक जन सत्ता आदि दिल्ली के कई पत्रों के वह सम्पादक रहे। अब आकाशवाणी दिल्ली के नाटक विभाग के अध्यक्ष हैं। बच्चों के लिए लिखी उनकी नटखट के गीत, बच्चों! गाओ गीत तथा एक था राजा, एक थी रानी आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ उनका एक बालगीत प्रस्तुत है—

आओ खेलें गिल्ली डंडा खेलें वाली बाल।
सबसे बढ़िया खेल कबड्डी खेलें घेरा डाल॥
या फिर खेलें डंडा घोड़ा भागें सरपट चाल।
या फिर लाओ घूँघरू भैया। नाचें ता थैया ता थैया॥
अरे नहीं बलवान बनें हम कुश्ती लड़ डंड पेल।
आओ खेलें खेल॥

आओ खेलें चोर सिपाही, सोता पहरेदार।
चोरी करके रम्मू भागा घर में मची पुकार॥
वर्दी पहन सिपाही आये, आया थानेदार।
चोर चोर रे पकड़ो पकड़ो। पकड़ो हथकड़ियों से जकड़ो'
मजिस्ट्रेट ने हुक्म सुनाया—'चार साल की जेल'।
आओ खेलें खेल॥

खेल पालकी आ सब खेलें, छोड़ सभी उत्पात।
दो लड़के सम्मुख आ पकड़ें इक दूजे का हाथ।
बैठे मुनिया, चले पालकी हम सब गायें साथ॥
"डोली डंडा पालकी, जय कन्हैया लाल की।'
छिक छिम, छिकछिक चले पालकी, जैसे चलती रेल।
आओ खेलें खेल॥

रामवचन सिंह 'आनन्द'––रामवचन सिंह 'आनन्द' का जन्म सन् १९३२ में आरा जिला शाहाबाद बिहार में हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० एस-सी० की परीक्षा पास की और इस समय मारवाड़ी विद्यालय चक्रधरपुर में मुख्याध्यापक हैं। बच्चों के लिए उनकी अंगलू मंगलू, 'बात बात में वर्ण माला' आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत है––

ऊँचे पर्वत से नीचे गिर आगे बढ़ता रहता झरना।
मन में साहस ला, उठकर फिर आगे बढ़ता रहता झरना॥
दर्रा औ खाई से होकर आगे बढ़ता रहता झरना।
चट्टानों से खाकर ठोकर आगे बढ़ता रहता झरना॥
रुकता नहीं किसी के रोके आगे बढ़ता रहता झरना।
झुकता कहीं न आयें झोंके आगे बढ़ता रहता झरना॥
सहता है मस्ती में गाता आगे बढ़ता रहता झरना।
बढ़ने की धुन में इठलाता आगे बढ़ता रहता झरना॥
इसी लिए गति प्रतिक्षण उसमें आगे बढ़ता रहता झरना।
इसी लिए तो जीवन उसमें आगे बढ़ता रहता झरना॥

श्रीप्रसाद––श्रीप्रसाद जी का जन्म सन् १९३२ में आगरा जिले के पारना ग्राम में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। उसके बाद वह बनारस चले गए। वहाँ हरिश्चन्द्र कालिज से बी० ए० तथा हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० पास किया और गोयनका संस्कृत विद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हो गए। उनकी एक बालोपयोगी कविता हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं––

नहीं चाहता हूँ मैं दौलत नहीं महल की इच्छा।
सोना चाँदी नहीं चाहता कर लो क्यों न परीक्षा॥
हाथी घोड़े या कि सवारी नहीं चाहिए कोई।
क्या लूँ रेल जहाज अरे टम-टम मैंने खुद खोई॥
मेरे सभी खिलौने ले लो जो हैं सब ले जाओ।
दुनिया के जितने दुख चाहो सब मुझको दे जाओ॥
लेकिन एक चीज मत लेना मेरी विनय यही है।
वह माँ का है प्यार कहो क्या ऐसी वस्तु कहीं है॥

विष्णुकान्त पांडेय––विष्णुकान्त पांडेय का जन्म सन् १९३३ में ग्राम संग्रामपुर, चम्पारण बिहार में हुआ था। एम० एस० कालिज मोतीहारी से बी० ए० पास करने के बाद तुरकौलिया हाई स्कूल में अध्यापक हो गए। अब बिहार में ही विद्यालय अवर निरीक्षक के पद पर कार्य कर रहे हैं। उनकी बच्चों के लिए लिखी चाँद तारे, हंसो हँसाओ, रंग बिरंगे फूल, नाचें कूदें गायें, चाचा नेहरू, आओ सुनो कहानी, जगमग दीप जलायें, आगे कदम बढ़ायें इत्यादि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत किया जाता है––

हंस कर नभ का चन्दा प्यारा जग का बना दुलारा।
हंस कर सूरज आसमान में करता जग उजियारा॥
हंस कर कली फूल बन जाती सदा सुगंध लुटाती।
हंस कर दीपक तम को हरता जलती उर की बाती॥
हंसना ही जग में पाना है रोना सब कुछ खोना।
हंस कर आगे बढ़ते जाओ कभी उदास न होना॥
हँसना और हँसाना सब को, दिल मत कभी दुखाना।
हंसकर सबसे मिलना सीखो हंसकर दुख सह जाना॥
देख दूसरों की कमजोरी तुम मत हंसी उड़ाओ।
हंसना ठीक सदा है भाई तुम भी हँसो हंसाओ॥

राष्ट्र बन्धु––राष्ट्र बन्धु का पूरा नाम श्री कृष्ण चन्द्र तिवारी है। उनका जन्म सन् १९३४ में सहारनपुर उ० प्र० में हुआ था। उन्होंने एम ए०, बी० टी० तक शिक्षा प्राप्त की और अब म० प्र० के शिक्षा विभाग में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। बच्चों के लिए लिखने और बाल साहित्य के विकास के लिए कार्य करने में उनकी विशेष रुचि हैं। उनकी बच्चों के लिए लिखी बाल भूषण, कन्तक थैयाँ घुनू मनैयाँ, आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'वीणा के गीत' नाम से उन्होंने बालगीतों का एक संकलन भी किया है। बालगीत साहित्य पर हिन्दी और अंग्रेजी में कुछ लेख भी लिखे हैं। यहाँ हम उनकी एक बलोपयोगी कविता प्रस्तुत करते हैं––

जब तक चमकें चाँद सितारे। चाचा नेहरू जियें हमारे॥
टिक टिक घोड़ा उन्हें बनायें। हम सब पीछे चलते जायें॥
नाक उठायें दायें बायें। सभी लगायें मिलकर नारे॥
साल गिरह हम सदा मनायें। सब भरपेट मिठाई खायें॥
उड़ा उड़ा गुब्बारा गायें। सब लोगों के अटल सहारे॥
जिसको दुनिया कहती नाहर। वह अपना ही वीर जवाहर॥
जय बोलो उसकी घर बाहर। बोलो मिल सारे के सारे॥

विनोद चन्द्र पांडेय––विनोद चन्द्र पांडेय का जन्म सन् १९३९ में सुलतानपुर जिले के पंडरी ग्राम में हुआ था। वह बड़े मेधावी छात्र हैं। हाई स्कूल, इन्टर, बी० ए० और एम० ए० सभी परीक्षायें उन्होंने प्रथम श्रेणी में पास कीं। अब वह सुलतान पुर में डिप्टी कलक्टर हैं। उनकी विनोद वाटिका, वीर सौभद्र, विपंची आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यहाँ उनकी एक बालोपयोगी कविता प्रस्तुत है––

तितली

तितली रानी, बड़ी सयानी, फूलों पर मंडराती।
रंग रंगीले नीले पीले, पंखों पर इतराती॥
यह मतवाली बड़ी निराली, सब का मन भर देती।
फूल फूल पर झूल झूल कर, उसमें मधुरस लेती॥

उठती गिरती, उड़ती फिरती करती नित मनमानी।
नाच दिखाती मन बहलाती, तितली मस्त दिवानी॥

हरिकृष्ण देवसरे—हरिकृष्ण देवसरे का जन्म सन् १९४० में रीवाँ में हुआ था। वहीं शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने एम० ए० पास किया। अब आकाश वाणी भूपाल में कार्य कर रहे हैं। उनकी 'सफेद रसगुल्ले' 'गुब्बारे' आदि बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका एक बालगीत हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

महा पुरुष यदि बनना चाहो सत्य नियम को पालो।
कभी झूठ मत बोलो भाई, व्यर्थ समय मत टालो॥
महापुरुष हैं हुए जगत में जितने वीर धुरन्धर।
दृढ़ प्रतिज्ञ बन जाओ उनका शुभ चरित्र पढ़ गुनकर॥
सत्य सत्य है झूठ झूठ है सोचो कौन अटल है।
कौन महान तुम्हें कर देगा किसकी शक्ति प्रबल है॥

बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'—बाबूलाल शर्मा 'प्रेम' का जन्म उत्तर प्रदेश में संडीला जिले के एक ग्राम में हुआ था। उनकी आयु लगभग २२ वर्ष की है। संडीला और लखनऊ में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और इस समय रेलवे एकाउंट आफिस आइजट नगर बरेली में कार्य हैं। बच्चों के लिए उन्होंने बहुत से गीत लिखे हैं। एक हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

चमेली के फूल

लो किरणों की उड़ी चुनरिया नदी किनारे घाट पर।
नाच रहे हैं फूल चमेली के पानी के पाट पर॥
थिरक रहीं परियाँ समीर की, खेत खेत में छाँव में।
आई जैसे नई दुल्हनिया कोई मेरे गाँव में॥
लहर लहर धारा की रह जाती है चक्कर काट कर।
नाच रहे हैं फूल चमेली के पानी के पाट पर॥
उतर उतर अम्बर से तारे बिछी रेत में सो गये।
पुलक पुलक उड़ उड़ गा गा कर विहंग बावरे हो गए॥
ओढ़ दुपट्टा हरियाली का सोये जंगल खाट पर।
नाच रहे हैं फूल चमेली के पानी के पाट पर॥

विजय कृष्ण तैलंग—विजय कृष्ण तैलंग का जन्म सन् १९४३ में हुआ था। उन्होंने हिन्दी एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। काश्मीरी होते हुए भी हिन्दी में बच्चों के लिए कवितायें लिखते हैं। एक कविता यहाँ प्रस्तुत है—

हमारा देश

एक फूल से महके बगिया एक फूल से डाल।
हमारा देश हजारों कलियों वाला है, हजारों फूलों वाला है॥
जले घृणा के रेगिस्तानों में बरसेगा पानी।
दुनिया को शीतल कर देंगी बूँदें हिन्दुस्तानी॥

एक गीत से गूंजे दुनिया, एक राग से प्यार।
हमारा देश गीत की गलियों वाला है, प्रीत की भूलों वाला है॥
पतझर के सूखे हाथों को देंगे ये हरियाली।
काँटों के सिर पर रख देंगे टोपी फूलों वाली॥
एक खुशी से कटे उदासी, एक हंसी से आह।
हमारा देश खुशी की अलियों वाला है, हंसी के झूलों वाला है॥

प्रतीश रंजन गुप्त—प्रतीश रंजन गुप्त की आयु लगभग १९ वर्ष की है और राँची के कालिज में बी० ए० में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। वह बिहार में उड़िया भाषा-भाषी क्षेत्र के रहने वाले हैं। पर हिन्दी में बच्चों के लिए कवितायें लिखते हैं। यहाँ हम उनका बालगीत प्रस्तुत करते हैं—

सुबह सुबह के खिले फूल-से माँ के लाल दुलारे हैं।
दुनिया है यह आसमान तो हम सब चाँद सितारे हैं॥
खेल कूद में रहें मगन हम प्यार सभी का पाते हैं।
देख किसी को भी खुश होते पल भर में खिल जाते हैं॥
हर घर में हमने ही सुन लो सुन्दर स्वर्ग सँवारे हैं॥
जिसकी चाह करें पा जायें इतना है अधिकार हमें।
कलियों-सा सुकुमार मानकर दुलराता संसार हमें॥
डाह न जानें द्वेष न जानें निर्मल प्राण हमारे हैं॥

राम भरोसे गुप्त 'राकेश'—राकेश जी का जन्म सन् १९२४ में हुआ था। उन्होंने विक्रम वि० वि० से हिन्दी में एम० ए० और साहित्य रत्न की परीक्षायें पास की हैं। इस समय वह झाँसी में प्राध्यापक हैं। बालवाड़ी के संचालन और शिक्षा प्रसार कार्य में काफी रुचि लेते हैं। 'क्या बनोगे ?' नाम से उनकी एक बालोपयोगी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। उनकी एक कविता है—

मोहन दौड़ा ले पिचकारी, राधा भरती है किलकारी।
मनसुखा बजाता ताली है, होली की शान निराली है॥
जाता है खेतों पर भोला, भर लाता होलों से झोला।
हँसती गेहूँ की बाली है, होली की शान निराली है॥
घोला पलाश ने रंग लाल, भारत माँ का खिल उठा भाल।
इठलाती डाली डाली है, होली की शान निराली है॥

लक्ष्मी देवी 'चन्द्रिका'—इनका जन्म सन् १९२९ ई० में हुआ था। वह बच्चों के प्रिय कवि अशोक एम० ए० की धर्मपत्नी हैं। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी और मराठी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान है। उनकी कई बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ के नाम यह हैं—लोरियाँ, नन्हें मुन्ने, निंदिया रानी, बालगीतांजलि, अच्छे बालक, चुन्नू मुन्नू। उनकी एक लोरी यहाँ प्रस्तुत है—

सो जा ललना, सो जा ललना।
माँ की गोदी तेरा घर है, तेरा घर है तेरा घर है।

फिर क्यों तेरे मन में डर है, सोने चाँदी का है पलना।
सो जा ललना, सो जा ललना।
मीठी मीठी नींद बुला दूँ, थपकी दे दे तुझे सुला दूँ।
सारी चिन्ता शोक भुला दूँ, कभी न रोना और मचलना॥
सो जा ललना, सो जा ललना।

रघुवीर शरण 'मित्र'—मित्र जी मेरठ के निवासी हैं। उनका जन्म सन् १९१९ में हुआ था। बड़ों के लिए उजन्यास, कविता, कहानी आदि लिखने के साथ-साथ, उन्होंने बच्चों के लिए भी कई पुस्तकें लिखकर प्रकाशित की हैं जिनमें से कुछ विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। कुछ के नाम यह हैं—

अमर रहे यह देश, कदम मिलते बढ़े चलो। धरती माता इत्यादि।

महेन्द्र भटनागर—महेन्द्र जी का जन्म सन् १९२६ में झाँसी में हुआ था। उन्होंने एम० ए०, एल-टी०, साहित्य रत्न की परीक्षायें पास करके नागपुर वि० वि० से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है और उज्जैन में प्राध्यापक हैं। बच्चों के लिये उन्होंने बहुत-सी कवितायें लिखी हैं। उनका एक संकलन 'हँस-हँस गाने गायें हम' प्रकाशित हो चुका है।

धर्मपाल शास्त्री—धर्मपाल शास्त्री का जन्म सन् १९२५ में हुआ था। उन्होंने पंजाब वि० वि० से हिन्दी एम० ए०, शास्त्री, प्रभाकर आदि परीक्षायें पास कीं। बच्चों के लिए कवितायें लिखने में उनकी विशेष रुचि है। बच्चों के लिए उनकी 'मेरी गुड़िया कुछ तो बोल', 'हम एक हैं', 'अंकुर कासपना', 'माटी कालड़का', 'खेलें कूदें नाचें गायें' इत्यादि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी एक रचना यहाँ प्रस्तुत की जाती है—

सबसे अच्छा तेरा नाम।
हे प्रभु ! तुझको लाख प्रणाम॥
हे प्रभु तू सब कुछ कर सकता।
कर दे सोहन हलुवा सस्ता॥
आने सेर बिकें बादाम।
न्याय सभी का तू है करता।
मुझसे मोटूराम झगड़ता॥
हे प्रभु ! करदे उसे जुकाम।

सत्यप्रकाश मिलिन्द'—मिलिन्द जी का जन्म सन् १९२२ में खुर्जा उत्तर प्रदेश में हुआ था। खुर्जा तथा प्रयाग में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इस समय बिड़ला काटन मिल्स दिल्ली में श्रम अधिकारी हैं। बच्चों के लिए उन्होंने कविताओं की अनेक पुस्तकें लिखी हैं। कुछ के नाम यह हैं—आओ बब्बू गायें गीत, मुन्ना मेरे, चाचा नेहरू, एक था राजा एक थी रानी।

गंगा प्रसाद 'कौशल'—कौशल जी का जन्म सन् १९२१ में फर्रुखाबाद में हुआ था। उन्होंने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। 'बाल विनोद' मासिक के सम्पादक रहे। अब पिछले अनेक वर्षों से जमशेदपुर बिहार में 'आजाद मजदूर' साप्ताहिक के सम्पादक हैं। बच्चों के लिए वीर बालक, बच्चों के फूल, एंडरसन की कहानियाँ आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। उनका एक बालगीत है—

जाता हूँ, मैं जाता।
अभी शेरनी के बच्चे को यहाँ पकड़ कर लाता॥
अगर शेरनी गुर्रायेगी, तो वह मुझसे पिट जायेगी।
शेर बबर तो मेरे आगे नहीं भूल कर आता।
मुझे शेर के बच्चे भाते, देख मुझे वह दौड़े आते।
मैं भी उनसे खेल खेलकर फूला नहीं समाता।

सुरेश दुबे 'सरस'—'सरस' जी का जन्म सन् १९३८ में विलारी, वारसली गंज, पटना में हुआ था। वह विहार प्रदेश राज्य के शिक्षा विभाग सचिवालय में काम करते हैं। बच्चों के लिए उन्होंने कविता कहानियों की बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से कुछ के नाम यह हैं—खिलते फूल, चटकती कलियाँ, गा ले गीत सुहावने, टन-टन बाजा, नाच नाच री तकली, मुन्नी की गुड़िया, अनोर इत्यादि।

देवेन्द्र दत्त तिवारी—तिवारी जी उत्तर प्रदेश राज्य के शिक्षा विभाग में सहायक उप शिक्षा निदेशक हैं। बच्चों के लिए लिखने तथा हिन्दी में बाल साहित्य के विकास में बहुत रुचि रखते हैं। उनकी बच्चों के लिए कविताओं की यह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—'चित्र विचित्र', 'नया फूल', फुलझड़ी। उनकी एक कविता यहाँ प्रस्तुत है—

मुन्ना की यह जेब नहीं है एक अजायब घर है।
है विचित्र यह कितना संग्रह, यह कितना सुन्दर है॥
छोटी बड़ी काँच की गोली ढूँढ़ कहीं से लाये।
कहते हैं—जादू ऐसा है सबको तुरत हराये॥
लोहे की कुछ बड़ी गोलियाँ पाईं जो सड़कों पर।
रंग-बिरंगे शीशे के दो टुकड़े रक्खे भर कर॥
एक ब्लेड है, चाकू की भी मुठिया एक पड़ी है।
चाभी देने वाली घुंडी, टूटी जेब घड़ी है॥

राम जन्म सिंह 'शिरीष'—शिरीष जी का जन्म सन् १९२१ में बारापुर जि० गाजीपुर में हुआ था। वह हाई स्कूल, नार्मल तथा बेसिक ट्रेनिंग की परीक्षायें पास करने के बाद सेवापुरी बनारस में अध्यापक हो गए। जीवन शिक्षा, बाल शिक्षा आदि पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभागों में वह काम कर चुके हैं। इस समय सर्व सेवा संघ वाराणसी में काम कर रहे हैं। बच्चों के लिए लगभग एक दर्जन पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। उनका एक बालगीत यहाँ प्रस्तुत है :—

चल मेरे घोड़े टम्मक टम।
चीता रोके तो लड़ जाना।
हाथी टोके तो चढ़ जाना।
गफ़लत मत कर बढ़ बेगम॥

खाई देख नहीं रुकना है।
टीला देख नहीं झुकना है।
चल दुलकी, चल जम जम जम ॥
अपने हिन हिन बोल सुनादे।
ठुमक ठुमक कर नाच दिखादे।
बाँध के घुंघरू छम छम छम ॥

आचार्य अज्ञात––बहुत छोटे बच्चों के नवयुवक कवि आचार्य अज्ञात नन्हीं दुनिया, चोहड़पुर, देहरादून में अध्यापक थे। और वहाँ से 'नन्हीं दुनिया' मासिक पत्रिका निकालते थे। उसके बाद वह गौतम ब्रादर्स, लखनऊ में बाल साहित्य के प्रकाशन की देखभाल करने लगे। उनकी दो रचनायें यहाँ प्रस्तुत हैं––

ईंची मींची, आँखें भींची
आया लटकू, बैठा मटकू
खट खट खटका, फूटा मटका
खीं खीं बिल्ली टिल्ली लिल्ली।
उड़े झील से बगुले राजा।
मछली लगी बजाने बाजा ॥
पेट पीटकर मेढक भैया।
लगे नाचने ता ता थैया ॥

स्पष्ट है कि इस काल में बालगीत साहित्य का जितना विकास हुआ उतना पहिले कभी नहीं हुआ था। उपरियुक्त कवियों के अतिरिक्त और भी ऐसे बहुत से कवि हैं जो बाल साहित्य की श्रीवृद्धि करने में निरन्तर लगे हुए हैं। उनके विषय में विस्तार से लिखे बिना बालगीत साहित्य का इतिहास अपूर्ण ही समझा जायेगा। हम यहाँ उनमें से कुछ का केवल नामोल्लेख ही कर पा रहे हैं––लाला जगदलपुरी (म० प्र०) कपिल (बम्बई) गौरीशंकर 'अंजिल' (बिहार), शंभुदयाल चतुर्वेदी (ग्वालियर) विश्वनाथ गुप्त (गाजियाबाद), सरस्वती कुमार 'दीपक' (बम्बई), सैयद राशिद अली (जबलपुर), हजारीलाल श्रीवास्तव 'अधीर' (नागपुर), वेणीमाधव शर्मा (वाराणसी), हरिदयाल चतुर्वेदी (इलाहाबाद), प्रेमबहादुर 'प्रेमी' (बरेली, उमाशंकर वर्मा (पटना), सुरेशकुमार 'सुमन' (राजस्थान), मनोरंजन सहाय श्रीवास्तव (बिहार), सुधाकर पांडेय (वाराणसी), वीरेन्द्र मिश्र (दिल्ली), शान्ता सन्त, दयाशंकर मिश्र 'दद्दा' (दिल्ली), लक्ष्मी नारायण टंडन, हरि कृष्ण दास गुप्त 'हरि', अशोक कुमार सूरी, आशा कान्त बी० आचार्य, व्यंक्टेश चन्द्र पांडेय, नारायण लाल परमार, जगदीश चन्द्र शर्मा।

हिन्दी में बालगीत साहित्य के इतिहास के विषय में जो तथ्य यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं वह वास्तव में इतिहास नहीं इतिहास की रूपरेखा हैं। इस इतिहास में प्रत्येक कवि और उसकी रचनाओं की समुचित व्याख्या और विवेचना के साथ-साथ उनका समुचित मूल्यांकन करना भी अत्यन्त आवश्यक था। ऐसा यहाँ अपनी सीमाओं को देखते हुए नहीं किया गया है। किन्तु इसके बिना इतिहास पूर्ण नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में अब बालगीत साहित्य

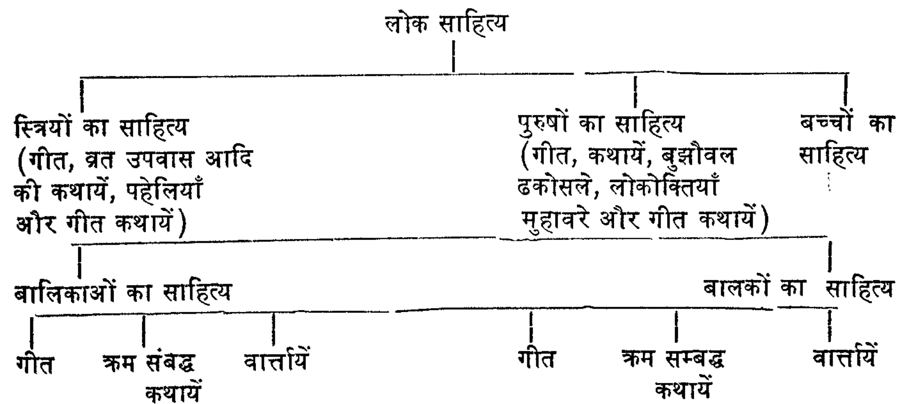
बड़े वेग से लिखा जाने लगा है। भाषा शैली और विषयों की व्यापकता की दृष्टि से वह पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक उन्नत और समृद्ध है। प्रकाशकों ने लाभदायक समझ कर उसके प्रकाशन की ओर रुचि दिखाना प्रारम्भ कर दिया है। पर अब भी बच्चों के लिए उपयुक्त और उन्हें प्रिय लगने वाले मनोरंजक बालगीतों का बड़ा अभाव है। श्रेष्ठ और उपयुक्त को कम श्रेष्ठ और अनुपयुक्त साहित्य में से अलग करके बच्चों के हाथों में देने के लिए समुचित विचार विमर्श और मूल्यांकन की आवश्यकता है। यदि ऐसा न किया गया तो लेखक कवियों की प्रतिभा से हमारे देश के बच्चे जो लाभ उठा सकते हैं उससे वंचित रह जायेंगे और उनका का श्रम और प्रकाशकों का धन व्यर्थ जायेगा।

---

१४ : लोकगीतों में बालगीत

प्रत्येक मानव समाज के साहित्य में लोकगीतों का अपना एक विशेष स्थान होता है। मनुष्यों के मन के भाव, कल्पनायें, आदर्श और आस्था विश्वास जितने स्वाभाविक रूप में लोकगीतों में चित्रित मिलते हैं उतने लिखित काव्य साहित्य में नहीं। लिखित काव्य साहित्य की भाषा शैली में तीव्रता से परिवर्तन होते रहते हैं और पुराने रूप नयों के आगे पिछड़ते रहते हैं। पर लोकगीत साहित्य प्रायः अपने एक ही रूप में सैकड़ों हजारों वर्ष तक चलता रहता है। ब्रजभाषा आज लिखित साहित्य के क्षेत्र में अपने उच्च आसन से उतार दी गई है पर इससे ब्रजभाषा के लोक साहित्य के माधुर्य और महत्ता में कोई अन्तर नहीं आया। ब्रज की ही भाँति भारतवर्ष की सभी भाषाओं में लोक गीत साहित्य प्रचुर मात्रा में बिखरा पड़ा है। उसके संकलन और प्रकाशन की दिशा में भी अब प्रयास होने लगे हैं। पर उसे तो जितना खोजा जायेगा उतने ही अधिक रत्न हाथ लगने की आशा सदा बनी रहेगी।

लोकगीत साहित्य के रचयिताओं या रचना काल के विषय में किसी को कुछ ज्ञात नहीं होता। वह स्वयं सिद्ध और वेदों की ऋचाओं के समान अपौरुषेय होता है। जन जीवन से उसकी उत्पत्ति होती है और परम्परा उसका श्रृंगार करती है। इसीलिए पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसे 'आर्येतर सभ्यता का वेद' और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'प्रकृति के उद्‌गार' कहा है। बच्चों का साहित्य भी लोक साहित्य का एक प्रधान अंग होता है। और वह भी बाल समाज में उसी प्रकार प्रचलित रहता है जैसे बड़ों के समाज में बड़ों का लोक साहित्य। हिन्दी में लोक साहित्य के प्रमुख व्याख्याता श्री० श्याम परमार ने लोक साहित्य को निम्नलिखित तालिका के अनुसार विभाजित किया है :



श्याम परिमार जी के इस बिभाजन से यह स्पष्ट है कि लोक साहित्य के अन्तर्गत बालक बालिकाओं के उपयोग में आने वाले सरल गीतों का एक अलग महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर अभी तक बाल साहित्य की दृष्टि से हिन्दी ही नहीं बहुत कम भारतीय भाषाओं में लोक

साहित्य का संचयन किया गया है। विद्वान विचारकों का ध्यान बड़ों के साहित्य की ओर तो गया पर बच्चे उनके प्यार से वंचित ही रहे हैं।

संस्कृत को छोड़ कर भारतीय भाषाओं के लिखित साहित्य के प्राचीन इतिहास पर यदि विचार किया जाये तो किसी में भी हम ऐसा कोई भी साहित्य नहीं पाते जो विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखा गया हो। संस्कृत में पंचतन्त्र, कथा सरित्सार और हितोपदेश आदि कुछ ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी कहानियाँ और उनके बीच-बीच में आये पद्य श्लोक किशोर राज कुमारों को शिक्षित बनाने के लिए लिखे गये थे। पर सब आधुनिक तामिल, तेलगु, मराठी. गुजराती, हिन्दी, बंगाली, आसामी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं में जो भी बाल साहित्य लिखा गया उसका इतिहास डेढ़-दो सौ वर्ष से पुराना नहीं है। तब क्या इससे पूर्व हमारे देश के बच्चों के लिए अलग कोई ऐसा साहित्य था ही नहीं जिससे बच्चे अपना मनोरंजन कर सकें ? इस प्रश्न का उत्तर हम लोक साहित्य के अध्ययन से ही ठीक-ठीक प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी अपने को सभ्य कहने वाले मानव समाज में ऐसा कभी नहीं हो सकता कि बड़े तो अपने लिए साहित्य सृजन कर उससे निरन्तर मनोरंजन करते रहें और बच्चों के लिए कोई भी ऐसा साहित्य रचकर न दें जो उनका मनोरंजन कर सके। महान साहित्यिकों का दम्भ उन्हें सदा बड़ों के लिए ही लिखने को विवश कर सकता है पर जनता के उन अनपढ़ सीधे-सादे मनुष्यों का मोह जो अपनी सरल भावनाओं को लोक साहित्य के रूप में व्यक्त करके सुख प्राप्त कर लिया करते हैं, कभी अपने परिवार के बालकों की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए किसी भी भाषा में जहाँ हमें लोक साहित्य देखने को मिलता है वहाँ कुछ न कुछ साहित्य बच्चों के लिए भी अवश्य ही रचा जाता रहा होगा। आवश्यकता इस बात की है कि उसका समुचित मूल्यांकन और संकलन किया जाये। ऐसा करने से न केवल इतिहास के वह पृष्ठ खुलकर हमारे सामने आयेंगे जो इससे पहिले लौटकर कभी नहीं देखे गये थे। बल्कि हमारे आधुनिक बाल साहित्य के विकास को भी एक ऐसी प्रेरणा और गति मिलेगी जो उसके लिए बहुत सहायक और उपयोगी सिद्ध होगी।

भारतीय बालोपयोगी लोकगीत साहित्य के अन्तर्गत लोरियाँ सभी भाषाओं में पाई जाती हैं। बंगाल के सुप्रसिद्ध कलाविद् विचारक श्री० अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने लोरियों के विषय में कहा है—'कोन कालेर आलोते प्रथम फुटले एर सुर उठ लो, एवं कोन घूमन्त छेलेर कान आर प्राणे गिये बाज लो ता जानवार कोनो उपाय नेई।' (किस समय के प्रकाश में यह सब बिखरी तसवीरों की सी लोरियाँ, यह सब छोटे-छोटे भावों की कलियाँ खिल उठी थीं, किसके कंठ से पहिले पहिल उनके स्वर निकले थे और किस निद्रित शिशु के कान और प्राण में गूँजे थे यह जानने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है)। किसी विद्वान लेखक ने इसी सम्बन्ध में यह भी ठीक ही कहा है—'लोरियों की परम्परा उतनी ही पुरातन है जितनी पुरातन स्वयं माँ है।'

लोरियाँ वह बालगीत कहलाते हैं जिन्हें मातायें अपने नन्हें मुन्नों को सुलाने या गोने से पहिले रोते समय चुपाने के लिए गाती हैं। योरुपीय विचारक बालजाक के शब्दों में—'दुनिया का सबसे मीठा गीत लोरी है जिसे हम बचपन के प्रभात काल में अपनी माँ के मुख से सुनते हैं।' लोक साहित्य के प्रसिद्ध संकलनकर्त्ता श्री० देवेन्द्र सत्यार्थी का कहना है-

—'सभ्य असभ्य सभी जातियों की मातायें लोरियां गा गाकर आनन्द प्राप्त करती हैं। वे यह नहीं सोचती कि उनकी आवाज सुरीली है या नहीं। उन्हें तो अपने शिशुओं को रिझाने से ही मतलब रहता है। झूला हिलाती हुई या शिशु की पीठ पर थपकियाँ देती हुई जब वे लोरियाँ गाती हैं तो उनकी सूखी तथा खुरदरी वाणी में भी अलौकिक मिठास आ जाती है।' लोरियाँ अधिकतर उन बच्चों को सुनाने के लिए गाई जाती हैं जो भाषा भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। इसलिए उनमें शब्द और अर्थ के लालित्य की अपेक्षा स्वर लय का ही महत्त्व अधिक रहता है। फिर भी माँ की बच्चे के प्रति होने वाली ममता से प्रसूत होने के कारण उनके भावों में एक ऐसा लालित्य अपने आप आ जाता है जो यत्न से साज सँवार कर लिखे गये बड़ों के काव्य साहित्य में प्रायः देखने को नहीं मिलता।

भारतवर्ष की सभी भाषाओं के लोकगीतों में लोरियाँ बहुतायत से उपलब्ध हैं। गुजराती में लोरियों को 'होलरडाँ' भी कहते हैं। गुजराती माँ अपने बच्चे को देवताओं का प्रसाद मानकर उसके अमर होकर जीने की कामना करती हुई महादेव को मनाती हैं—

तमे माराँ देवना दिधेल छो।
तमे माराँ मागीली थेल छो॥
आव्याँ त्योर अम्मर रई ने थै।
मा देव जायो उतावलो ते गई चढ़ावू झूल।
मा देव जो परसन छये आव्याँ तने अण मूल॥
तमे माराँ नगद नाणु छो।
तमे माराँ फूल बलाणु छो॥
आव्यां त्योर अम्मर रई ने थै॥

(तू मेरे देवताओं का दिया हुआ धन है। तू मेरा उधार लिया हुआ धन है। जब तूने जनम ले लिया है, अमर होकर जीवन धारण कर। मैं दौड़ती हुई महादेव को फूल चढ़ाने गई। तू मेरा नकद धन है। तू मेरा सुगन्धित फूल है। जब तूने जनम ले लिया है, अमर होकर जीवन धारण कर।)

इसी प्रकार यह दूसरी गुजराती लोरी भी बहुत मधुर है—

नीदर डी तू आव जो आवे जो।
मीरा बचु ताल लावे लावे जो॥
तू बदाम मिसरी लावे जो।
तू खोरवा टोपरू लावे जो॥

(आ हे नींद आ। हमारे बच्चे के लिए ला। तू बदाम, मिसरी ला। छुहारे ला।)

आंध्र प्रदेश में लोरी का पर्याय वाची शब्द 'जौल पाटा' है। शिशु चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है इसी भाव को तेलुगु माँ लोरी में व्यक्त करती है—

चन्दा मामा रावे। जाबिल्ली रावे।
कण्डे कि रावे। कोटि पूलू तेवे॥
बेडि भीवा रावे। बन्ति पूलू तेवे॥

(हे चन्दा मामा आ। गाड़ी पर चढ़कर आ। फूल लेकर आ। पीले पीले फूल देकर चला जा।)

उड़िया में लोरियों को 'बिल्ला खेला गीत' कहते हैं। उड़िया माँ लोरी में चन्द्रमा से उपहास करती हुई कहती है—

जन्हां मामू रे जन्हां मामू,
मो कथा ही सुनो।
बिल-र माछ चील खाई गला,
खई वी खंडिये बुणो॥

(चन्दा मामा, ओ चन्दा मामा, मेरी बात सुनो। खेत की मछली को चील खा गई। तुम जाल तैयार करो।)

आसामी भाषा में लोरी का पर्यायवाची शब्द 'आई नाम' है। उसमें लोरियों का बहुत बड़ा भंडार है। एक आसामी माँ कहती है—

बापा ए ! न लावी राती।
बाट-ते जल दे खोटा बाती॥
छाती जलक वन्ती जलक,
पोहर न होये भाल।
बियार खमय महला वीले,
पोहर हवे भाल॥

(हे शिशु रात के समय बाहर न जा, पथ में सोलह दीप जल रहे हैं। उनका प्रकाश अच्छा नहीं है। तेरे विवाह के समय मैं दीपक जलाऊँगी। उनका प्रकाश अच्छा होगा।)

एक पंजाबी माँ कहती है—

खंडा खीर मिट्ठी ए मिट्ठी ए।
बीर बहूटी डिट्ठी ए डिट्ठी ए॥
चौला नालों चिट्ठी ए चिट्ठी ए।
जलेबी नालों मिट्ठी ए मिट्ठी ए॥

(खांड मिली खीर मीठी है, मीठी है। भाई की बहू को मैंने देख लिया, देख लिया। वह चावलों से अधिक गोरी है गोरी है। जलेबी से अधिक मीठी है, मीठी है।)

बंगाली माँ कहती है—

खोका आमार घूम ना जाय।
मिटिर मिटिर चक्खू चाय॥
घूमेर मासी के मेर पिसी।
घूम कि ले भालो बासी॥

(मेरा बच्चा सोता नहीं है। अधमिची आँखों से देख रहा है। नींद की मौसी, नींद की बुआ उसे सुला दें तो मैं उनसे बहुत प्यार करूँ।)

एक मराठी माँ कहती है—

रड़ू न को रड़ू न को।
माझा बाला रड़ू न को॥
हसुन हसुन झोप।
गाउन गाउन झोप॥
झोप झोप माम्मा बाला।
झोप झोप मधु गोड वाला॥

(रो मत, रो मत मेरे प्यारे शिशु रो मत। हँसते हँसते सो जा, गाते गाते सो जा। सो जा मेरे बच्चे सो जा, हे मेरे शहद के छत्ते के से बच्चे सो जा।)

एक तेलुगु माँ कहती है—

इन् तन्ता दोपम्मु इल् लल्ला वेलगु।
ईस्वर ड़ी चन्द मामा जग मल्ला वेलगु॥
माड़न्ता दोपम्मु जग मल्ला वेलगु।
इन् तन्ता मा अब्बाई मा कड़ला वेलगु॥

(छोटा-सा दीपक सारे घर को प्रकाशित कर देता है चन्दा मामा सारे जगत को प्रकाशित कर देता है। छोटा-सा दीपक सारे राज महल को प्रकाशित कर देता है। छोटा-सा मेरा बच्चा मेरी आँखों को प्रकाशित कर देता है।)

काश्मीरी माँ कहती है—

वारे वारे चन्द्रे वारे,
वारे अज छुई मुबारिक।
बाजो बाजो बुर्हछु ताजो,
रणु बुतताजो रोगन जोश॥

(आज सोमवार का दिन है। आज का दिन मुबारिक है। हे रसोई बनाने वालों! नई मट्टी बनाओ। और घी चढ़ाकर ताजा पुलाव तैयार करो।)

एक पठानी माँ कहती है—

मालियारा पूलार के गुलेना उगलवा।
जमा तिफल पे मुसाफेर जी।
राना केनबी मालियारा गुलेना उगलवाँ,
जमा तिफल पे मुसाफेर जी॥

(हे माली रास्ते में फूल बिछा दो, मेरा बच्चा आज से मुसाफिर बन रहा है। फूल ही फूल बिछाना काँटा एक भी न रहने देना। मेरा बच्चा आज से मुसाफिर बन रहा है।)

इस प्रकार पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी, आसामी, उड़िया, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि सभी भाषाओं के लोक साहित्य में माँ की बच्चे के प्रति ममता, मधुर भावनाओं, और कल्पनाओं से पूर्ण ऐसी लोरियाँ भरी पड़ी हैं जो बड़े-बड़े साहित्यकार और कवियों द्वारा यत्न करके नहीं लिखी जा सकतीं।

लोरियों के अतिरिक्त लोक गीतों में और भी बहुत से गीत ऐसे हैं जो श्रेष्ठ बालगीतों की श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। उनमें बच्चों की मनोभावनायें और कल्पनायें बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त हुई हैं। छोटे-छोटे बच्चे उन्हें अपने बड़ों या समवयस्क साथियों से सुनकर प्रायः गाते दुहराते पाये जाते हैं। इन गीतों में उनके मन की सारी बातें मौजूद रहती हैं। उनमें से बहुत से प्रथाओं और परम्पराओं के गीत हैं जिन्हें बच्चे किसी विशेष मौसम, उत्सव या त्योहार के अवसर पर गाते हैं। टेसू, झाँझी, छल्ला, घड़ल्ला, छतोद या गोगों के गीत इसी प्रकार के हैं। उनमें लयबद्धता के साथ-साथ कुछ ऐसे अकल्पित संयोगों का वर्णन रहता है कि वह बच्चों को बहुत रुचिकर प्रतीत होते हैं। टेसू के गीत ब्रज में क्वार की दशमी से शुरू होते हैं और पूर्णमासी तक गाये जाते हैं। बांस की खपच्चियों को बाँध कर उस पर कागज पन्नी मढ़ कर और एक मिट्टी का चेहरा ऊपर रखकर टेसू बना लिया जाता है। एक हाथ में हुक्का और दूसरे में फूल होता है। और टोंड़ी पर जलता हुआ दिया रखने की जगह होती है। बच्चे इसी को हाथ में लिए मुहल्ले में घर-घर जाकर सामूहिक रूप से टेसू के गीतों को गाते फिरते हैं। ब्रज का एक प्रसिद्ध टेसू का गीत है—

इमली की जड़ में निकरी पतंग।
नौ सै मोती नौ सै रंग॥
एक रंग मैंने माँग लिया।
चढ़ घोड़े असवार किया।
किया है भाई किया है।
दिल्ली जाय पुकारा है॥
दिल्ली का है आला चोर।
मार सिकन्दर पहिली चोट।
चोट गई चूल्हे की ओट॥
चूल्हों माँगे सौ सौ रोट॥
एक रोट घटि गौ।
चूल्हा बेटा लटि गौ॥
चूल्हे में मारौ ढक्का।
जाय परो कलकत्ता॥
फिरंगी मेरौ बच्चा।
मैं बाकौ चच्चा॥
फिरंगी बैठो आँगन में।
दै सारे की टाँगन में॥

इस गीत में किसी युक्तिसंगत बात का आदि से अन्त तक निर्वाह नहीं किया गया है। कहीं-कहीं तो कोई दो पंक्तियाँ एक भाव को ढंग से व्यक्त करने वाली नहीं मिलतीं। ढक्का, की तुक मिलाने के लिए अनावश्यक रूप से कलकत्ता को ला बैठाया गया और उसके आते ही वहाँ रहने बसने वाले फिरंगी की याद हो आना स्वाभाविक है। फिरंगी हमारा शोषण करता है इसलिए उस पर क्रोध दिखाना भी आवश्यक हो गया इसी लिए उसकी टाँगों में मारने

की बात कही गई है। इस प्रकार इसे हम राष्ट्रीय भावना का गीत भी कह सकते हैं। बच्चे किसी एक भाव या विचार पर बहुत अधिक देर तक अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं कर सकते। इसलिए इन विचित्र कल्पनाओं में भी वह वैसा ही रस लेते हैं जैसा बड़े लोग बड़ी-बड़ी युक्ति-संगत बातों में लिया करते हैं। इस गीत में इमली की जड़ में से पतंग निकलने की कल्पना अद्भुत है। और फिर वह पतंग भी साधारण नहीं उसमें एक दो चार नहीं नौ सौ मोतियों के जड़े होने की कल्पना की गई है। बड़ों को ऐसी असंगत कल्पनायें निरर्थक और बच्चों की रुचि को बिगाड़ने वाली भी लग सकती हैं। पर बच्चों को उनमें आनन्द ही नहीं आता उनसे ज्ञान भी प्राप्त होता है।

टेसू का एक और गीत है—

टेसूरा घंटार बजइयौ।
नौ नगरी नौ गाय बसइयौ॥
बसि गये तीतुर बसि गये मोर।
पकड़ चमरिया लै गये चोर॥
चोरन के घर खेती।
खाय चमरिया मोटी॥
मोटी ह्वै के गई बजार,
बजार से लाई धनियो।
पाछे परिगो बनियो॥

इस गीत में टेसू के घंटा बजाने और नौ नगर और नौ ग्राम बस जाने की बातों का आपस में कोई तारतम्य नहीं है। और न उनमें तीतर और मोरों के बस जाने और चमरिया को चोरों द्वारा पकड़ कर ले जाये जाने की बातों का कोई आपसी तारतम्य है। पर यदि कल्पना की जाये कि टेसू एक राजा थे और वह इतने प्रतापी और प्रभावशाली थे कि उनके घंटा बजा देने भर से नौ नगर और नौ ग्राम बस गये तो यह भी कल्पना की जा सकती है कि उनकी शोभा बढ़ाने के लिए उनमें तीतर और मोर भी रहने लगे। तीतर और मोर पालना गरीबों का नहीं धनवान आदमियों का ही शौक होता है। जब धनवान लोग होंगे तो चोर भी वहाँ आयेंगे ही। और वह किसी धनवान चमार की स्त्री को भी पकड़ कर ले ही जा सकते हैं। बड़ों की कल्पना में यह सब बातें एक साथ इतनी कम पंक्तियों में नहीं आ सकतीं। वह उन्हें कविता में लिखते समय उनके भावों की तारतम्यता पर ध्यान रक्खेंगे। पर बच्चों की कल्पना की गति बहुत तीव्र होती है इसलिए उनके उपयोग की रचना में यदि इतनी सारी बातें एक साथ आ जायें तो कोई आश्चर्य नहीं।

टेसू का एक और लोकप्रिय गीत है जो ब्रज में गाया जाता है—

पातरिया री पातरिया तेरी पतरी कमान।
तीर में झटोका मारौ दिल्ली आसमान॥
दिल्ली ते तौ गाय आई, भैंस आई, भैंसा चौं नहीं आया है।
आधी रात नगाड़ौ बाजौ भैंसा रेंकतु आया है।
जंगो मोर में सांटा मारा, ताल-सा भिन्नाया है॥
ताल गई रेत में, बन्दूक मारी पेट में॥

टेसू के गीत जिस प्रकार बालकों में प्रचलित हैं उसी प्रकार झांझी के गीत ब्रज की बालिकाओं में प्रचलित है। बालिकायें मिट्टी के एक बरतन में बहुत से छेद कर लेती हैं। उसमें एक दीपक जलाकर रख लेती हैं। इसी को झांझी कहते हैं। इस झांझी को लिए हुए बालिकायें सामूहिक रूप से गीत गाती फिरती हैं। ब्रज में इन गीतों का बहुत प्रचार है। हम यहाँ कुछ झाँझी के गीत प्रस्तुत करते हैं—

(१)

झांझी आई, झांझी आई, आंगन बुहारौ जी।
आँगन बुहारत ह्वै मोतीरा पाये जी॥
....
तजरी को पौधा मेरी माया कहिये।
भौं मट कनियाँ माई जी॥
कारे कारे देवर कहिये कंजरिया दौरानी जी।
सोने की लठिया भैया कहिए कमल फूल भौजाई जी॥

(२)

'माँ, भाभी कौ महड़ो कैसो?'
'नाक चना-सी, मूँह बटुआ-सो, घुँघट सें मन लाई।
थोरौ खानी, बहुत कमानी, जे जुग जीती आई॥'
'माँ, रोटी कितनी खावै, पारेवरिया?'
'बेटी चट्टो की चट्टो उड़ावै, पारेवरिया॥'

(३)

फूहर पीसै पीसनौ मेरी रावरिया।
जैसे गिरियारे की रेतु भली मेरी रावरिया॥
....
फूहर मांड़ै मांड़नौ मेरी रावरिया।
जैसे भादौं की कीच भली मेरी रावरिया॥

(४)

बाबा जी के बेली बेला भिच्छा मांगन आये जी।
भरि चुटकी मैंने भिच्छा डारी. चूँदरिया रंग लाये जी॥
चूँदरिया की डरकन मुरकन ह्वै मोती मोय पाये जी।
वे मोती मैंने सासुए दिखाये जी॥
सासु निपूती ने धरि पत्थर पै फोरे जी॥

(५)

चाकी तर मैंने धनियो बोयो। हाँ सहेली धनियो बोयो॥
धनिये ने जब कुल्ला फोरे। हाँ सहेली कुल्ला फोरे॥
कुल्ला ते मैंने गऊ चराई। हाँ सहेली गऊ चराई॥
गऊअन ते मोई दुधधा दीनो। हाँ सहेली दुधधा दीनो॥
दुधधा की मैंने खीर पकाई। हाँ सहेली खीर पकाई॥
खीर मैंने बीरन कूं जिमाई। हाँ, सहेली बिरन जिमाई॥

इन झांझी के गीतों में भावों का तारतम्य टेसू के गीतों की अपेक्षा कुछ अधिक युक्तिसंगत रूप में मिलता है। बालिकायें कितनी ही चंचल क्यों न हों साधारणतया उनकी कल्पना उतनी अच्छृंखल नहीं होती जितनी नटखट बालकों की। बालिकाओं की दृष्टि भी सीमित होती है। इसलिए झांझी के गीतों में अधिकतर घरेलू काम-काज और सगे सम्बन्धियों की बातों का ही उल्लेख रहता है। ब्रज में बाल विवाह की प्रथा भारत के अन्य अनेक भू-भागों की तरह अत्यन्त प्राचीन काल से चली आई है। कम आयु की विवाहित बालिकायें भी झांझी के गीतों से उसी प्रकार मनोरंजन करती हैं जैसे अविवाहित बालिकायें। उपरियुक्त पहिले और चौथे गीत में इसी प्रकार के भाव हैं। पहिले गीत में विवाहित बालिका अपने भैया को सोने की लाठी की तरह सुन्दर और भाभी को कमल फूल की तरह सुन्दर बताने के लिए परिवार के सभी लोगों का वर्णन करते हुए देवर को काला और देवरानी को कंज-रिया तक कह देती है। चौथे गीत में वह सास के ऊपर तीखा व्यंग बड़े स्वाभाविक ढंग से करती है। भिखारी को चुकटी भर भीख देने से जो दो मोती उसने चुँदरिया में पाये थे वह जब उसने ले जाकर अपनी सास को दिखाये तो वह जल भुन कर राख हो गई। और उनको पत्थर पर रखकर फोड़ दिया। विवाहित जीवन में व्यंग विनोद के यह गीत आज के सामाजिक जीवन में बालक बालिकाओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। बाल विवाह की प्रथा अब हमारे समाज से उठ गई है। इसलिए झांझी के यह गीत मनोरंजक होते हुए भी बाल-गीतों की तरह उपयोगी नहीं हो सकते। पर उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनका वैवाहिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। उनमें पारिवारिक जीवन में मनोविनोद के चित्र हैं। उन्हें बालि-काओं के लए उपयुक्त बालगीतों के रूप में अपनाया जा सकता है।

टेसू और झांझी के इन गीतों के अतिरिक्त चट्टा के गीत भी बच्चों में बहुत प्रचलित हैं। भादों की शुक्ल पक्ष की चौथ या द्वादशी को चट्टे निकलते हैं। अलीगढ़ जिले के कुछ गाँव जो ब्रज के अन्तर्गत हैं उनमें 'इन्द्र द्वादशी' के नाम से एक उत्सव मनाया जाता है। चट्टा का सम्बन्ध चट शाला से है। उस दिन पाठशाला के सारे बच्चे अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर अध्यापक के साथ हर बच्चे के घर जाते हैं। माता पिता अध्यापक को दक्षिणा देते हैं और बच्चों को बताशे बाँटते हैं। यह गीत वास्तव में ऐसे हैं जिनमें बच्चों के मन की अपनी ही भावनायें और कल्पनायें व्यक्त मिलती हैं। उन्हें श्रेष्ठ बाल गीतों की श्रेणी में लिया जा सकता है। ब्रज का एक चट्टा गीत है—

उठ उठ री गोविंद की माँ।
भीतर से तू बाहिर आ॥
गढ़े गढ़ाये रुपया ला।
पंडिज्जी कूँ बागौ ला॥
मिसरानी कूँ तीहर ला।
चट्टनु कूँ बतासे ला॥
चट्टा दिंगे भौतु असीस।
बेटा हुंगे नौ सै तीस॥
इन बेटनु की भई सगाई।

इनकी नावें चाची ताई।
नौंचि नूँचि के लैं बलैया।
देरि होति है लाओ रुपैया॥

इस गीत का भाव कुछ उसी प्रकार का है जैसा 'हर गंगा' गाने वालों के गीतों में होता है। (बहुत रोज बीते जिजमान। अब तौ करौ दच्छिना दान)। पर हरगंगा और चट्टा के गीतों की मूल भावनाओं में बहुत अन्तर होता है। हरगंगा का उद्देश्य पैसे माँगना होता है चट्टा के गीतों का उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है।

ब्रज में गाया जाने वाला एक और चट्टे का गीत है—

एक नाऊ की नाइन खोटी।
एक चना में सोलह रोटी॥
नाऊ गया गूलर खान।
पकरि लिये चींटी के कान॥
छोड़ि छोड़ि मेरे जिजमान।
अब ना आऊँ गूलर खान॥

सब जानते हैं कि एक चने से सोलह रोटी नहीं बन सकतीं। पर बच्चे हंसी-हंसी में ऐसी कल्पना करके भी प्रसन्न हो सकते हैं। स्कूलों के बच्चे प्रायः आम अमरूद या जामुन के पेड़ों पर चढ़कर फल खाने का प्रयत्न किया करते हैं। इसलिए वह यह कल्पना भी आसानी से कर सकते हैं कि नाई गूलर खाने के लिए पेड़ पर चढ़ गया। साथ ही यह कल्पना करने में उन्हें बहुत आनन्द आता है कि पेड़ पर चढ़कर भी उसे गूलर खाने को नहीं मिले। इस भाव को उन्होंने 'चींटी ने कान पकड़ लिए' कहकर बहुत रोचक ढंग से व्यक्त किया है। गूलर के पेड़ पर चींटियाँ बहुत होती हैं। और वह जब किसी के चिपट जाती हैं तो काटती भी जोर से हैं। दूसरे जब बच्चे कोई शरारत करते हैं तो उनके कान भी पकड़े जाते हैं। इसलिए बच्चों की यह कल्पना बहुत स्वाभाविक है कि चींटी ने नाई के कान पकड़ लिए। कान पकड़ लिए जाने के बाद जैसे बच्चे उस काम को करना छोड़ देते हैं जिसके कारण कान पकड़े गये थे वैसे ही नाई भी प्रतिज्ञा कर लेता है कि अब गूलर खाने नहीं जायेगा। चट्टा के इस गीत की तुलना किसी भी श्रेष्ठ बालगीत से की जा सकती है।

इसी प्रकार यह चट्टा का गीत भी किसी श्रेष्ठ बालगीत के समकक्ष रक्खा जा सकता है—

एक चूही न मन में डरी।
उछरि सेठ की धोती परी॥
चूँ चूँ चूँ चूँ धोती करै।
बनिया धोती पकरे फिरै॥
जब बनिये ने दई बुहाई।
घर तें दौड़ बननी आई॥
हुआ सोर कोलाहल भारी।

भीर भई बनियन की सारी ॥
कोई लेवै सेर दुसेरी।
कोई ले पक्की पंसेरी।
कोई देवता सुमिरन लागे।
....
सबने मिल पंचायत कीनी।
बार फेर चूही कूँ दीनी ॥
आ चूही तू बाहर आ।
घी सक्कर का भोग लगा ॥
जब चूही ने दाँत दिखाये।
सात पाँच बनिया लुढ़िकाये ॥
जब चूही ने दयो झटोका।
खुल गई धोती चले पिटोका ॥
कूद फांद बिल में गई चूही।
कहन लगे अब हारी तू ही ॥

पर चट्टा के सभी बालगीत ऐसे ही मनोरंजक और बालोपयोगी नहीं हैं। उनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनका बच्चों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित बालगीग में बांझ स्त्रियों को यह सीख दी गई है कि वह अपने दुख के निवारणार्थ गनपति की पूजा करें। इसे बालगीतों की श्रेणी में नहीं लिया जा सकता——

बड़ भागिन जो होवै नारि।
चट्टा आये ताके द्वार ॥
हंसि मुस्काइ सबन तें बोलै।
रहसी फूली आँगन डोलै ॥
हमरे धन्य भाग त्रिपुरारी।
पूरन आसा भई हमारी ॥
ऐसे चट्टा नित नित आयें।
मन हमरे की कली खिलायें ॥
सेवा सब की करूँ बनाइ।
चिर जीवौ सबके लरिकाइ ॥
मन विचार हिय में अस बोलै।
पुत्र खुसी में सब तिय डोलै ॥
पुत्र दुक्ख जा तिय कूँ होय।
ताकी गति प्रभु जानें सोय ॥
सो तिय गनपति पूजन करै।
ताके सब दुख गनपति हरै ॥

विशेष उत्सवों पर गाये जाने वाले इन गीतों के अतिरिक्त लोकगीतों में बहुत से गीत ऐसे हैं जो लोक जीवन से सम्बन्धित हैं। बच्चे जिस वातावरण में रहते हैं उसकी भी कुछ न कुछ प्रतिक्रियायें उनके मन पर होती हैं। ब्रज में बनिया सदा से किसानों का शोषक रहा है। वह एक के बजाय दस पैसे सूद लेकर ऋणग्रस्त किसानों का शोषण करता है। अपने बड़ों के इस दुख को देखकर बच्चों के मन में बनिये के प्रति घृणा के भाव उठना स्वाभाविक है। ब्रज के कई बालगीतों में यह भाव व्यक्त हुए हैं। उनकी कुछ पंक्तियाँ यह हैं——

बरसौ राम बवै दुनिया।
खाय किसान मरै बनिया ॥

———

मंगल बारी परै दिवारी।
खाय किसान मरै व्यापारी ॥

———

बनिया बनैटा, गुर सैं चैंटा।
गुर न होय तौ मेरोई बेटा ॥

लोक गीतों की ऐसी पंक्तियों को भी बच्चे गली-गली दुहराते फिरते हैं। और उनसे भी बच्चों का मनोरंजन होता है। शिक्षा की दृष्टि से ऐसे गीतों को बच्चों के लिए श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। पर अपने रोष को इस प्रकार व्यक्त करके उनकी भावनाओं का परिष्कार अवश्य हो जाता होगा।

पारिवारिक जीवन की बहुत सी आशा निराशायें आकांक्षायें और आमोद प्रमोद की बातें भी बालोपयोगी लोकगीतों में बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त मिलती हैं। निम्नलिखित भोजपुरी लोकगीत इसका उदाहरण है——

चाँद मामू चाँद मामू हँसुआ दे, काहे ला ?
खरिया कटावेला से खरिया काहे ला,
अंगना छवावेला से अँगना काहे ला ?
गेहुंआ सुखावेला से गेहुँवा काहे ला,
पूड़िया पकावेला से पूड़िया काहे ला ?
भौजी के खियावेला से भौजी काहे ला ?
बेटवा जनमावे ला, से बेटवा काहे ला ?
गुल्ली डंडा टूट गेल, बऊआ रूस गेल।

चाँदनी रात में बच्चे आँगन में बैठकर इस गीत की पंक्तियों को झूम-झूम कर गाते हैं। वह चाँद से हँसिया माँगते हुए इशारा भी करते जाते हैं। इस गीत में खरिया कटाने, छप्पर छवाने, गेहूँ सुखाने, पूरी पकवाने, भौजी को खिलाने तथा पुत्र पैदा होने की पूरी कथा कहकर खेत से लेकर परिवार बसाने तक की कल्पना की गई है। प्रश्नोत्तर शैली में होने के कारण इसकी रोचकता और भी बढ़ गई है।

इसी प्रकार पारिवारिक जीवन में आमोद-प्रमोद के विषय पर ब्रज में भी अनेक लोकगीत बच्चों में प्रचलित हैं। बच्चों के सारे सम्बन्धियों में मौसी ही ऐसी होती है जिसके सामने वह सबसे अधिक खुलकर बात करते हैं। वह मौसी को अपनी माँ की ही तरह प्यार करते हैं। रोब के कारण माँ के सामने उन्हें कुछ संकोच भी हो सकता है पर मौसी यदि

उन्हें प्यार करती है तो वह उसके सामने सारी बातें खुलकर कह-सुन सकते हैं। मौसी को वह अपना मित्र भी समझ लेते हैं इसलिए उससे व्यंग विनोद की बातें करने में भी नहीं चूकते। बिल्ली को मौसी भी किसी ऐसे ही विनोद के समय में कहा गया होगा। मौसी से सम्बन्धित ब्रज का एक लोकगीत है—

मौसी मौसी, कुत्तन खौंसी ,
आये मौसा दै गये लात ।
बताये दे मौसी परू की बात ॥
बात गई कूआ में ।
मौसी जुरि गई जूआ में ॥

बच्चे जब इसे परिवार में गा-गाकर सुनाते होंगे तो सबको कितना आनन्द आता होगा और मौसी बेचारी को कैसा लगता होगा।

सामाजिक और पारिवारिक वातावरण के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्य और ऋतुओं का प्रभाव भी बच्चों के कोमल मन पर बहुत पड़ता है। बहुत से बालोपयोगी लोक-गीत उनकी प्रेरणा से लिखे हुए भी मिलते हैं। आकाश में जब जोर की आँधी आती है। सब कुछ तेज हवा में उड़ा जाता-सा दिखाई देता है तब ब्रज में बच्चों की टोली उस आँधी में बाहर निकल पड़ती है और निम्नलिखित गीत की पंक्तियाँ जोर-जोर से गाकर उस चढ़ी आँधी को उतार फेंकती है—

आँधी आई मेउ आयो ।
बड़ी बऊ को जेठु आयो ॥
चब्बे कुँ चबेना लायो ।
मारिबे कुँ पैना लायो ॥

इसी प्रकार जब कठिन शीत काल में सबेरे के समय लोग यह इच्छा करते हैं कि धूप निकले तो ब्रज के बच्चे निम्नलिखित पंक्तियाँ जोर-जोर से गाकर धूप को खींच कर बाहर निकाल ही लेते हैं—

सूज्ज सूज्ज घाम निकारौ ।
अपनी डुकरिया जाड़े मारौ ॥

शरत काल में सूरज की तरह ही बच्चों को चन्द्रमा बहुत प्यारा होता है। संसार की प्रत्येक भाषा में चन्द्रमा से प्रेरित होकर लिखे गए बालगीत मिलते हैं। लोकगीतों में भी बहुत सों में चन्द्रमा और चाँदनी का वर्णन है। उनमें बच्चों और चन्द्रमा को लेकर भाँति-भाँति की कल्पनायें भी की गई हैं। निम्नलिखित भोजपुरी लोकगीत की कल्पना बड़ी बाल स्वभावोचित और मधुर है—

चाँद मामू ओर आब बोर आव ।
नदिया किनारे आव ॥
सोना के कटोरिया में ,
दूध भात ले ले आव ।
बऊआ के मुँह में घुटुक ॥

बच्चे इस गीत को बहुत प्रसन्न होकर गाते हैं। खड़ी बोली हिन्दी में एक बिल्कुल ऐसा ही बालगीत पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध का लिखा हुआ मिलता है। उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

चन्दा मामा दौड़े आओ ।
दूध कटोरा भरकर लाओ ॥
उसे प्यार से मुझे पिलाओ ।
मुझपर छिड़क चाँदनी जाओ ।
...................।
...................॥
तू है मेरा चन्द खिलौना ।
मैं हूँ तेरा छुन्ना मुन्ना ॥

लोक गीतों में जितने बालगीत बच्चों के खेल-कूद या पाठशाला से सम्बन्धित मिलते हैं उतने अन्य किसी विषय पर नहीं। इसी से यह समझा जा सकता है कि बच्चों ने स्वयं अपने मनोविनोद के लिए उन्हें रचा होगा। यह भी सम्भव है कि समय-समय पर अनेक बच्चों के प्रयास से उन्हें वह रूप प्राप्त हो गया हो। बहुत से बच्चों को पाठशाला अपने घर से भी अधिक अच्छी मालूम होती है। वहाँ उन्हें साथ खेलने और मनमानी बातें करने के लिए बहुत से समवयस्क साथी मिलते हैं। मुहल्ले के बच्चों से भी उनका वैसा ही अपनापन होता है। इसलिए खेल-कूद और पाठशाला के गीतों में बच्चों के मनोभाव बहुत खुलकर व्यक्त होते हैं। और इस दृष्टि से उन्हें ही बच्चों के सबसे प्रिय बालगीत कहा जा सकता है। ब्रज के बालकों में निम्नलिखित बालोपयोगी लोकगीत बहुत प्रचलित रहा है। बच्चे इसे पाठशाला में पट्टियाँ (तख्तियाँ) सुखाते हुए जोर-जोर से चिल्लाकर गाते हैं।

सूखसूख पट्टी चन्दन गट्टी ,
राजा आयौ महल चुनायौ ।
महल के ऊपर झंडा गाड़ो ,
झंडा गयो टूट पट्टी गई सूख ॥

बच्चों के मन में जब आपस में मिलकर खेलने की उमंग उठती है तो वह उसे किस प्रकार व्यक्त करते हैं यह एक लोकगीत की इन पंक्तियों में देखने योग्य है—

चलौ बालिकौ खेलेंगे ,
कूआ में ढकेलेंगे ।
गुड़ की भेली फोरेंगे ॥

इन तीनों पंक्तियों के भावों में कोई पारस्परिक तारतम्य नहीं है। केवल यह भाव प्रकट होता है कि वह कुछ करना चाहते हैं। इसी प्रकार कबड्डी खेलते समय गाये जाने वाले एक लोकगीत की पंक्ति है—'अंगाछै-अंगाछै पानी में बबूला है।' इसका भाव भी सर्वथा अस्पष्ट है। एक दूसरे खेल के लोकगीत की पंक्तियाँ हैं—

झूँझुना झौराती पाती ।
मारूँ लात मुकाय बकैं हाथी ॥

इसमें लात मार कर हाथी को झुका देने की जो कल्पना की गई है वह बच्चे ही कर सकते हैं।

ब्रज के बालक-बालिकाओं का एक प्यारा लोकगीत 'अटकन बटकन' है। इसे बहुत से बच्चे मिल बैठकर गाते हैं। सब बच्चे एक घेरे में अपने-अपने हाथ पोरों के बल जमीन पर रखकर बै जाते हैं। और एक बच्चा बारी-बारी से अपनी एक उँगली सब के हाथों पर छुआता हुआ यह गीत गाता है। छोटे बालक बालिकायें दोनों इसे गाने में सम्मिलित होते हैं—

अटकन बटकन दही चटाके,
मन फूले बंगाले।
तुरई को मास मकोई को डंका ॥
......................।
....
मामा लायो सात कटौरी,
एक कटौरी फूटी।
मामा की बऊ रूठी।
काहे बात पै रूठी ॥
दही दूध भौतेरो।
खायबे कूँ मुँह टेढ़ौ ॥

इसी प्रकार एक भोजपुरी गीत भी बच्चों में बहुत लोकप्रिय है। इसे बच्चे चौथ चन्दे में गाते हैं। एक लड़के की आँखें बन्द कर दी जाती हैं। उसके माँ बाप सामने खड़े होते हैं। सब बच्चे गीत गाते हैं और गीत समाप्त होने पर माता-पिता खुश होकर उन्हें ईनाम देकर अपने बच्चे की पट्टी खुलवा देते हैं—

अंखियाँ लाल हो लौ रे बउआ।
कोठी पर के ढेबुआ उतार लाव बबुआ ॥
अपना माई के चोरिका उखाड़ लावबबुआ।
माई तोरी बहुत कठोर बाड़ी बबुआ ॥
तोरा दादी के दया न लागे हो बबुआ।
काहे अतना देरी लगावल हो बबुआ ॥
खड़े खड़े पइयाँ पिराय हो बबुआ।
कई जगह घूमे के बाटे हो बबुआ ॥
दोनों आँख के अच्छे हो बबुआ।
बुद्धिमान खूब होक हो बबुआ ॥

लोक गीतों में बच्चों के इन खेल कूद के गीतों में कुछ गीत ऐसे हैं जिन्हें बच्चे केवल आपस में एक दूसरे के सामने गाते हैं—

'बुआ पै चक्कू' 'मैं तेरौ कक्कू।'
'बुआ पै चटनी' 'तेरी माँ नटनी ॥'

या

पट्टी पै पट्टी पट्टी पै नोंनु।
पंडिज्जी मरि गै पढ़ावैगो कौनु ?

या

'राम राम' 'तुम्हारी बऊ हमारे गाम।'

इस प्रकार के गीत शिक्षा की दृष्टि से अनुपयोगी होते हैं। पर बच्चों का मनोरंजन करने के कारण बच्चों में प्रचलित बहुत जल्दी हो जाते हैं।

बच्चों को खेल खिलाकर प्रसन्न करने वाला एक अवधी लोकगीत भी अवध में बहुत प्रचलित रहा है। कोई वयस्क घर में या बाहर किसी खाट पर चित लेटकर दोनों घटनों को बराबर मोड़ लेता है। और टाँगों पर छोटे बच्चे को बैठाकर उसे झुलाते हुए इस गीत को गाता है—

खन्ता मन्ता लेई थै,
एक कौड़िया पाई थै।
गंगा में बहाई थै ॥
गंगा माई बालू दिहिन,
ऊ बालू हम भुजवाक दीन।
भुजवा हम्मैं लाई दिहेस.
ऊ लाई घस करवै दीन।
घसि करवा हम्मैं घास दिहेस,
ऊ घसिया हम गैया क दीन।
गैया हम्मैं दूध दिहिसि,
वहि दुधवा का खीर पकायऊँ।
खिरिया गै जुड़ाइ,
भैया गै कोहाँइ।
बहिनी गै मनावै,
चला भइया खाय ला,
भैया मारेन दुइ लात।

गीत के अन्त में खिलाने वाला 'पु लु लु लु लु' कहकर टाँगों को ऊपर उठाकर बालक को अपने मुँह पर गिराता है और उसका मुँह चूम लेता है। बड़े और बच्चे दोनों को एक साथ इस खेल में बहुत आनन्द आता है। और यह गीत उस आनन्द को सौ गुना कर देता है।

लोकगीतों में बालगीतों के इस प्रसंग को उन पहेलियों, ढकोसलों, कहावतों और मुकरियों के विषय में विचार किये बिना समाप्त नहीं किया जा सकता जो प्राचीन काल से बड़ों की तरह बाल समाज में प्रचलित रहकर बच्चों का मनोरंजन और ज्ञान वर्द्धन करती आई हैं। उनमें भावों का ऐसा चमत्कार देखने को मिलता है कि बच्चे उन्हें सुनकर एका-एक खिल उठते हैं। और तुरन्त याद कर लेते हैं। इनमें से पहेलियाँ बच्चों में सबसे अधिक प्रचलित हैं। यहाँ हम कुछ ऐसी पहेलियाँ प्रस्तुत करते हैं जो प्राचीन काल से बाल समाज में प्रचलित चली आई हैं—

सरर सरर सतरी सरकाने वाला कौन ?
सोता चली सासरे, मनाने वाला कौन ?

इस पहेली का उत्तर है 'नदी'। अनुप्रास का सहारा और सीता का रूपक देकर इसे कितना सुन्दर बना दिया है। इसी प्रकार की और भी कुछ पहेलियाँ हैं—

आस कस बार कस खदर को खूठो।
गाय छ मारकणी दूध छ मिठों ॥
(शहद का छत्ता)

दिल्ली ढूँढा मेरठ ढूँढ़ा और ढूँढ़ा कलकत्ता ।
एक अचम्भा ऐसा देखा फल के ऊपर पत्ता ॥
(मक्का)

कटोरे पै कटोरा ।
बेटा बाप से भी गोरा ॥
(नारियल)

एक खेत में ऐसा हुआ ।
आधा बगला आधा सुआ ॥
(मूली)

संध्या को पैदा हुई आधी रात जवान।
बड़े सबेरे मर गई घर हो गया मसान ॥
(ओस)

यह पहेलियाँ प्रायः दो-दो पंक्तियों की ही होती हैं। पर उनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो विस्तार से कही जाने के कारण बालगीत का-सा आनन्द देती हैं—

एक गिरा पट। दो दौड़े झट ॥
पाँच ने उठाया। बत्तिस ने खाया ॥
एक को भाया। चूस कर बहाया ॥
एक भर पाया। तो बैठ के गाया ॥
(आम)

तीन अक्षर का नाम हमारा।
रहूँ गाँव में सबसे न्यारा ॥
पहला अक्षर जभी हटाओ।
ब्राह्मण के हाथों में पाओ ॥
तिसरा अक्षर जभी हटाओ।
हलवाई के घर में पाओ ॥
दुसरा अक्षर जभी हटाओ।
साहब का बैरा बन जाओ ॥
(मैदान)

पैर नहीं पर चलती है।
नाप नाप कर चलती है ॥

कभी न राह बदलती है।
कभी न घर से टलती है ॥
दिन की उमर बिताती है।
दिन को खाती जाती है ॥
समय काटती चलती है।
काम बाँटती चलती है ॥
चेत कराती चलती है।
कभी न कहीं मचलती है ॥
(घड़ी)

जब से जनमे जब तक मरे।
सब के सिर पर आसन करे ॥
चाहे दिन हो चाहे रात।
गरमी जाड़ा या बरसात ॥
ओला गिरे कि आँधी चले।
कभी न उतरे सिर से तले ॥
लम्बा लम्बा होता चले।
रहे जागता सोता चले ॥
लोहे से जब चाँदी बने।
तब फिर दाम न कोई गने ॥
जब से जनमें जब तक मरे।
सब के सिर पर आसन करे ॥
(बाल)

पहेलियों में से बहुत-सी ऐसी हैं जिनके द्वारा ज्ञान विज्ञान की बातें बड़े सुन्दर ढंग से बच्चों को बता दी गई हैं। कुछ पहेलियाँ गणित सम्बन्धी भी हैं। जिन्हें सुनकर बच्चों को कुछ सोचना अवश्य पड़ता है पर उनकी गणित सम्बन्धी बुद्धि प्रखर अवश्य होती है। जैसे एक पहेली है—

लाख टका की सेर भर,
पैसे की कितनी ?

या एक दूसरी पहेली है—

तीतर के दो आगे तीतर।
तीतर के दो पीछे तीतर ॥
आगे तीतर पीछे तीतर ।
तो बतलाओ कितने तीतर ॥

इसे सुनकर साधारणतया प्रत्येक बच्चा सब तीतरों की संख्या जोड़ने में लग जायेगा। पर कुशाग्र बुद्धि बालक तुरन्त उत्तर देगा 'तीन तीतर'।

पहेलियों, मुकरियों, कहावतों और ढकोसलों में से बहुत सों में रोगों की दवायें, ऋतुओं में उपयोग की वस्तुएँ, खेती में काम आने वाली वस्तुएँ, पशु-पक्षियों की विशेषताएँ और

ज्योतिष ज्ञान सम्बन्धी बातें भी बताई गई हैं। उनमें से कुछ ऐसी भी हैं जिनके रचयिताओं के विषय में भी हमें थोड़ा बहुत इतिहास से ज्ञात हो सकता है। उनमें अमीर खुसरो सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। उनका जीवन काल संवत् १३१२ से संवत् १३८२ तक माना जाता है। वह उर्दू और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। जन साधारण की भाषा 'हिन्दवी' में तो उन्होंने मनोरंजन के लिए केवल थोड़ी-सी रचनायें की हैं। उनकी लिखी कुछ बहुत प्रसिद्ध पहेलियाँ निम्नलिखित हैं—

बाला था तब सब को भाया।
बड़ा हुआ तब काम न आया॥
खुसरो कह दिया उसका नाम।
अर्थ करो या छोड़ो गाम॥
(दिया)

सावन भादों बहुत चलत है माघ मास में थोरी।
अमीर खुसरो यों कहें तू बूझ पहेली मोरी॥
(मोरी)

बीसों का सिर काट लिया।
ना मारा ना खून किया॥
(नाखून)

एक कहानी मैं कहूँ तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परों के उड़ गया वह बाँध गले में सूत॥
(पतंग)

मुकरियाँ उन सरल मुक्तकों को कहते हैं जिनमें एक ही शब्द के दो अर्थों को लेकर कोई बात चमत्कारपूर्ण ढंग से कही जाती है। यह वास्तव में बच्चों के लिए ही लिखी नहीं होतीं पर सरल होने के कारण प्रायः बच्चों का भी मनोरंजन करती हैं। अमीर खुसरो की दो मुकरियाँ हम यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत करते हैं—

जब माँगू तब जल भर लावै।
मेरे तन की तपन मिटावै॥
मन का भारी तन का छोटा।
ऐ सखि साजन, ना सखि लोटा॥
बेर बेर सोवतहिं जगावै।
ना जागूँ तब काटे खावै॥
व्याकुल हुई मैं हक्की बक्की।
ऐ सखि साजन, ना सखि मक्खी॥

ढकोसला उन बेतुके मुक्तकों को कहते हैं जिनमें कुछ बेसिर पैर की अयुक्तिसंगत बातें इस ढंग से कही जाती हैं कि पढ़ने या सुनने वाला उनके बेतुकेपन से ही प्रसन्न हो उठता है। अमीर खुसरो का एक प्रसिद्ध ढकोसला है—

खीर पकाई जतन से, चरखा दिया चला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा॥

पहेलियों, मुकरियों और ढकोसलों के प्रमुख कवि अमीर खुसरो थे। स्वर्गीय पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इसी प्रसंग में लिखा है—'खुसरो की देखा-देखी खवासी खेरे के घासीराम, विगहपुर के पंडित और बासू की खगीनिया आदि ने भी पहेलियाँ लिखीं।' घासीराम की निम्नलिखित पहेली तो बहुत प्रसिद्ध हुई—

कारो है पर कौआ नाहिं।
रूख चढ़ै पर बन्दर नाहिं॥
मुँह को मोटो बिड़वा नाहिं।
कमर को पतलो चीता नाहिं॥
घासी कहैं खवासी खेरे।
है नियरे पर पइहौ हेरे॥
(चींटा)

घाघ भड्डरी और लालबुझक्कड़ आदि जन कवियों के नाम भी इनके लिखने वालों में प्रसिद्ध हैं। घाघ भड्डरी की अधिकतर कहावतें खेती-बाड़ी से सम्बन्धित या प्रकृति, पशु या बनस्पति जगत का ज्ञान कराने वाली हैं। लाल बुझक्कड़ की रचनायें विनोदपूर्ण होने के कारण जनता में बहुत प्रचलित हुईं। वह फर्रुखाबाद के रहने वाले थे और उनका असली नाम 'लाल' था। विशेष सूझ-बूझ वाले होने के कारण लोगों ने उन्हें बुझक्कड़ की पदवी दे दी थी। घाघ की देखा-देखी उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया था। घाघ की रचनायें तथ्य पूर्ण अधिक हैं पर उनकी रचनाओं में विनोद प्रधान है। इसलिए वह बच्चों को भी बहुत रुचिकर हुईं। उनके मुक्तक प्रसंग सहित पढ़ने या सुनने से बच्चों को बहुत आनन्द आता है। एक बार किसी गाँव में से एक हाथी निकल गया था। जमीन कुछ गीली होने के कारण हाथी के पाँवों के बड़े-बड़े गोल-गोल निशान बन गये थे। गाँव वालों ने हाथी कभी देखा नहीं था। वह उन निशानों को देखकर बहुत हैरान हुए और सोच में पड़ गए कि यह किस जानवर के पैरों के निशान हैं। आखिर लाल बुझक्कड़ यह बताने के लिए बुलाये गये उन्होंने देखते ही कहा—

लाल बुझक्कड़ बूझते और न बूझै कोय।
पाँव में चक्की बाँध के हिरना कूदा होय॥

इसी प्रकार एक बार किसी गाँव में एक पुराना कोल्हू पड़ा था। मिट्टी और काई से सना होने के कारण किसी की समझ में नहीं आता था कि वह क्या है। लाल बुझक्कड़ ने उसे देखते ही कहा—

लाल बुझक्कड़ बूझते वह तो है गुरू ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पड़ी खुदा की सुरमादानी॥

लोक गीतों में और भी बहुत-सी रचनायें ऐसी हैं जिनसे बच्चों का पर्याप्त मनोरंजन होता है। उन्हें सोचने समझने और कल्पना करने के लिए बहुत सामग्री उनसे मिल सकती है। उन्हें हम मुकरियों, पहेलियों या गीतों की परिभाषा में भी नहीं बाँध सकते। पर वह

उन्हीं की तरह रोचक होती हैं। धान और सत्तू की तुलनात्मक प्रशंसा से सम्बन्धित दो पंक्तियाँ हैं—

सत्तू मन मन्तू जब घोले तब खाये।
धान बिचारा भला, कूटा खाया चला ॥

सब जानते हैं कि धान यदि किसी के पास हों तो वह उनसे अपना पेट नहीं भर सकता। उन्हें खाने योग्य बनाने के लिए उन्हें कूट छान कर साफ करना और फिर पका या भून कर खाना पड़ता है। उन्हीं धानों से बने हुए सत्तू तुरन्त पानी में घोल कर खाये जा सकते हैं। पर इन पंक्तियों में कुशल जन कवि ने बात कहने के विचित्र ढंग मात्र से वह भाव उत्पन्न किया है जिससे ज्ञात होता है कि धान को तो तुरन्त खाया जा सकता है और सत्तू को खाने में बहुत देर लगती है।

इस प्रकार लोकगीत साहित्य पर विचार करने से ज्ञात होता है कि बाल साहित्य का बहुत बड़ा भंडार उनमें भरा पड़ा है। उसका समुचित संकलन और मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। बड़ों ने बड़ों के उपयोग में आने वाले गीतों के तो बड़े-बड़े संकलन किए हैं पर उनमें ही मिलने वाली बालोपयोगी रचनाओं की ओर अभी तक बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया। इन लोकगीतों में भी बाल साहित्य के सृजन की नई प्रेरणायें देने के लिए बहुत बड़ा खजाना छिपा है। यदि इस क्षेत्र में कार्य किया जाये और स्थान-स्थान पर घूम फिर कर गाँव-गाँव और गली-गली में बच्चों के मुँह से सुनी जा सकने वाली रचनायें एकत्रित की जायें तो वह बाल साहित्य के समुचित विकास में बहुत सहायक हो सकती हैं। और बड़े लोगों का यह भ्रम भी दूर हो सकता है कि हमारे देश में बाल साहित्य का अभाव है।

———

१५ : हिन्दी और अँग्रेजी बालगीतों का तुलनात्मक अध्ययन

बाल साहित्य प्रत्येक भाषा में जब से साहित्य की रचना प्रारम्भ हुई तभी से लिखा जाता रहा होगा क्योंकि बच्चे प्रत्येक सभ्य समाज के एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं और उनकी उपेक्षा किसी प्रकार से नहीं की जा सकती। भारतीय बाल साहित्य का इतिहास भी बहुत पुराना है। प्राचीन हिन्दी कविता के इतिहास में सूरदास हमें एक मात्र ऐसे कवि मिलते हैं जिन्होंने बच्चों की मनोभावनाओं के आधार पर सुन्दर गीत लिखे जिन्हें बालगीत भी कहा जा सकताहै ——

मैया, मैं नाहीं दधि खायो,
जान परै सब संग सखा मिल
मेरे मुख लपटायो।

पर खड़ी बोली हिन्दी में बालगीत साहित्य का इतिहास बिलकुल नया ही है। खड़ी बोली कविता के उन्नायक हिन्दी कवियों में सबसे पहिले पंडित श्रीधर पाठक ने विशेष रूप से बालगीत लिखने की ओर ध्यान दिया। उनका भी काव्य रचना काल लगभग सन् १८८० के बाद का ही है। पं० श्रीधर पाठक ने अंग्रेजी भाषा का पर्याप्त अध्ययन किया था और उन्होंने कई अंग्रेजी कविता पुस्तकों के काव्यानुवाद भी किए हैं। हिन्दी में आधुनिक शैली के बालगीत लिखने की प्रेरणा उन्होंने अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से ही मिली होगी।

अंग्रेजी में जिस प्रकार के बालगीत आज हम प्रचलित देखते हैं उनका इतिहास लगभग दो ढाई सौ वर्ष पुराना है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी का बालगीत साहित्य आयु में अंग्रेजी बालगीत साहित्य से कहीं अधिक छोटा है। साहित्य के लिए परम्परा का मूल्य बहुत होता है। जिस भाषा की साहित्यिक पृष्ठभूमि जितनी पुरानी और परम्परायें जितनी स्वस्थ होती हैं उनमें उतना ही श्रेष्ठ साहित्य लिखा जाता है। हिन्दी भाषा में अभी बड़ों के लिए लिखी जाने वाली कविताओं की ही पृष्ठभूमि सुस्थिर और स्वस्थ नहीं बन सकी है तो बालगीतों की पृष्ठभूमि के विषय में क्या कहा जाये? इसीलिए बालगीत के पारखी विद्वानों का यह मत है कि हिन्दी का बालगीत साहित्य अंग्रेजी बालगीत साहित्य की अपेक्षा बहुत नीरस तथा फीका है। किन्तु पिछली दो-तीन दशाब्दियों में जिस तेजी से हिन्दी बालगीत साहित्य का भण्डार भरा गया है उसे देखते हुए लोगों का यह अनुमान भी गलत नहीं है कि हिन्दी बालगीत साहित्य की हीनता के बारे में अब धारणा बदलना होगी।

अंग्रेजी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की अपेक्षा बहुत व्यापक रहा है। अंग्रेजी न केवल ब्रिटिश द्वीप समूह बल्कि अमरीका और योरुप तथा अन्य अनेक देशों में व्यापक रूप से बोली और पढ़ी-लिखी जाती रही है। जर्मनी, रूस, स्वेडेन, फ्रांस, आस्ट्रिया आदि अनेक देशों के बालगीतों का अनुवाद अंग्रेजी में हो चुका है और यदि अंग्रेजी भाषा की इस गर्वोक्ति में कोई सत्य है कि संसार की किसी भी भाषा में लिखी कोई पुस्तक अपने प्रकाशन के उप-

सात एक महीने के अन्दर अंग्रेजी भाषा में अनुवादित हो कर छप जाती है, तो और अनेक भाषाओं के बालगीत भी अंग्रेजी में अनुवादित हो चुके होंगे। हिन्दी भारत में भी उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उनके पास तक ही सीमित रही है। हिन्दी में हाँगकाँग, लन्दन या पेरिस की बातों के बारे में कोई बालगीत लिखने की बात किसी की कल्पना में भी नहीं आ सकती किन्तु अंग्रेजी में ऐसे बाल गीत हैं जिनमें चीन, अफ्रीका या भारत के रहने वाले मनुष्यों या वहाँ की वस्तुओं का वर्णन हो। अंग्रेजी का एक बालगीत है जो बम्बई के किसी मोटे व्यापारी के सम्बन्ध में लिखा गया है—

There was a fat man of Bombay
Who was smoking one sunshiny day
When a bird called a snipe
Flew away with his pipe
Which vexed the fat man of Bombay

(बम्बई का एक मोटा आदमी था। वह एक दिन धूप में पाइप पी रहा था। चाहा चिड़िया उसका पाइप लेकर उड़ गई। बम्बई का मोटा आदमी बहुत परेशान हो गया।)

बच्चों का संसार बड़ों के संसार से सर्वथा भिन्न होता है। वह जिस दृष्टि से संसार के नदी, पहाड़, आकाश, मैदान, चाँद, सितारों तथा अन्य वस्तुओं को देखते हैं उस दृष्टि से बड़े उन्हें नहीं देखते। अपने देश या समाज की परम्परागत मान्यताओं, दार्शनिक तथा राजनीतिक आदि विचारों के प्रति पूर्वाग्रह भी उनके मन में नहीं होते। उनके समय के बड़े जिन मान-मर्यादाओं या विश्वासों के आधार पर अपने जीवन को संचालित करते हैं वह भी उनके पास नहीं होते। उनकी दृष्टि में एक स्वाभाविक सरलता और मन में कौतूहल के भाव होते हैं। उनकी कल्पना की गति बहुत तीव्र होती है। बच्चों की दृष्टि और मन की इन विशेषताओं को देखते हुए संसार के सारे बच्चे एक ही प्रकार के दिखाई देंगे। उनकी स्वाभाविक सरलता, कौतूहल, जिज्ञासा की भावना और कल्पना में व्यक्तिगत रूप से अन्तर होते हुए भी कोई जातिगत या देशगत अन्तर नहीं होता। इसलिए भाषा का भेद यदि न हो तो एक देश के बच्चे दूसरे देश के बच्चों के लिए लिखित बालगीतों में समान रस लेकर उनसे अपना मनोरंजन कर सकते हैं। चाँद को देखकर संसार के सब देशों के बच्चे अपने मन में कुछ न कुछ कल्पनायें करते हैं। अंग्रेजी का एक बालगीत है—

Oh ; look at the Moon
She is shining up there
Oh ; Mother She looks Like a lamp in the air
Last week she was smaller
And shaped like a bow
But now she's grown bigger
And round as an O.
Pretty Moon Pretty Moon
How you shine on the door
And make it all bright
On my nursery floor.

You shine on my play things
And show me their place
And I love to look at
Your pretty bright face.
And there is a star
Close by you and may be
That small twinkling star
Is your little baby

(अरे चांद को देखो। वह वहाँ चमक रहा है। ओ, माँ वह हवा में एक लैम्प की तरह दिखाई देता है। पिछले सप्ताह वह छोटा था! और धनुषाकार था। पर अब वह बड़ा हो गया है। और 'ओ' की तरह गोल है। सुन्दर चांद तुम द्वार पर कैसे चमकते हो। मेरे बालकक्ष को दिखा देते हो। तुम मेरे खिलौनों पर चमकते हो और मुझे वह दिखा देते हो। मुझे तुम्हारे सुन्दर और चमकदार मुखड़े को देखना अच्छा लगता है। और वहाँ तुम्हारे पास ही एक तारा है। हो सकता है वह छोटा चमकदार तारा तुम्हारा नन्हा मुन्ना हो।)

चाँद के विषय में जितनी कल्पनायें इस बालगीत में की गई हैं या जितनी बातें उसके विषय में कही गई हैं उनमें से एक भी ऐसी नहीं जिसे किसी विशेष देश या जाति के बच्चे ही कह सकें। संसार में सब देशों और सब जातियों के बच्चे इस प्रकार की कल्पनायें और बातें स्वाभाविक रूप से कर सकते हैं। बच्चों के मन में चन्द्रमा के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण होता है। वह उसे पकड़ कर अपने पास रख लेना चाहते हैं। सूरदास ने अपने एक पद में बाल कृष्ण के हाथ उठाकर चन्द्रमा को माँगने का बड़ा रोचक वर्णन किया है।

चाँद के प्रति बच्चों का यह आकर्षण जब तक धरती और चाँद है सदा रहेगा। चाँद का घटना और बढ़ना भी बच्चों के लिए अत्यन्त कौतूहलजनक होता है। उपर्युक्त अंग्रेजी बालगीत के दूसरे छन्द में इस कौतूहल की अभिव्यक्ति है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि दिनकर ने चन्द्रमा का कुर्ता शीर्षक से एक बालोपयोगी कविता लिखी है। उसमें चन्द्रमा को एक ऐसे बालक का रूप दिया है जिसका शरीर कभी एक-सा नहीं रहता। सदा घटता-बढ़ता रहता है। वह बालक अपनी माता से एक कुर्ता सिला देने के लिए कहता है और उसकी माँ उसे उत्तर देती है कि तेरा शरीर तो सदा घटता-बढ़ता रहता है तुझे एक कुर्ता सिला कर देने से क्या होगा? इस कविता की कल्पना अत्यन्त मधुर है पर इस बालगीत की कल्पना को संसार के सब देशों के बच्चों के मन की सरल स्वाभाविक कल्पना नहीं कहा जा उकता। चाँद के पास तारे को देखकर तो प्रत्येक बच्चा उसे चाँद का बच्चा समझ सकता है पर चन्द्रमा के कुर्ता पहनने की कल्पना वही बच्चा कर सकता है जिसने जीवन मेंकोट पतलून के स्थान पर कुर्ता धोती के महत्व को समझा है।

चन्द्रमा के समान ही आकाश के तारों को भी संसार के बच्चे अत्यन्त कौतूहल से देखते हैं और तरह-तरह की कल्पनाएँ अपने मन में करते हैं। एक अंग्रेजी बालगीत है—

Twinkle twinkle little star
How I wonder what you are
Up above the world so high
Like a diamond in the sky.

When the blazing sun is gone
When he nothing shines upon
Then you show your little light
Twinkle twinkle all the night.

(नन्हें तारे चमको ! चमको ! मुझे आश्चर्य है तुम क्या हो ? दुनिया के ऊपर इतने ऊँचे पर हीरे की तरह आकाश में चमक रहे हो। जब चमकदार सूर्य चला जाता है। जब वह किसी पर चमक नहीं दिखाता तब तुम अपना नन्हां प्रकाश दिखाकर सारी रात चमकते रहते हो।)

इस बालगीत में अभिव्यक्त कल्पना किसी विशेष देश या जाति के बच्चों की नहीं बल्कि संसार के सब बच्चों की कल्पना हो सकती है। हिन्दी में तारे शीर्षक से डा० सुधीन्द्र का एक बालगीत है—

ओ, किसने गिरा दिए हैं यह मधुर दही के छींटे।
धो अम्मा इन्हें नहीं तो आते ही होंगे चींटे॥
फैला दी ऊपर किसने मेरी दादी की साड़ी।
है किसने वहाँ लगाई सुन्दर फूलों की बाड़ी॥
यह चन्दा मामा देखो छिप फूल तोड़ने आया।
छिप छिप कर चोरी करना किसने है इसे सिखाया॥
किसने बिखेर डाले ये मेरे अनार के दाने।
चिड़ियों ने यदि देखा तो वह आ जायेंगी खाने॥ इत्यादि

इस बालगीत में तारों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की नई-नई कल्पनायें की गई हैं। बड़ों के साहित्य में यह उत्प्रेक्षा अलंकार कहलाता है पर यह सब उत्प्रेक्षायें या बच्चों की भाषा में कल्पनायें बच्चों के मन की अपनी नहीं कहला सकतीं। इनमें से कई तो कवि ने अपना सिर खुजला कर बड़े यत्न से सोच कर प्रस्तुत की हैं। इसीलिए इस बालगीत में वह स्वाभाविक सार्वभौमिकता नहीं जो अंग्रेजी के उपरोक्त बालगीत में है।

बालगीतों की भावनाओं और कल्पनाओं में होने वाली सार्वभौमिक एकरूपता के साथ-साथ यह भी एक महान सत्य है कि बालगीत सदा अपने देश और भाषा की विशेष परिस्थितियों की प्रेरणा से लिखे जाते हैं। बच्चों का ज्ञान अपने आस-पास की वस्तुओं तक ही सीमित होता है इसीलिए घरेलू जानवर कुत्ता, बिल्ली, चूहा, गाय, बकरी, घोड़ा, खिलौना और खाने पीने की वस्तुयें बालगीतों के प्रिय विषय होते हैं। जिन दूर की वस्तुओं को उन्होंने कभी देखा नहीं या जिन विषयों से उनका कोई परिचय नहीं होता उन पर लिखे बालगीत वह पसन्द नहीं कर सकते। परिचित वस्तुओं में भी खेलने, खाने, पीने की वस्तुओं में ही उनकी विशेष रुचि होती है पर खाने-पीने की वस्तुयें सब बच्चों की अपनी-अपनी अलग-अलग होती हैं। कहावत है कि जो एक व्यक्ति के लिए अमृत है दूसरे के लिए विष। इसी प्रकार जनसमूहों और जातियों, देशों के खान-पान में अन्तर होता है। अंग्रेज बच्चे सुअर और चिड़ियों का मांस बड़े स्वाद से खाते हैं अतएव बालगीतों में उनका वर्णन पढ़-सुन कर उनके मुँह में पानी आता हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। अंग्रेजी में एक बालगीत है—

Sing a song of six pence
a pocket full of rye

Four and twenty black birds
baked in a pie.
When the pie was opened
the birds began to sing
Wasn't that a dainty dish
to set before the King

(गाओ, छः पाई का गीत। एक जेब जौ से भरी हुई। चौबीस काली चिड़ियें एक तन्दूर में भुनी हुई। जब तन्दूर खोला गया, चिड़ियें गाने लगीं। वह क्या राजा के सामने प्लेट में रखने योग्य एक स्वादिष्ट खाना नहीं थीं।)

इस बालगीत में जो २४ काली चिड़ियों को एक साथ सेंक कर पकाने का वर्णन है वह अंग्रेज बच्चों को रुचिकर लग सकता है क्योंकि वह भुना हुआ मांस बड़े स्वाद से खाते हैं। पर वह भारतीय बच्चे जिनके परिवारों में मांस कभी नहीं खाया जाता और जो मांस के नाम से ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं अपने किसी बालगीत में इस प्रकार की कल्पना को पसन्द नहीं कर सकते। उन्हें तो अपने यहाँ के दूध जलेबी, दूध बतासा, मक्खन मिसरी या रसगुल्ला चम-चम ही अधिक प्रिय लग सकते हैं। इसी प्रकार जिन देशों में खूब फल-फूल, पौधे, वृक्ष और हरियाली होती है वहाँ के बच्चे उन्हीं से सम्बन्धित बालगीत अधिक पसन्द करते हैं। पर्वतीय प्रदेश के बच्चों को वहाँ के विशेष स्थानों, झरनों और पहाड़ियों से सम्बन्धित बालगीत पसन्द आते हैं और सागर तट के निवासी बच्चे सागर की लहरों, मछलियों, जीव-जन्तुओं और जहाजों से सम्बन्धित बालगीत अधिक पसन्द करते हैं।

इंग्लैण्ड एक छोटा सा देश है वहाँ जाड़ा बहुत पड़ता है, ठंडी हवायें चलती हैं, कुहरा और बर्फ गिरती है। भारतवर्ष की तरह जाड़ों में भी खिली सुनहली धूप और गर्मी की अधिकता से उत्पन्न व्याकुलता, लू लपटों और काली-पीली आँधियों के अनुभव वहाँ के बच्चों को नहीं होते। वर्षा ऋतु में वहाँ के लोग अपने घर के बन्द कमरों में छिप कर अंगीठी के सहारे बैठने में सुख का अनुभव करते हैं। वहाँ के बच्चे वर्षा को पसन्द नहीं करते क्योंकि वर्षा होने से ठण्ड बढ़ जाती है और बाहर आजादी से उछल-कूद कर खेलने-फिरने वाले बच्चों को बन्द कमरों में घिर-बंध कर बैठना पड़ता है। एक अंग्रेजी बालगीत में बच्चा बूँदों से कहता है—

Where do you come from
You little drops of rain
Pitter patter, pitter patter
Down the window pane.
They won't let me walk
And they won't let me play
And theywon't let me go
out of doors all today.
They say I am very naughty
But I have nothing else to do

But sit here at the window
I should like to play with you

(नन्हीं वर्षा की बूंदों ! तुम कहाँ से आती हो ? टप टप टप टप खिड़की के शीशे पर गिरती हो। वे मुझे खेलने या घूमने नहीं देंगे। वह कहते हैं मैं बहुत नटखट हूँ। यहाँ खिड़की पर बैठे रहने के अलावा मुझे कोई काम नहीं है। मैं तुम्हारे साथ खेलना चाहता हूँ।)

एक दूसरे बालगीत में वह वर्षा से वापिस चले जाने को कहता है—

Rain Rain go away
Come again another day
Little Johny wants to play.

(वर्षा ! वर्षा ! दूर चली जा फिर किसी दिन यहाँ आना छोटा जाँनी खेलना चाहता है।)

किन्तु अंग्रेज बच्चों की तरह भारतीय बच्चे इस प्रकार मेघ को दुत्कारते नहीं। वह आए हुए मेघों का स्वागत-सत्कार ही नहीं करते उन्हें तरह-तरह से प्रसन्न करके बुलाते हैं। कृषि प्रधान देश भारत के किसानों की तो आशा का केन्द्र बादल हुआ करता है। बच्चों के खेल-कूद और घूमने-फ़िरने में बादलों के आने या वर्षा होने से कोई बाधा नहीं पड़ती। वह तो वर्षा होते समय और भी खुशी से बागों, अमराइयों और मैदान में उछलते-कूदते चिल्लाते फिरते हैं—'कारे मेघा पानी दे।' भारतीय बच्चे तो मेघों को देखकर यही कह सकते हैं—

बरसो राम धड़ाके से।
बुढ़िया मर गई फाके से॥
गर्मी पड़ी कड़ाके की।
नानी मर गई नाके की॥
घबराई मछली रानी।
देख नदी में कम पानी॥
पेड़ों के पत्ते सूखे।
धोबी के लत्ते सूखे॥
जब सब मिलकर चिल्लाये।
घुमड़ घुमड़ मेघा आये॥
ओले बरसे टप टप टप।
सब ने खाये गप गप गप॥

वर्षा के बादल, फुहारें, बूँदों के रिम-झिम संगीत; नदी, नाले, सरोवर और हरियाली जिस रूप में भारतीय बच्चों के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति देने वाले होते हैं उसी तरह इंग्लैण्ड के बच्चों के लिए नहीं। भारतवर्ष के बच्चे सन्ध्या के समय आकाश में इकट्ठे बादलों को देख कर हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ, मकान, पहाड़ और तरह-तरह की वस्तुओं के चित्र उनमें देखा करते हैं। इंग्लैण्ड के बच्चों के लिए इस प्रकार कल्पना की स्वच्छन्द उड़ानें भर सकना सम्भव नहीं।

भारतवर्ष और इंग्लैण्ड की चाँदनी में भी अन्तर है। भारतवर्ष में शरद पूर्णिमा और चैत की चाँदनी में लोगों के हर्षोत्सव जिन्होंने देखे हैं उन्हें इंग्लैण्ड के कुहरे से ढकी और जाड़ों की ठण्डी रातों में सिहरती हुई चाँदनी अत्यन्त फीकी और उदास मालूम होगी। यहाँ चाँदनी में बच्चे जिस उल्लास और प्रसन्नता से दूर-दूर मैदानों और गलियों में खेलते फिरते हैं वैसे ही खेलते हुए इंग्लैण्ड के बच्चे कभी नहीं मिलेंगे। इसलिए चन्द्रमा और चाँदनी भारतवर्ष में बालगीतकारों के जितने अधिक प्रेरणा के विषय रहे हैं उतने इंग्लैण्ड के बच्चों के कवियों के लिए नहीं। हिन्दी में चन्द्रमा और चाँदनी से सम्बन्धित सबसे अधिक बाल गीत लिखे हुए मिलते हैं।

इंग्लैण्ड के लोग साल के बारहों महीने गर्म कपड़े पहनते हैं। ओवर कोट और बर्फ-तथा कुहरे से सिर की रक्षा करने वाले हैट के बिना वहाँ के लोगों का काम ही नहीं चल सकता। भारतवर्ष में गर्मी के मौसम में शरीर पर बनियान भी एक असह्य भार मालूम होने लगती है और सिर पर गांधी टोपी जैसी हल्की टोपी भी लगाये रहने को जी नहीं करता। नंगे पैर सड़कों पर घूमने की बात तो इंग्लैण्ड वाले कभी सोच ही नहीं सकते। इंग्लैण्ड के रहने वालों के लिए गर्म कपड़े—ऊन और भेड़ का जितना महत्व है उतना भारतवर्ष के रहने वालों के लिए सूती कपड़ों और रूई कपास का नहीं। अंग्रेजी में इसीलिए भेंड़ कविता का प्रिय विषय है और उससे सम्बन्धित बहुत से सुन्दर बालगीत अंग्रेजी में लिखे गए हैं पर हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में भेंड़ का उतना महत्व नहीं। अंग्रेजी में भेंड़ पर लिखा गया यह बालगीत तो बच्चों को बहुत पसन्द है—

Baa ! Baa ! Black sheep ! have you any wool
Yes, sir, Yes, sir three bags full
One for my master and one for my dame
But none for the little boy who cries in the lane.

'बा ! बा ! काली भेड़ क्या तुम्हारे पास कुछ ऊन है ?'

'हाँ ! हाँ ! जनाब तीन थैले भरे हुए। एक मेरे मालिक के लिए एक मालकिन के लिए किन्तु उस छोटे लड़के के लिए भी नहीं जो गली में चिल्लाता है।

इंग्लैण्ड का पारिवारिक जीवन व्यक्तिवादी है। प्रत्येक युवक विवाह के बाद अपना एक अलग परिवार बसाता है। वहाँ परिवार पति पत्नी और उनसे उत्पन्न छोटे बच्चों तक ही सीमित समझा जाता है पर भारतवर्ष में चाचा के ताऊ के लड़के के लड़के के दादा, परदादा या लक्कड़ दादा तथा दादी की नानी की बहिन की लड़की की लड़की तक सभी एक परिवार के अंग माने जाते हैं। इंग्लैण्ड का किसान अपने खेत के बीच में ही अपना अलग घर बनाकर रहता है पर भारतवर्ष के किसान अपने खेतों से दूर एक बस्ती में रहते हैं जिसे गाँव कहते हैं। टेढ़े तिरछे मकानों के बीच की गाँव की संकरी गलियाँ जिनमें बच्चे सन्ध्या समय लुका छिपी, ढोल ढप्पा, शाह चोर या बन ती ती ती खेला करते हैं और वह पनघट जहाँ साँझ सबेरे ग्रामीण बालिकायें घट कलश लिए आ एकत्रित होती हैं इंग्लैण्ड के लोगों के लिए यथार्थ सत्य नहीं हो सकते। देश और जातिगत इस प्रकार की विशेषताएँ साहित्य को प्रभावित करती हैं और बाल साहित्य भी उस प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता।

बृटिश द्वीप समूह जिसका एक भाग इंग्लैण्ड है सब ओर से समुद्र से घिरा है इसलिए वहाँ के लोगों में सामुद्रिक यात्रा और उससे सम्बन्धित बातों के प्रति स्वभावतः आकर्षण होता है अंग्रेजी में अनेक बालगीत इन विषयों पर लिखे हुए हमें मिलते हैं। एक ऐसा ही बालगीत है—

I saw a ship a sailing
A sailing on the sea
And oh! it was laden
With pretty things for thee
There were comfits in the cabin
And apples in the hold
The sails were made of silk
And the mast was of gold
The captain was a duck
With a packet on his back
And when the ship began to move
The captain said 'Quack, Quack'

मैंने एक जहाज समुद्र पर तैरते हुए देखा। वह तेरे लिए सुन्दर चीजों से लदा हुआ था। उसके केबिन में मिठाइयाँ थीं। और पेंदी के कमरे में सेब थे। उसके पाल सिल्क के बने थे। और मस्तूल सोने का बना था। उसका कैप्टेन एक बत्तख था। उसकी पीठ पर एक पैकेट था। जब जहाज चलने लगा तो कैप्टेन ने क्वैक, क्वैक कहा।

हिन्दी में इस प्रकार के सामुद्रिक जीवन के अनुभवों से प्रेरणा पाकर लिखे गए बालगीतों का सर्वथा अभाव है। भारतवर्ष का दक्षिणी भू भाग भी तीन ओर से समुद्र से घिरा है पर हिन्दी जहाँ बोली और समझी जाती रही है वह उत्तरी भू-भाग समुद्री तट से बहुत दूर है। हिन्दी में बहुत खोजने पर केवल एक बालगीत "सागर" श्री रामावतार चेतन का लिखा हुआ मिलता है, उसे भी वह शायद समुद्र तट पर स्थित बम्बई में रहने के कारण ही लिख सके—

सागर दादा सागर दादा।
नदियों झीलों के परदादा ॥
तुम नदियों को पास बुलाते।
ले गोदी में उन्हें खिलाते ॥
झीलों पर भी स्नेह तुम्हारा।
हर तालाब तुम्हें है प्यारा ॥
जब जब यह दुर्बल हो जाते।
तुम इनको जीवन पहुँचाते ॥ इत्यादि

इस बालगीत की कल्पना वही पुरानी और सागर तट से दूर के निवासियों के इस ज्ञान पर आधारित है कि सागर का जल भाप के रूप में बादल बन कर आकाश में जाता है और सबको जीवन दान देता है।

इंगलैण्ड और भारतवर्ष की परिस्थितियों की इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत के लोगों के कुछ वैसे अनुभव भी हैं जैसे इंगलैण्ड के निवासियों को होते हैं। भारतवर्ष एक बहुत विशाल देश है। उसमें भौगोलिक दृष्टि से वह परिस्थितियाँ भी विद्यमान हैं जैसी इंगलैण्ड में हैं। समुद्र तट यहाँ के लोगों के लिए अपरिचित नहीं। यहाँ ऐसे पर्वतीय प्रदेश भी हैं जहाँ ठण्ड, बर्फ, कुहासे और कुहरे का अनुभव लोगों को उसी प्रकार से होते हैं जैसे इंगलैण्ड के लोगों को। ऐसे लोगों की भी यहाँ कमी नहीं है जो रहन-सहन, सभ्यता, शिष्टाचार में इंगलैण्ड निवासियों से किसी प्रकार कम हों। अंग्रेजी स्कूलों और उनमें भेजे जाने वाले बच्चों की संख्या भी शहरों में कम नहीं। ऐसे लोग भी पर्याप्त संख्या में विद्यमान हैं जो मांस खाने में कोई संकोच नहीं करते। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से हिन्दी भाषा का विस्तार अब तीव्रता से अपनी सीमाओं के बाहर उन प्रदेशों में हो रहा है जहाँ वह अभी तक नहीं पहुँची थी। अतएव, यह आशा की जा सकती है कि वह सब अनुभव भी अब हमें हिन्दी बालगीतों में अभिव्यक्त मिलने लगेंगे जो अभी तक नहीं मिलते थे।

भारतवर्ष एक धर्म भावनाप्रधान देश रहा है अतएव इस देश के बालगीत साहित्य में विनय और प्रार्थना के पदों की जितनी बहुलता रही उतनी अंग्रेजी बालगीत साहित्य में नहीं। 'हे प्रभो आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिए' 'विनती सुन लो हे भगवान। हम सब बालक हैं नादान।' 'हम बालक हैं शरण तुम्हारी' इत्यादि इत्यादि बहुत से विनय बालगीत हिन्दी में लिखे गये हैं। हिन्दी कवियों ने शिक्षा के अन्तर्गत ही बालगीतों का महत्व स्वीकार किया है। अतएव जो बालगीत बच्चों को कुछ न कुछ शिक्षा नहीं देते या उनके चरित्र का निर्माण नहीं करते उन्हें बड़ों द्वारा अनुपयोगी और निरर्थक समझ कर बच्चों के हाथों में भी नहीं पहुँचने दिया गया। हिन्दी के प्राचीन बालगीतकारों के लिखे साहित्य में बहुत से सुन्दर बालगीत ऐसे हैं जो बच्चे बहुत पसन्द कर सकते हैं पर जो अपनी-अपनी जगह दबे छिपे पड़े हैं और कोई उनकी ओर ध्यान भी नहीं देता।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना और संगठन के विचार ने हिन्दी बालगीत साहित्य के विकास को बहुत प्रभावित किया है। भारतवर्ष के पिछले सौ वर्षों का इतिहास राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास है इसलिए इस समय के बड़ों ने अपना यह पावन कर्तव्य समझा कि वह साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावनायें बच्चों में जागृत करें। इस समय के जिन भी बड़े-बड़े कवियों ने बालगीत रचने की ओर ध्यान दिया, उन्होंने कुछ न कुछ राष्ट्रीय बालगीत अवश्य लिखे। उदाहरण के लिए देखिए—

जहाँ जन्म देता हमें है विधाता।
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता ॥
जहाँ हैं हमारे पिता बन्धु माता।
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता ॥

(कामता प्रसाद गुरु)

जन्म दिया माता सा जिसने,
किया सदा लालन पालन।

जिसके मिट्टी जल से ही है,
बना हुआ हम सब का तन ॥

(मन्नन द्विवेदी गजपुरी)

जय जय भारत माता।
तेरा बाहर भी घर जैसा रहा प्यार ही पाता ॥
ऊँचा हिया हिमालय तेरा उससें कितना दरद भरा।
फिर भी आग दबा कर अपनी रखता है वह हमें हरा ॥
सौ सोतों से फूट फूट कर पानी फूटा आता ॥

(मैथिली शरण गुप्त)

वह मातृ भूमि मेरी।
वह पितृ भूमि मेरी ॥
वह पुण्य भूमि मेरी।
वह स्वर्ग भूमि मेरी ॥

(सोहनलाल द्विवेदी)

बच्चों के हृदय में राष्ट्रीय भावना भरने के विचार से ऐसे गीतों की बहुत उपयोगिता है इसमें सन्देह नहीं। अंग्रेजी बालगीत साहित्य में ऐसे गीत खोजने पर भी नहीं मिलते पर यह विनय या राष्ट्रीय बन्दना के गीत वास्तव में बालगीत हैं भी या नहीं यह एक अलग विचारणीय प्रश्न है। बड़ों ने उन्हें बच्चों को अपने विचारों के अनुसार विनयशील या राष्ट्र से प्रेम करने वाला बनाने के उद्देश्य से लिखा है। उनमें बच्चों की स्वाभाविक रुचियों, मनोभावनाओं और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है। इनमें से बहुत से गीतों की तो भाषा भी बालोपयोगी नहीं है।

अंग्रेजी में बालगीत रचना का सबसे प्रमुख उद्देश्य बच्चों का मनोरंजन माना जाता है। जिन गीतों से बच्चे प्रसन्न नहीं होते उनसे वह सीखेंगे क्या? अंग्रेजी बालगीतों जैसी रोचकता का हम हिन्दी बालगीतों में अभाव पाते हैं। हिन्दी के कम ही बालगीतों को हम ऐसे पाते हैं जिन्हें रोचकता की दृष्टि से अंग्रेजी बालगीतों के समकक्ष रक्खा जा सके फिर भी ऐसे बालगीत बिल्कुल हैं ही नहीं ऐसा सोचना हमारे अपने अज्ञान के कारण हो सकता है। एक पुराना हिन्दी बालगीत देखिए—

झूम हाथी झूम हाथी।
राजा झूमें रानी झूमें झूमें राज कुमार।
घोड़ा झूमें फौजें झूमें झूमें सब दरबार ॥
हाथी झूम झूम झूम हाथी घूम घूम घूम ॥
धरती घूमे बादल घूमे घूमे चाँद सितारे।
चुनिया घूमे मुनिया घूमे घूमे राज दुलारे ॥
हाथी झूम झूम झूम हाथी घूम घूम घूम ॥
राज महल में बाँदी झूमे पनघट पर पनिहारी ॥
पीलवान का अंकुस झूमे सोने की अम्बारी ॥
हाथी झूम झूम झूम हाथी घूम घूम घूम ॥

इस बालगीत में कोई शिक्षा या उपदेश न होते हुए भी यह छोटे बच्चों के मनोनुकूल उनका प्रिय भाव गीत है। बच्चों का स्वभाव होता है कि वह प्रायः निरर्थक ही झूम झूम कर और घूम घूम कर खेला करते हैं। हाथी उनके झूमने का प्रतीक है। बड़ों की कहावत में भी हाथी की तरह झूमना और गजगामिनी की चाल प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष के बच्चों ने हाथी देखा है, वह यह भी जानते हैं कि झूम झूम कर चलने वाले हाथी को किस प्रकार अंकुश मार कर मोड़ा और घुमाया जाता है। इस बालगीत में बच्चों के झूम झूम कर घूमने के मनमाने खेल का वर्णन इतने सुन्दर रूप में किया गया है कि इसे पढ़ते ही वह झूमने और घूमने के सुख का अनुभव करने लगते हैं। राजा-रानी, राजकुमार, घोड़ा, दरबार इत्यादि जिनके नाम इन घूमने वालों में लिए गए हैं वह सब बच्चों की दादी-नानी की कहानियों में बहुतायत से सुने गये हैं। धरती, बादल और चाँद सितारों के घूमने से एक वैज्ञानिक सत्य का ज्ञान भी उन्हें हो जाता है। पूरे गीत में कोई भी बात ऐसी नहीं जो बच्चों की अपनी समझ के बाहर की बात हो और इस बालगीत की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि यह खेल-खेल में दुहराते हुए संगीत के स्वरों में गाया जा सकता है।

श्रेष्ठ बालगीतों के सबसे प्रमुख गुण यह हैं कि वह बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा और कौतूहल की प्रवृत्ति को जगाने वाले, कल्पना को विकसित तथा भावना को परिष्कृत करने वाले हों। जिज्ञासा और कौतूहल की प्रवृत्ति के जागृत होने से बच्चों की जानकारी और उनकी विवेक बुद्धि बढ़ती है। कल्पना के विकसित हुए बिना तो जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्हें सफलता मिल ही नहीं सकती और जो बालगीत भावनाओं का परिष्कार नहीं कर सकते उनका लिखना न लिखना एक बराबर है। बालगीतों में यदि यह सब गुण विद्यमान हैं तो शिक्षा और ज्ञानोपदेश की बातों से रहित होते हुए भी बच्चों के विकास में उनका बहुत उपयोग हो सकता है।

अंग्रेजी में ऐसे बालगीत बहुतायत से मिलते हैं जो बच्चों की जिज्ञासा को बड़े सुन्दर ढंग से जागृत करने वाले हैं। बहते हुए पानी की धार को देखकर प्रत्येक बच्चा यह जानने की इच्छा करता है कि यह धारा बहकर जा कहाँ तक रही है। इसी का चित्रण अंग्रेजी के इस बालगीत में किया गया है। बालक नदी को लक्ष्य करके कहता है—

You run on so fast
I wish you would stay
My boat and my flowers
You will carry away.
But I will run after
Mother says that I may
For I would know where
You are running away.

(तुम इतनी तेज दौड़ती हो। मैं चाहता हूँ तुम ठहरो। मेरी नाव और मेरे फूल तुम ले जाओगी। पर मैं पीछे दौड़ूंगी। माँ कहती हैं मैं दौड़ूं तभी जान जाऊंगी तुम दौड़कर कहाँ जा रही हो।)

कौतूहल और जिज्ञासा की भावना यह आवश्यक नहीं कि किसी विशेष विषय को ही लेकर बच्चों में जागृत की जा सके। बच्चे तो जिस किसी वस्तु को देखते हैं उसके ही

प्रति उनके मन में कौतूहल के भाव जागृत होते हैं। निम्नलिखित दो सुन्दर बालगीतों में यह भाव प्रश्नोत्तर के द्वारा व्यक्त किया गया है इसीलिए बच्चे उन्हें बहुत प्रसन्न होकर पढ़ते, सुनते और याद कर लेते हैं—

Little Tom Tucker
Sings for his suuper
What shall we give him
Brown bread and butter.
How shall he cut it
Without any knife
How shall he marry
without any wife.

(छोटा टाम टकर खाने के लिए गाता है। हम उसे क्या दें? भूरी रोटी और मक्खन। वह उसे चाकू बिना कैसे काटेगा? बिना बीबी के विवाह कैसे करेगा?)

दूसरा बालगीत है—

Pussy cat ! Pussy cat where have you been
I have been to London to visit the queen
Pussy cat ! Pussy cat ! what did you there
I frightened a little mouse under the chair

('पूसी ! पूसी ! तुम कहाँ हो आई ?' 'मैं लन्दन गई थी महारानी के पास।' 'पूसी ! पूसी ! तुमने वहाँ क्या किया !' 'मैंने कुर्सी के नीचे एक छोटी चुहिया को डरा दिया ')

बच्चों को कोई भी बात बताने के लिए प्रश्नोत्तर शैली बहुत उपयोगी सिद्ध होती है किन्तु हिन्दी में बच्चों की कौतूहल जिज्ञासा की प्रवृत्ति को उभारने वाले गीतों की ही बहुत कमी है। यहाँ अधिकतर वर्णनात्मक बालगीत लिखे गये हैं जिनमें कवि अपने वर्णन चातुर्य के द्वारा ही बच्चों के मन की परितृप्ति कर देना चाहता है। गंभीरता हिन्दी कवि के स्वभाव की एक ऐसी विशेषता है जिसे वह छोड़ना ही नहीं चाहता इसीलिए वह बच्चों के मन में बैठकर वह भावरत्न पाने में असमर्थ रहता है जिनके आधार पर ही अच्छे बालगीत लिखे जा सकते हैं। एक हिन्दी बालगीत है—

पूछूँ तुम से एक सवाल।
झट पट उत्तर दो गोपाल ॥

मुन्ना के क्यों गोरे गाल ?
पहलवान क्यों ठोंके ताल ?
भालू के क्यों इतने बाल ?
चले साँप क्यों तिरछी चाल ?
नारंगी क्यों होती लाल ?
घोड़े के क्यों लगती नाल ?
झरना क्यों बहता दिन रात ?
जाड़े में क्यों काँपे गात ?

हफ्ते में क्यों दिन हैं सात ?
बुड्ढों के क्यों टूटे दाँत ? इत्यादि

यह इस दृष्टि से एक सुन्दर बालगीत है कि इसमें जितने प्रश्न हैं वह सब इतने सरल हैं कि बच्चों के मन में उठ सकते हैं किन्तु केवल प्रश्न होने से भाव का पूरा और स्पष्ट चित्र नहीं उतरता और प्रश्नोत्तर शैली में जो वार्तालाप का आनन्द होता है वह भी इसमें नहीं है। इसी शैली का एक अन्य बालगीत है—

मुन्नी मुन्नी ओढ़े चुन्नी गुड़िया खूब सजाई।
किस गुड्डे के साथ हुई तय इसकी आज सगाई ?
मुन्नी मुन्नी ओढ़ चुन्नी कौन खुशी की बात है।
आज तुम्हारी गुड़िया प्यारी की क्या चढ़ी बरात है ॥
मुन्नी मुन्नी ओढ़े चुन्नी गुड़िया गले लगाये।
आँखों से यह आँसू यों क्यों रह रह कर बह जायें ॥
मुन्नी मुन्नी ओढ़े चुन्नी क्यों ऐसा यह हाल है।
आज तुम्हारी प्यारी गुड़िया जाती क्या ससुराल है ?

कवि ने बच्ची की गुड़िया खेलने की रुचि का लाभ उठाकर सगाई, बरात और विदा का वर्णन इस बालगीत में किया है। ऐसा लगता है कोई बड़ा एक बच्ची की चेष्टाओं को देख कर हर बार एक नया प्रश्न अपनी ओर से उठाता जा रहा है दूसरे जो प्रश्न भी इस बालगीत में उठाये गये हैं वह एक वस्तु स्थिति से उठे हैं जिसका वर्णन कवि ने प्रश्न उठाने से पहले ही कर दिया है इसलिए इस बालगीत में वह रोचकता नहीं जो उपर्युक्त अंग्रेजी बालगीतों में है।

बच्चों का यह स्वभाव होता है कि वह पहिले मन में एक प्रश्न उठाते हैं और फिर उसका उत्तर भी अपने मन में स्वयं ही दे लेते हैं। ऐसा करने में उनके मस्तिष्क का एक प्रकार से व्यायाम होता है और उन्हें उसमें आनन्द भी बहुत आता है —

लाल टमाटर ! लाल टमाटर ! मैं तो तुमको खाऊँगा।
अभी न खाओ, मैं कुछ दिन में और अधिक पक जाऊँगा ॥
लाल टमाटर ! लालटमाटर ! मुझको भूख लगी भारी।
भूख लगी है तो तुम खा लो यह गाजर मूली सारी ॥
लाल टमाटर! लाल टमाटर ! मुझको तोतुम भाते हो।
तुमको जो अच्छा लगता है उसको तुम क्यों खाते हो ?
लालटमाटर! लालटमाटर ! अच्छा तुम्हें न खाऊँगा।
मगर तोड़ कर डाली पर से अपने घर ले जाऊँगा ॥

सब जानते हैं कि टमाटर बोल नहीं सकता पर जब कोई छोटा बच्चा उससे बात करने लगे तो उसे बोलना ही पड़ता है। बच्चों को इस प्रकार के वार्तालाप में वही आनन्द आता है जो किसी बड़े को अपने किसी प्रिय साथी के साथ वार्तालाप करने में। इस प्रकार के बालगीतों से जहाँ बच्चों की कल्पना शक्ति विकसित होती है वहाँ उनकी काल्पनिक सहानुभूति भी वस्तुओं के प्रति बढ़ती है और उनकी तर्क बुद्धि भी विकसित होती है।

अंग्रेजी बालगीतों का कल्पनाकाश बहुत विस्तृत और विविध रंगों से भरा हुआ है। उसमें तरह तरह की बाल स्वभावोचित कल्पनायें परियों की तरह इधर उधर नाचती फिरती है। कहीं बच्चे नदी के किनारे, पहाड़ों और चरागाहों में घूमते फिरते हैं तो कहीं पेड़ों, चिड़ियों, तितलियों, बादलों और फूलों से अपने मन की बातें करते हैं। कहीं वह स्वयं भालू, शेर या पतंग बन कर उन्हीं की तरह चेष्टायें करते हैं। हिन्दी बालगीतों का कल्पनाकाश विस्तार में अंग्रेजी से कम नहीं पर ऐसा लगता है कि वह एक प्रकार के गर्द गुबार के बोझ से दबा हुआ है, उसमें कहीं आदर्शों के देवता कल्पनाओं से आकर टकरा जाते हैं तो कहीं राष्ट्रीयता धर्म शिक्षा की दीवारें बीच में आकर कल्पनाओं की स्वच्छन्द उड़ान में रुकावट डालती हैं। हिन्दी बालगीतों की कल्पनायें भी प्रायः बच्चों की अपनी कल्पनायें नहीं होतीं उनमें बड़प्पन की बू आती है। उदाहरण के लिये एक हिन्दी बालगीत है—

सुनो सुनो हे मेरे साथी।
हम पालेंगे यश के हाथी॥
एक पाँत तैयार करेंगे।
गलियों गलियों में विचरेंगे॥
देख हमारी चाल निराली।
लोग सभी पीटेंगे ताली॥
भारी होंगे कदम हमारे।
कुछ न करेंगे बिना बिचारे॥ इत्यादि

इस बालगीत में जिस हाथी का वर्णन किया गया है वह यश का हाथी है छोटे बच्चे हाथी को जानते हैं उसके पाले जाने की कल्पना कर सकते हैं किन्तु यश किसे कहते हैं इसे वह अच्छी तरह से नहीं समझ सकते क्योंकि वह स्वयं उनके अपने अनुभव की चीज नहीं। दूसरे, हाथी के पाले जाने पर वह उसके बंधे होने और चारा खाते होने की कल्पना कर सकते हैं पर 'एक पाँत तैयार करेंगे, गलियों गलियों में विचरेंगे या भारी होंगे कदम हमारे कुछ न करेंगे बिना बिचारे' इत्यादि बातें उनकी हाथी के पाले जाने की कल्पना के बाहर की बातें हैं।

बच्चों की कल्पनाओं की गति बहुत तीव्र होने के कारण कभी-कभी वह बहुत असंगत और असम्बद्ध हो जाती हैं। बच्चे उनकी भी अभिव्यक्ति बालगीतों में पाकर प्रसन्न होते हैं। वह उनमें भी कोई तारतम्य पा लेते हैं और ऐसा न भी कर सकें तो उनकी विचित्रता ही उन्हें प्रसन्न करने के लिये पर्याप्त होती है। निम्नलिखित बालगीत देखिये—

Hey diddle diddle
The cat and the fiddle
The cow jumped over the moon
The little dog laughed
To see the sport
While the dish ran away with the spoon

(डिडिल, डिडिल। बिल्ली और वायलिन ! गाय चाँद पर उछल ईग। छोटा कुत्ता यह खेल देख कर हँसा। प्याली चमम्मच के साथ भाग गई।)

सारंगी लिये हुए बिल्ली की कल्पना विचित्र है। उस पर गाय के चाँद के ऊपर उछल जाना, कुत्तों के हँसने और फिर चम्मच को लेकर तश्तरी के भाग पड़ने की बातें तो और भी विचित्र हैं। इन सब में आपस में कोई संगति नहीं फिर भी बच्चे ऐसी रचनाओं को पढ़कर और सुनकर प्रसन्न होते हैं।

अंग्रेजी बालगीतों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें सारा वातावरण एक अद्भुत प्रसन्नता से व्याप्त मिलता है। कवि कोई न कोई ऐसी हँसाने या गुदगुदाने वाली बात कह अवश्य देता है जिससे बच्चे जी खोल कर हँसें या मन्द-मन्द मुस्करायें बिना रह नहीं सकते। हिन्दी बालगीतों में प्रायः इस प्रसन्नता के वातावरण का ऐसा अभाव होता है जैसे अंधकार में प्रकाश का अभाव होता है। इस अभाव का सबसे प्रमुख कारण हिन्दी बालगीतकार कवियों की आदर्शवादिता और उपदेशात्मक प्रवृति है वह अच्छे बालगीत की पहचान ही यह समझते हैं कि उसमें कुछ न कुछ उपदेश दिया गया हो। कहीं-कहीं तो यह उपदेश की प्रवृत्ति इतनी स्पष्ट होकर सामने आ जाती है कि बहुत ही भद्दी मालूम होती है जैसा कि निम्नलिखित बालगीत में साफ तौर से सुन्दर पास पड़ोस बनाने का आदेश दिया गया है—

देखो क्या कहती हैं कलियाँ हरदम हंसो और मुस्काओ।
रहो सदा तुम सबको प्यारे सुन्दर पास पड़ोस बनाओ॥
देखो क्या कहती हैं नदियाँ हरदम आगे बढ़ते जाओ।
शीतल करो सदा सब ही को सुन्दर पास पड़ोस बनाओ॥
देखो क्या कहते तरु-पौधे तुम ऊपर को उगते जाओ।
हरा भरा मन रखो अपना सुन्दर पास पड़ोस बनाओ॥
देखो क्या कहता है दीपक अंधकार से मत घबड़ाओ।
जब तक दम में दम बाकी हो सुन्दर पास पड़ोस बनाओ॥

इस बालगीत में सुन्दर पास पड़ोस बनाओ की बार-बार आवृत्ति करके कवि ने बच्चों के भोले मन पर हथौड़े जैसा प्रहार किया है। बच्चे इस चोट को कभी स्वीकार नहीं कर सकते। जिन प्राकृतिक वस्तुओं का उल्लेख करके कवि ने बच्चों को भी वैसा ही करने को प्रेरित किया है उनके उन गुणों का भी बच्चों को ज्ञान नहीं और अन्तिम पंक्ति में 'जब तक दम में दम बाकी हो' यह कहकर जिस बात की ओर संकेत किया गया है उसकी कल्पना बच्चों के लिए किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं कही जा सकती। वह न तो ऐसी कल्पना कर सकते हैं न वैसा करने के लिये उन्हें सुझाव देना चाहिये। इस गीत को बच्चे पाठ्य पुस्तक का आवश्यक पाठ समझ कर भले ही रट लें पर अपनी रुचि से पसन्द नहीं कर सकते।

अंग्रेजी में भी इस प्रकार के कुछ बालगीत हैं जिनमें कोई न कोई शिक्षा दी गई है—

Early to bed
And early to rise
Makes a man healthy
Wealthy and wise

(शाम को जल्दी सोना और सवेरे तड़के जग जाना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान और बुद्धिमान बनाता है।)

या

The cock doth crow
To let you know
If you be wise
It is time to rise.

(मुर्गा बोलता है। तुम्हें बताने के लिए कि यदि तुम बुद्धिमान बनना चाहते हो तो इसी समय जग जाओ।)

पर इन बालगीतों की शैली उपर्युक्त सुन्दर पास पड़ोस बनाओ की शैली से सर्वथा भिन्न है। एक में तो केवल एक सत्य कह दिया है कि रात को जल्दी सोने और सबेरे जल्दी जग जाने से मनुष्य स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान बनता है। यह नहीं कहा गया कि तुम भी वैसा ही किया करो। दूसरे में अगर तुम बुद्धिमान बनना चाहो कह कर एक उत्सुकता बाल मन में जगाई गई है। प्रत्येक बालक यह कामना करता है कि वह बुद्धिमान बने। बड़े लोग जब उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हैं तो उसे प्रसन्नता होती है अतएव वह इस भाव को आसानी से ग्रहण कर सकता है कि उसे सबेरे तड़के जब मुर्गा बोले तब जग जाना चाहिये। अंग्रेजी के इन दोनों बालगीतों में बच्चों को सुझाव संकेत दिये गए हैं। उपदेश नहीं इसीलिये ऐसे बालगीत बाल मन पर कभी भार नहीं बन सकते।

हिन्दी का एक और बालगीत है—

खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगन्ध फैलाओगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से तो गन्दे बन जाओगे।।
कौये का यदि साथ करोगे तो बोलोगे कड़वे बोल।
कोयल का यदि साथ करोगे तो तुम दोगे मिसरी घोल।।
जैसा भी रंग रंगना चाहो घोलो ले वैसा ही रंग।
अगर बड़े तुम बनना चाहो तो तुम रहो बड़ों के संग।।

इस बालगीत की शैली उपर्युक्त अंग्रेजी बालगीतों जैसी ही है पर इसमें केवल सुझाव संकेत नहीं निषेध भी हैं। धूल से खेलने और कड़वे बोल बोलने को मना भी किया गया है। निषेध की बातें कुशाग्र बुद्धि वाले बच्चे कभी पसन्द नहीं करते और जो सुझाव बच्चों को बड़ा बनाने के लिए कवि ने दिया है उसके लिये इतनी कठिन शर्त रख दी है कि उनके मन पर उसकी उल्टी प्रतिक्रिया भी हो सकती है। जिस उद्देश्य को लेकर यह बालगीत लिखा गया है इसकी पूर्त्ति अन्तिम दो पंक्तियों को बिना जोड़े हुए भी हो सकती थी। बहुत से लोग बच्चों के आयु वर्गों का गलत अनुमान लगाकर ऐसे बालगीतों की उपयोगिता सिद्ध करते हैं। छोटे और बड़े बच्चों के लिये उपयुक्त बालगीतों में अन्तर होता है पर इस आधार पर बड़ों की बड़ी-बड़ी ऊँची बातें बच्चों के कोमल हृदयों पर थोपी नहीं जा सकतीं।

हिन्दी और अंग्रेजी बालगीतों के इस तुलनात्मक अध्ययन से यह तो स्पष्ट ही है कि बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी बालगीत अधिक श्रेष्ठ हैं। किन्तु हिन्दी बालगीत साहित्य का एक क्षेत्र ऐसा भी है जो अंग्रेजी भाषा से कहीं अधिक समृद्ध और सम्पन्न है और वह है लोरियों का क्षेत्र। अंग्रेजी में लोरियों को ललेबीज कहते हैं। लोरियाँ

मातायें सुलाने के लिये बच्चों को गा गा कर सुनाया करती हैं। यह बच्चों को सुनाने के लिए ही लिखी जाती हैं इसलिए इन्हें भी बालगीत ही कहा जाता है। हिन्दी की लोरियों का भाव क्षेत्र अंग्रेजी ललेबीज से कहीं अधिक व्यापक है। उनमें माता के हृदय में बच्चों के प्रति होने वाली सारी इच्छायें आकांक्षायें अभिव्यक्त मिलती हैं। मातायें अपने बच्चों को तरह-तरह के लालच देती हैं, भय दिखाती हैं और यह कल्पना करती हैं कि कभी उनका वही बच्चा बड़ा होगा, पढ़ने जायेगा, बहू घर लायेगा और अतुलित जस, धन, नाम कमायेगा। वह प्रकृति को अनेकानेक रूपों में देखकर उनसे अपने और बच्चों के मन की भावनाओं का सामंजस्य स्थापित करती हैं। चिड़ियाँ, कुत्ते, बिल्लियों और बन्दरों से बच्चों की ओर से बात करने का भाव भी उनमें मिलता है। माता के हृदय का ऐसा मधुर स्नेह और उसकी ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति हमें अंग्रेजी ललेबीज में देखने को नहीं मिलती। इसके कारण भी हैं। भारतीय माताओं में अपने बच्चों के प्रति अंधी ममता बहुत अधिक होती है। वह उनके लिये बहुत अधिक कष्ट सहन और त्याग कर सकती हैं पर लोरियाँ अध्ययन का एक अलग विषय हैं अतएव हम उसपर यहाँ विस्तार से विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं।

हिन्दी साहित्य में आज की सबसे बड़ी आवश्यकता उपयुक्त बालगीतों का सृजन है। हमारा देश स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से उन्नति के मार्ग पर बड़ी तीव्रता से अग्रसर होता जा रहा है। हिन्दी भाषा का विस्तार क्षेत्र भी पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक हो गया है और होता जा रहा है। देश के बच्चे अपने मन के बालगीत नित नये पढ़ने और सुनने के के लिये चाहते हैं। उनकी साहित्यिक भूख बड़ों से कहीं अधिक बढ़कर होती है। कोई राष्ट्र उनकी इस भूख की अवहेलना करके समुन्नत नहीं हो सकता इसलिये आज हमें अपने देश के इन होनहारों के लिये ऐसे बालगीत चाहिये जिनमें उनके मन की नई-नई भावनायें और कल्पनायें हों। देश-प्रेम और ऊँचे आदर्शों के प्रति आस्था जगाने वाले बालगीत भी उन्हें दिये जा सकते हैं पर देश और जातिगत विशेषताओं को लिये हुए बालगीत ही यदि उन्हें दिये जायेंगे तो उनके व्यक्तित्व का वैसा विकास नहीं हो पायेगा जैसे की हमारे भविष्य के समाज को आवश्यकता होगी और हमारे आज के लिखे शिक्षाप्रद और उपदेशात्मक बालगीत तब पंसारी की पुड़ियें बाँधने के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आ सकेंगे। संसार के सारे बच्चे अपने स्वभाव की मूल प्रवृत्तियाँ और सुख-दुख की अनुभूतियों की दृष्टि से एक जैसे हैं उनकी अधिकतर इच्छाएँ, आकांक्षायें, मनोभावनायें और कल्पनायें भी मूलतः एक ही तरह की होती हैं। सब में अपने व्यक्तित्व को विकसित करने की एक स्वाभाविक प्रवृति होती है। बड़ों के समाज और प्राकृतिक संसार के प्रति उनके मन में प्रतिक्रियायें भी एक जसी होती हैं। उनकी कौतूहल और जिज्ञासा की भावना में भी कोई अन्तर नहीं होता अतएव उन्हें बड़ों के पूर्वाग्रहों, निश्चित विश्वासों और मान्यताओं की प्रेरणा से लिखित बालगीत नहीं चाहिये। हिन्दी में तो अब ऐसे बालगीत लिखे जाने चाहिये जिन्हें संसार के सारे बच्चे रुचि से अपना सकें। ऐसे बालगीत लिखने के लिये अब कवि को अपने मस्तिष्क की उन सब संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक सार्वभौमिक मानवतावादी दृष्टिकोण की भावना को अपनाना होगा तभी वह अपने देश के इन भावी कर्णधारों के लिये उपयुक्त बालगीत लिख कर दे सकते हैं।

———

१६ : हिंदी तथा बंगाली बालगीतों का तुलनात्मक अध्ययन

सांस्कृतिक और साहित्यक विकास की दृष्टि से भारतवर्ष के प्रान्तों में बंगाल का अपना एक विशेष स्थान रहा है। आधुनिक काल में वहाँ विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर और शरतचन्द्र दो ऐसे महान साहित्यकार हुए जिन्होंने बंगाली ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया। टैगोर की रचनाएँ अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनुवादित हो चुकी हैं। यह दोनों महान साहित्यकार जिस सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के फल थे उसके विषय में विचार करने के लिए हमें इतिहास में थोड़ा और पीछे जाना पड़ेगा। अंग्रेजी भाषा और सभ्यता के सम्पर्क में दक्षिण के बाद सबसे पहिले बंगाल आया था। अंग्रजों ने जब वहाँ व्यापार के बहाने से आकर राजनीतिक सत्ता हथिया ली और अपने पाँव मजबूती से जमा लिए तो उन्हें राजकाज में सहयोग देने के लिए ऐसे देशी आदमियों की आवश्यकता हुई जो उनकी भाषा और विचारों को समझ सकें। इसीलिए सन् १८०० में उन्होंने बंगाल में फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना की। इसका उद्देश्य केवल बंगाल के निवासियों को ही सुशिक्षित बनाना नहीं था बल्कि बंगाली के अतिरिक्त हिन्दी-उर्दू में ऐसी पुस्तकें तैयार कराना भी था जिनके द्वारा भारतवासी अंग्रेजी भाषा और सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही वहाँ ईसाई मिशनरियों की ओर से एक प्रेस सीरामपुर में खोला गया। उसका उद्देश्य भी ऐसी पुस्तकों को प्रकाशित करना था जिनके द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार हो सके। सन् १८१७ में वहाँ स्कूल बुक सोसायटी की स्थापना हुई और लगभग उसी समय ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि ने वर्नाकुलर साहित्य कमेटी की स्थापना की। इन दोनों का उद्देश्य भी बंगाली भाषा में पाठ्य पुस्तकें तैयार करना था। इसके बाद ही वहाँ बहुतायत से एसे स्कूल कालिजों का खुलना प्रारम्भ हो गया जिनके द्वारा बंगाली बालक और नवयुवक अंग्रेजी भाषा ही नहीं सभ्यता और विचारों में दीक्षित होने लगे। राजा राममोहन राय भी उन्हीं में से एक थे। उन्होंने सन् १८५८ में वहाँ ब्रह्म समाज की स्थापना करके एक ऐसी विचार क्रान्ति का प्रचार किया जिसके कारण उन्हें आधुनिक बंगाल का निर्माता कहा जाता है। सर्वश्री केशव चन्द्र सेन, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर तथा अक्षयकुमार दत्ता, ने भी इस विचार क्रान्ति के प्रसार में बहुत सहयोग दिया। और माइकेल मधुसूदन दत्त; द्विजेन्द्र लाल राय, बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि साहित्यिक महारथियों ने भी अपनी रचनाओं के द्वारा पुराने बंगाल में नई चेतना के स्वर फूंके। माइकेल मधुसूदन दत्त तथा रामनरायन विद्यारत्न आदि ने उसी समय कुछ अंग्रेजी बालोपयोगी पुस्तकों के अनुवाद भी बंगाली भाषा में किये।

बंगाल में जब यह नये विचारों का आह्वान हो रहा था उसी समय हिन्दी भाषा-भाषी क्षत्रों में भी अंग्रेजी शासन के प्रभाव से अंग्रेजी का प्रभाव बढ़ रहा था। देश में डाक,

तार, रेल, कल-कारखानों की स्थापना होने से पढ़े-लिखे लोगों के विचारों में परिवर्तन हो रहा था। लोग प्राचीन परम्परागत रूढ़ियों से निकलने का प्रयत्न करने लगे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों और कवियों ने इसी समय हिन्दी भाषा और साहित्य को परम्परागत रीति कालीन प्रवृत्तियों के प्रभाव से बाहर निकाल कर नये क्षेत्र और नई दिशायें दीं। भारतेन्दु जी यद्यपि कविता के क्षेत्र में पुरानी भाषा शैली के पक्षपाती थे पर उनके समय के अनेक कवियों ने और उन्होंने स्वयं भी नई भाषा शैली में काव्य रचना की। भारतेन्दु जी की 'चूरन का लटका' और 'चना जोरगरम' कवितायें बच्चों ने गली-गली में गाईं दोहराईं। उन्होंने बच्चों के लिए 'बाल बोधनी' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। खड़ी बोली गद्य का विकास भी इसी समय से प्रारम्भ हुआ। पं० श्रीधर पाठक जो आयु में भारतेन्दु जी से कुछ वर्ष छोटे थे, उन्होंने कविता का माध्यम खड़ी बोली को बनाने में विशेष महत्त्व का कार्य किया। वही खड़ी बोली हिन्दी में बालगीत लिखने में अग्रगण्य हैं।

भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से बंगाली और हिन्दी में इस समय की परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है। हिन्दी की प्राचीन साहित्यिक भाषा ब्रज या अवधी थी। खड़ी बोली भावों की अभिव्यक्ति के लिए एक समर्थ भाषा नहीं बन पाई थी। उसमें पूर्व का कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं था और न उसकी भाषा शैली की कोई परम्परा निश्चित थी। अतएव हिन्दी के लेखकों और कवियों के सामने भावना विचारों के साथ-साथ नई भाषा और शैली के विकास की भी समस्या थी। बंगाली भाषा के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं थी। उसमें परम्परागत भाषा और समय की माँग के अनुरूप नई भाषा के स्वरूप में ऐसा कोई विशेष अन्तर नहीं था जिससे उसके विकास में कोई कठिनाई हो। बंगाली कवियों और लेखकों का काम प्राचीन परम्परागत भाषा शैली को अपनाकर भी सरलता से चल सकता था। समय की माँग के अनुसार उन्हें केवल अपनी भाषा को जन भाषा के कुछ और निकट लाने का कार्य करना था। इसीलिए बंगाली साहित्य विकास की सीढ़ियों पर तेजी से चढ़ता चला गया और हिन्दी को उसके लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ा। इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि हिन्दी और बंगाली दोनों में बाल साहित्य के विकास की ओर ध्यान लगभग एक ही समय में आकृष्ट हुआ। पर बंगाली में उसका विकास अपनी स्वाभाविक गति से निरन्तर होता चला गया और हिन्दी में भाषा की कठिनाई तथा अन्य कारणों से उसकी गति अवरुद्ध रही। हिन्दी और बंगाली दोनों में बाल साहित्य अंग्रेजी के प्रभाव से लिखा जाना प्रारम्भ हुआ पर यह कहना उचित न होगा कि वह अंग्रेजी की नकल मात्र था। प्रेरणा भले ही अंग्रेजी साहित्य की रही हो पर दोनों भाषाओं के प्रारम्भिक बाल साहित्य लेखकों ने अपनी मौलिकता की रक्षा करते हुए ही इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया था।

बंगाली में सुप्रसिद्ध सुधारक श्री केशव चन्द्र सेन ने सन् १८७८ में 'बालक बन्धु' नाम का एक पत्र निकाला था। दिग्दर्शन, पश्वावली, ज्ञानोदय, विद्या दर्पण, सत्य प्रदीप इत्यादि पत्रिकायें यद्यपि इससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी थीं पर बालक बन्धु ही पहिली पत्रिका थी जिसने बच्चों के मनोरंजन की ओर ध्यान दिया। छोटे बच्चों की लिखी कवितायें भी उसमें प्रकाशित होती थी। उसके बाद सन् १८८३ में श्री प्रमोद चन्द्र सेन ने 'सखा' नामक बच्चों का

पत्र निकाला। उनकी मृत्यु के बाद सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री शिवनाथ शास्त्री उसके सम्पादक हुए। बंगाल के अनेक प्रसिद्ध कवियों और लेखकों की रचनायें उसमें प्रकाशित होती थीं। श्री विपिन चन्द्र पाल और श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी भी उसमें लिखते थे। १८८५ में टैगोर परिवार की ओर से 'बालक' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। रवीन्द्र बाबू ने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में इसी पत्र में लिखना प्रारम्भ किया था। १८९५ में 'मुकुल' नामक एक पत्र निकला। श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर, श्री जगदीश चन्द्र बोस, श्री रामानन्द चटर्जी, श्री विपिन चन्द्र पाल, श्री हेमेन्द्र प्रसाद घोष आदि इसके लेखक रहे। आधुनिक काल में बच्चों के सबसे लोकप्रिय कवि श्री सुकुमार राय की पहिली कविता ८ वर्ष की अवस्था में इसी पत्र में प्रकाशित हुई थी जिसने बाल साहित्य के सभी प्रेमियों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया था। उनके पिता श्री उपेन्द्र किशोर राय चौधरी ने सन् १९१३ में 'सन्देश' नाम से एक बालोपयोगी पत्र निकाला जो बंगाल में बहुत लोकप्रिय हुआ। श्री सुकुमार राय भी इसके सम्पादक रहे। उनके बालगीत जो उस पत्र में प्रकाशित हुए जनता में इतने लोकप्रिय हुए कि बच्चे-बच्चे के मुख से सुनाई देने लगे। इन सब पत्र-पत्रिकाओं ने बंगाल में बाल साहित्य के सृजन और विकास को बहुत प्रोत्साहन दिया। बालोपयोगी पत्रों के प्रकाशन की दृष्टि से हिन्दी बंगाली से काफी पिछड़ी रही। हिन्दी में सबसे पहिले सन् १९१६ में 'शिशु' और १९१७ में बालसखा का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। शिशु के सम्पादक पं० सुदर्शनाचार्य स्वयं भी बच्चों के लिए कवितायें लिखते थे। और बाल सखा के सम्पादक भी पं० बदरी नाथ भट्ट, पं० कामता प्रसाद गुरु, पं० देवीदत्त शुक्ल, पं० गिरजादत्त शुक्ल, ठाकुर श्रीनाथ सिंह आदि बच्चों के प्रिय कवि रहे। हिन्दी में बाल गीतों का सबसे पहिला प्रकाशित संग्रह पं० श्रीधर पाठक की मनोविनोद पुस्तक का बाल विलास खंड है जो सन् १९१७ में ओंकार प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुई थी।

हिन्दी और बंगाली दोनों ही भाषाओं में बालगीत साहित्य का विकास जितनी तीव्रगति से पिछले ५०-६० वर्षों में हुआ वैसा उससे पूर्व कभी नहीं हुआ। इसी काल में रवीन्द्र नाथ टैगोर की 'शिशु' और 'मुकुट' नामक बालगीतों की पुस्तकें प्रकाशित हुईं। सर्वश्री दक्षिणा रंजन मित्र, ज्ञान नन्दिनी देवी, नवकृष्ण भट्टाचार्य, सुखलता राय, सुकुमार राय, कार्त्तिक चन्द्र दास गुप्ता, सुनिर्मल बसु, कालिदास राय, कुमुदरंजन मल्लिक, वेणु गांगुली, अजित कृष्ण बोस, सतीन्द्र नाथ लाहा, उपेन्द्र चन्द्र मल्लिक, नन्द गोपाल सेन गुप्ता आदि अनेक कवियों ने इसी काल में बालगीत साहित्य के भंडार को भरा। हिन्दी में इसी समय पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी, पं० रामजीलाल शर्मा, डा० विद्याभूषण 'विभु' पं० कामता प्रसाद गुरु, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, श्री ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', श्री राम सिंहासन सहाय 'मधुर', पं० सोहन लाल द्विवेदी, श्री स्वर्ण सहोदर, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री अब्दुल रहमान सागरी, श्री रामकृष्ण शर्मा खद्दर जी, श्री ब्रजकिशोर नारायण, श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया, श्री अशोक एम ए०, आदि अनेक कवियों ने बालगीत साहित्य के अभाव को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। दोनों ही भाषाओं में आज इतने अधिक बालगीत लिखने वाले कवि विद्यमान हैं जितने इससे पहिले कभी नहीं हुए थे। बच्चों की अनेक पत्र-पत्रिकायें भी इस काल में हिन्दी और बंगाली

में प्रकाशित हुईं। बंगाली में सन्देश, मौचाक, शिशु साथी, किशोर रविवार, रामधनु आदि तथा हिन्दी में शिशु और बालसखा के अतिरिक्त वानर, खिलौना, चमचम, बाल विनोद, बाल हित, चन्दा मामा, मनमोहन, बालक, पराग, जीवन शिक्षा आदि बालोपयोगी पत्र प्रकाशित हुए। इन सब पत्र-पत्रिकाओं ने बाल-साहित्य के सृजन और विकास को जो प्रोत्साहन दिया उसी के फलस्वरूप आज सैकड़ों नई-नई प्रतिभायें प्रतिदिन विकसित होकर सामने आती जा रही हैं। पर इस सत्य को स्वीकार किये बिना नहीं रहा जा सकता कि बंगाल और प्रवासी बंगालियों में बाल-साहित्य को जितनी मान्यता प्राप्त हुई और उसका जितना प्रसार प्रचार हुआ उतना हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में हिन्दी बाल साहित्य का नहीं हो सका। बंगाली भाषा के अनेक बड़े-बड़े कवियों और विद्वानों—माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजेन्द्र लाल राय, केशव चन्द्र सेन, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, विपिन चन्द्र पाल, और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि ने बाल साहित्य के उन्नयन और विकास की ओर जितना ध्यान दिया उतना हिन्दी के महान कवियों और विद्वानों ने नहीं दिया। आधुनिक हिन्दी के चारों प्रमुख कवि प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी में से किसी ने बच्चों के लिए कुछ भी नहीं लिखा। विद्वान आलोचकों ने बाल साहित्य को कभी इस योग्य ही नहीं समझा कि कहीं उसका भी कुछ उल्लेख करें। बंगाली भाषा में बालगीत साहित्य पर अनेक पुस्तकें लिखी गईं और पिछले कुछ वर्षों से अ० भा० बंगीय साहित्य सम्मेलन ने बाल साहित्य परिषद् को भी सम्मेलन के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लिया है। यही कारण है कि हिन्दी का क्षेत्र उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार और पंजाब के भी कुछ भाग में फैला होने पर भी हिन्दी बालगीत साहित्य भावनाओं और कल्पनाओं की दृष्टि से उतना समृद्ध नहीं हो सका जितना बंगाली का बाल साहित्य है।

किसी भी देश या भाषा का बाल-साहित्य किसी वाद विशेष या दृष्टिकोण की सीमा में बँध कर नहीं लिखा जाता। वह सार्वभौमिक और सर्वकालीन होता है। पर अपने समय की विशेष परिस्थितियों का कुछ न कुछ प्रभाव तो उसके सृजन और विकास पर पड़ता ही है। भारतवर्ष में सन् १८५७ के गदर के बाद जब अंग्रेजों का शासन फिर से जम गया तब भी जनता की राष्ट्रीय भावना को पूरी तरह से दबाकर नहीं रक्खा जा सकता था। सन् १८८५ में नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारम्भ में वह बृटिश शासकों से सहयोगपूर्ण व्यवहार के साथ ही चली। बाद में 'लाल, बाल, पाल' इत्यादि नेताओं के प्रभाव से उसके स्वरूप में परिवर्त्तन हुआ और वह अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए एक सुसंगठित संस्था बन गई। इन्हीं दिनों में नये विचारों की जो लहर बंगाल में आई उसके कारण वहाँ के लोगों में जहाँ एक ओर पुरानी रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से मुक्त होकर जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी वहाँ दूसरी ओर अपने देश, अपने बंगाल और अपनी भाषा के प्रति आदर भाव रखते हुए उनपर अभिमान करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी। राष्ट्रीय कवितायें बंगाल में बहुतायत से लिखी गईं और जब हमारे स्वतन्त्र राष्ट्र के सामने राष्ट्रीय गान के चुनाव का प्रश्न आया तो बंगाल के ही दो लोकप्रिय गीत बन्देमातरम् तथा 'जन मन गण' ही दिखाई दिए। सन् १९०५ में जो बंग-भंग विरोधी आन्दोलन बंगाल में चला उसने भी राष्ट्रीय भावना के प्रसार और बंगाल की जनता में एकता की भावना भरने

में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बंगाल में राष्ट्रीय बालगीत भी बहुतायत से लिखे गए। उनमें अपने देश से प्रेम करने की प्रेरणा देने वाले बड़े सुन्दर भाव व्यक्त किये गए हैं। उनमें वर्त्तमान से मुख मोड़ कर अतीत का गौरव वर्णन करने के प्रति उतना आग्रह नहीं है जितना वर्त्तमान से प्रेरणा लेकर भविष्य की ओर बढ़ने का उत्साह है। बंगाली कवियों का दृष्टि-कोण अधिक व्यापक और भावना-क्षेत्र अधिक विस्तृत रहा है। टैगोर ने अपने जन मन गण गीत में किसी सांस्कृतिक परम्परा या अतीत के काल विशेष का ही गुणगान नहीं किया है। उन्होंने बंगाल, पंजाब, विंध्य, हिमाचल, उड़ीसा, महाराष्ट्र आदि सभी को एकता के सूत्र में बाँधने की भावना व्यक्त की है। हिन्दी में बहुत से बालगीत ऐसे मिलते हैं जिनमें अतीत गौरव का वर्णन ही प्रधान है। उदाहरण के लिए पं० रामनरेश त्रिपाठी के दो राष्ट्रीय बालगीतों के निम्नलिखित अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

वह जाति कौन सी है ?
जो धर्म पर अड़ी है, गुण कर्म पर खड़ी है।
सद्‌भाव से भरी है, वह जाति कौन सी है ?
हैं वर्ण और आश्रम, आदर्श चार जिसके।
सात्विक स्वभाव वाली, वह जाति कौन सी है ?
शुचि स्नान ध्यान पूजा जप यज्ञ होम संध्या।
करती जो वेद विधि से, वह जाति कौन सी है ॥

या

वह देश कौन सा है ?
जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्म ज्ञानी।
गौतम कपिल पतंजलि, वह देश कौन सा है ?
देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं।
माता पिता जगत का वह देश कौन सा है ?
आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी।
हनुमान भीष्म शंकर वह देश कौन सा है ?
विद्वान वीर योगी गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर वह देश कौन सा है ?

इस प्रकार की भावनायें देश के बालकों में प्राचीन आदर्शों के प्रति मोह उत्पन्न करने के लिए बहुत अच्छी हैं। पर इनसे समय और परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार नये आदर्शों के निर्माण पथ में रुकावट भी पड़ सकती है। दूसरे, प्रत्यक्ष जीवन के यथार्थ से दूर की होने के कारण वह रटा-रटा कर बच्चों को याद भले ही करा दी जायें, उन्हें रुचिकर नहीं हो सकतीं। बच्चों के मन को प्राचीन आदर्शों में उलझा देने से उनके मानसिक विकास में बाधा पड़ सकती है। और उनमें एक ऐसी आत्महीनता घर कर सकती है जिससे वह बड़े होकर भी मुक्त न हो पायें। बच्चों के लिए वही राष्ट्रीय कवितायें अधिक उपयोगी हो सकती हैं जो उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देने और प्रत्यक्ष यथार्थ को स्पर्श करने वाली हों।

बंगाल की राष्ट्रीय भावना में जो राष्ट्र की एकता का प्राधान्य रहा था उसी के कारण देश को स्वाधीनता मिलते समय जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बने तो श्री अन्नदा शंकर राय को वह मर्मान्तिक चोट पहुँची जिसकी वेदना निम्नलिखित बालगीत के रूप में व्यक्त हो गई। इसमें राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात ऐसे रोचक ढंग से कही गई है कि यह कविता बच्चों को बहुत प्रिय लगी है—

तेलेर शीशी भांगल ब ले खूकुर परे राग करो।
तोमरा ये सब बूड़ो खोका भारत भेंगे भाग करो ? तार बेला ?
भांगछ प्रदेश भांगछ जेला जमि जमा घर बाड़ी।
पाटेर आड़त धानेर गोला कारखाना आर बेल गाड़ी ॥ तार बेला ?
चायेर बागान, कयला खानि कलेज थाना आफिस घर।
चेयार टेबिल देयाल घड़ि पियन पुलिश प्रोफेसर ॥ तार बेला ?
युद्ध जहाज जंगी मोटर विमान कामान अश्व उट।
भागो भागिर भांगा भागिर चल छे येन हरिद लूट ॥ तार बेला ?
तेलेर शिशि भांगल ब' ले खूकुर परे राग करो।
तोमरा ये सब बेड़े खोका बाँगला भेंगे भाग करो ॥ तार बेला ?

("अगर तेल की शीशी टूटे तो तुम बहुत बिगड़ते हो,
उस मुन्नी पर भोली भाली नन्हीं मुन्नी बच्ची जो।
लेकिन तुम सब बुड्ढे मुन्ने जब टुकड़े कर देते हो,
उस भारत के देश हमारा हमें प्राण से प्यारा जो॥
बोलो तब क्या होता है ?
तोड़ रहे प्रान्तर प्रदेश तुम जिले महल औ घर द्वारे।
सन की आढ़त ढेर धान का रेल कारखाने सारे॥
बोलो तब क्या होता है ?
चाय बाग कोयले की खाने कालिज थाना आफिस घर।
कुर्सी टेबिल घड़ी पुलिस चपरासी टीचर प्रोफेसर॥
बोलो तब क्या होता है ?
सब सामरिक जहाज मोटरें वायुयान तोपें घोड़े।
आपस में लड़कर तुम सबने एक साथ मिलकर तोड़े॥
बोलो तब क्या होता है ?
शीशी टूटे तो मुन्नी पर तुम सब व्यर्थ बिगड़ते हो।
पर तुम बुड्ढे मुन्ने जब खुद बंगभंग कर देते हो॥
बोलो तब क्या होता है ?)

अपनी मातृ भूमि को प्यार करने की भावना स्वयं अपनी माता को प्यार करने की भावना का ही एक व्यापक रूप है। बंगाली बालगीतों में बहुत से ऐसे हैं जिनमें माँ बच्चे के पारस्परिक स्नेह सम्बन्ध की अच्छी अभिव्यंजना हुई है। श्री द्विजेन्द्र लाल राय ने अपने बालगीत जन्मभूमि के अन्त में कहा है—

मायेर मायेर जत स्नेह कोथाय गेले पावे केई।

"भाई और माँ का यहाँ जैसा स्नेह कोई और कहाँ जा कर पा सकता है"

माँ और बालक के प्यार को प्रकट करने वाला एक बहुत सुन्दर बालगीत कामिनी राय का 'कत भाल वासि' है—

जड़ाये मायेर गला शिशु कहे आसि।
'माँ, तो मोर कत भाल वासि?"
'कत भालवास धन?' जननी शुधाय।
'ए-त' बलि दुइ हात प्रसारि देखाय॥
'तुमि मा आमारे भाल बास कत खानि?"
मा बलेन–'माप तार आमि नाहि जानि॥"
"तबू कत खानि बल' यत खानि, धरे।
तोमार मायेर बूके" "नेहे तार परे?"
तार बाड़ा भाल बासा पारि ना बासिते।
"आमि पारि" बले शिशु हासिते हासिते॥

("लिपट गले से अपनी माँ के छोटा बच्चा बोला—
'कितना प्यार तुझे करता हूँ, माँ, मैं सचमुच भोला॥'
'प्यार मुझे करते हो, अच्छा' माँ ने पूछा– कितना?'
दोनों हाथों को फैलाकर बच्चा बोला—'इतना'॥
फिर उसने पूछा—'माँ मुझको बतलाओ तुम भी तो,
मेरी प्यारी माँ तुम कितना प्यार मुझे करती हो?'
माँ बोलीं, "इसका तो मुझको कुछ अन्दाज नहीं है।
माँ का प्यार किसी बच्चे से रहता छिपा कहीं हैं?'
'फिर भी कहो, कहो माँ' बच्चा बोला "कितना कितना?'
'कोई माँ अपने बच्चे से कर सकती है जितना॥
उससे अधिक प्यार करने को मेरे पास नहीं है।'
बच्चा हंस कर बोला—'अच्छा तेरे पास नहीं है॥
पर मेरे तो पास प्यार है बहुत अधिक उससे, माँ।
अब तो तू समझी कितना है प्यार मुझे तुझसे माँ॥')

इस बालगीत में माँ के यह पूछने पर कि तू मुझे कितना प्यार करता है बालक का दोनों हाथों को फैला कर 'इतना' कह देना कितना स्वाभाविक है। बालक वास्तव में यह जानता ही नहीं कि प्यार का आधिक्य दोनों हाथों को फैलाकर नहीं बताया जा सकता। माँ और बच्चे के मधुर सम्बन्ध की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति इस बालगीत में हुई है। और विशेषता यह है कि कवि ने विनोद का वह भाव बराबर बनाये रक्खा है जिसके बिना कोई बालगीत बच्चों को मनोरंजक नहीं लग सकता। बच्चे ने तर्क में छकाकर माँ को हरा दिया है अतएव कोई भी बालक अपने पक्ष की विजय देखकर फूला न समायेगा। इसमें सन्देह नहीं।

बंगाली के इस बालगीत के समक्ष हिन्दी में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की निम्नलिखित कविता रक्खी जा सकती है—

मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन सी फूल उठी वह छोटी सी कुटिया मेरी॥
'माँ ओ' कह कर बुला रही थी मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिए हाथ में मुझे खिलाने लाई थी॥
मैंने पूछा–'यह क्या लाई' बोल उठी वह–'माँ काओ।'
फूल फूल मैं उठी खुशी से मैंने कहा—'तुम्हीं खाओ॥'

माँ और बच्चे के स्वाभाविक प्यार की अच्छी अभिव्यंजना इस कविता में हुई है। पर माँ के प्यार बच्चे के प्यार की जीत की कल्पना कामनी राय के उपरियुक्त गीत में अद्भुत है। इसलिए भाषा का भेद दूर करके यदि सुभद्रा जी और कामिनी राय के यह दोनों गीत किसी बच्चे के सामने रक्खे जायें तो वह कामिनी राय के गीत की ओर ही अधिक आकर्षित होगा। हिन्दी में माँ के प्यार की बड़ाई करने वाले बालगीतों की कमी नहीं है। उनमें से बहुत से बच्चों को अपनी माँ के प्रति अधिक विनयशील बनाने के उद्देश्य से ही लिखे गये हैं। पर बच्चों की मनोभावनाओं का बहुत सुन्दर चित्रण हमें बंगाली बालगीतों में मिलता है। प्रत्येक बच्चा अपनी माता के अपने प्रति होने वाले प्यार की थाह पाना चाहता है और जब वह कल्पना में भी यह सोच लेता है कि उसकी माँ उसका तिरस्कार कर सकती है तो उसके मन को कितना दुख होता है इसी भाव को रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने निम्नलिखित बालगीत में व्यक्त किया है—

यदि खोका ना हये
आमि हतेम कूकूर छाना—
तबे पाछे तोमार पाते
आमि मूख दिते याइ भाते
तूमि करते आमाय माना?
सत्यि करे बल।
आमाय करि सने मा, छल
बलते आमाय–'दूर दूर दूर
कोथा थेके एल एई कूकूर?"
या मा, तबे या मा
आमाय कोलेर थेके नामा
आमि खाब ना तोर हाते
आमि खाब ना तोर पाते

(अगर नहीं मैं मुन्ना होकर होता पिल्ला एक।
खा जाता थाली में रक्खे रोटी चावल देख॥
मैं आगे मुँह जभी बढ़ाता तुम देतीं फटकार।
सत्य कहो माँ, तब तुम मुझसे यह कहती उस बार॥
'हट हट ऐ कुत्ते के बच्चे भाग भाग जा दूर।'
माँ तुम तब मेरे प्रति होती कितनी निर्दय क्रूर॥
अब तुम दो अपनी गोदी से नीचे मुझे उतार।
भात तुम्हारे हाथों का भी मुझे नहीं स्वीकार॥)

बंगाल यों तो काली माई और दुर्गा पूजा का देश है पर माँ की स्तुति करने वाले उतने अधिक बालगीत बंगाली में देखने को नहीं मिलते जितने हिन्दी में राम कृष्ण, राणा-प्रताप, शिवाजी, पंडित नेहरू और महात्मा गांधी की प्रशस्ति में लिखे मिलते हैं। पं० सोहन लाल द्विवेदी की पुस्तकें 'बच्चों के बापू' तथा 'चाचा नेहरू' तथा अन्य अनेक कवियों की अनेक ऐसी पुस्तकें इस बात का प्रमाण हैं। इस प्रकार के बालगीत वीर पूजा की भावना से प्रेरित होकर ही लिखे जाते हैं। पर यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि ऐसे गीतों से बच्चों के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। प्रायः उनके मन में उन्हें पढ़कर एक ऐसी गहरी आत्म हीनता का भाव घर कर लेता है जिससे वह बड़े होकर मुक्त नहीं हो पाते। दूसरे आज प्रजातन्त्र के युग में वीर पूजा के लिए कोई स्थान भी नहीं रहा है, इसलिए भी उनकी उपयोगिता नहीं है।

बंगाली कवियों में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता का एक व्यापक दृष्टि कोण है वहाँ दूसरी ओर बंगाल की विशेष संस्कृति, सभ्यता और भाषा के प्रति प्रगाढ़ मोह भी विद्यमान मिलता है। उन्हें अपनी विशेष भाषा संस्कृति पर कितना गर्व है यह श्री अतुल प्रसाद सेन के निम्नलिखित बालगीत से प्रकट होता है जो प्रायः प्रत्येक बंगाली बालक को सिखाया जाता है——

मोदेर गरब मोदेर आशा आमारि बंगला भाषा
तोमार कोले, तोमार बोले कतई शान्ति भाल बासा।
विद्यापति चंडी गोविन हेम मधू बंकिम नवीन
ऐ फूलेरेइ मधुर रसे बांधल सुखे मधूर बासा।
बाजिये रवि तोमार वीणे आनल मालां जगत जिते
तोमार चरण तीर्थ आजि जगत करे याउआ आसा।
ऐ भाषातेई प्रथम बोले डाकनू माये 'मा मा' बले
ऐ भाषातेइ बलब हरि, सांग ह' ले कांदा हासा।

(हमारा गर्व, हमारी आशा, हमारी बंग भाषा तुम्हीं हो। तुम्हारी गोद में, तुम्हारी बोली में कितनी शान्ति तथा प्यार है। विद्यापति, चंडी दास, गोविन्द, हेम, मधु, बंकिम, ने उसी के फूलों के मधुर मधु से घोंसले का निर्माण किया है। तुम्हारी वीणा को बजाकर रवीन्द्र नाथ जगत की माला को जीत कर लाये। तुम्हारे चरण तीर्थ में आज धरती आती जाती है। इसी भाषा में मैंने पहिले मामा कहकर पुकारा उसी भाषा में जीवन के अन्त में 'हरि' कहूँगा वह रोदन और हास में साथ रही है।)

हिन्दी की अपनी अलग न तो कोई ऐसी विशिष्ट संस्कृति है न भाषा का रूप जिस पर हिन्दी के कवि इस प्रकार से गर्व कर सकें। इस प्रकार के बालगीत बच्चों के स्वाभाविक विकास के पथ में बाधक भी हो सकते हैं। जो बालगीत बच्चों की मनोभावनाओं को एक संकुचित सीमा में बाँध कर रख दें उन्हें हम श्रेष्ठ बालगीत नहीं कह सकते।

किसी भी भू भाग की कविता वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों, सामाजिक रहन-सहन इत्यादि से भी प्रभावित होती है। बंगाल शस्य श्यामला भूमि, खुले हुए मैदानों, चाँद तारों, फूल पत्तियों हरियाली, पक्षियों, अधिक वर्षा और नदी नालों तथा तालाबों का देश है। न्यूनाधिक उत्तर भारत के उन भूभागों की भी यही विशेषतायें हैं जहाँ हिन्दी के बालगीत लिखे

जाते हैं। बंगाल में वर्षा, जल और हरियाली की कुछ अधिकता है। बंगाली और हिन्दी दोनों भाषाओं के बालगीतों में बाह्य जगत का चित्रण हमें मिलता है। मानवीय तत्व का सम्मिश्रण भी उनमें रोचक ढंग से हुआ है। पर बंगाली बाल गीत बच्चों के स्वाभाविक कौतूहल जिज्ञासा को रहस्यमय ढंग से व्यक्त करने में विशेष सफल हुए हैं। उदाहरणार्थ चाँद और चाँदनी से सम्बन्धित दो बालगीतों को हम लेते हैं। हिन्दी में नरेन्द्र मालवीय का एक बालगीत है——

मुझे बहुत अच्छा लगता है चाँद तुम्हारा मुस्काना।
नील गगन की खिड़की में से झाँक झाँक कर हर्षाना
मुझे बहुत अच्छा लगता है चाँद तुम्हारा मुस्काना।
थकी हुई औ तपी धरा को शीतलता से नहलाना।।
मुझे बहुत अच्छा लगता है चाँद तुम्हारा मुस्काना।
शुभ्र चाँदनी से इस जग पर प्यारा अमरित बरसाना।।

इसमें बच्चों के मन की एक बात को सीधे-सादे ढंग से कवि ने व्यक्त कर दिया है। बंगाली भाषा में चाँदनी विषय पर मोहित लाल मजूमदार का एक बालगीत है——

फूट फूटे जोछनाय जेगे शुनि बिछानाय।
बने कारा गान गाय——झिमि झिमि झूम झूम
चाउ केन पिटि पिटि——उठे पड़ लक्ष्मीटि।
चाँद चाय मिटि मिटि——बन भूमि निझ झूम
फाल्गुने बने बने——परीरा ये फूल बोने।
चले ऐस भाई बोने——चोख केन घूम घूम

(शुभ्र चाँदनी में मैं सुनता लेटा हुआ बिछौने पर।
दूर बनों में झूम झूम कर कौन गीत गाता मनहर।।
छोटी छोटी आँखों से वह कौन देखता है मुझको।
बिस्तर से जल्दी उठ आओ, मुन्ने देखो तो उसको।।
विमल चाँद भी देख रहा है अपनी छोटी आँखों से।
सूने बन की खामोशी में, झाँक झाँक कर शाखों से।।
यह फागुन की धुली चाँदनी चम चम करती आती है।
बन बन में डाली डाली पर सुन्दर फूल खिलाती है।।
सारे भाई बहिन अरे तुम, ऐसे में उठ आओ तो।
कैसा सुन्दर सुखद समय है, निद्रा दूर भगाओ तो।।)

यहाँ जिस रहस्यमय ढंग से कौतूहल को जगाते हुए चाँदनी के छिटकने का वर्णन किया गया है वह बंगाली साहित्य की एक अपनी विशेषता है।

चाँद तारों की तरह वर्षा ऋतु पर भी हिन्दी और बंगाली भाषा में बहुत से बालगीत लिखे गए हैं। बंगाल में हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों की अपेक्षा वर्षा अधिक होती है अतएव कवियों का उसी भाव से प्रेरित होकर लिखना स्वाभाविक है। कालिदास राय का एक बालगीत है 'वर्षाय'——

एकाकार आजि सब वर्षाय दलले।
ऊँचू नीचू जाति भेद डूब गेछे अतले॥
खाल बिल नदी नद खाना डोबा गोष्पद,
छबि करे मच्छव जल चल सकले।
रवितार अभिमान छेले नव शासने
शशि ह' ये आलोदय जलदेर आसने।
साउतली शालवन करे के गा आलोड़न,
महुआय मातो यारा मादलेर वादने।
गरीबेर चाला घर पाथार तरंगे
भेसे चले धनीदेर गोला घर संगे।
विपदे पड़िया गोंड़ा खाय भात माछ पोड़ा
माझि देर हांड़ि तेइ जाति विधि लंघे।
आशा पाशि जामिदार राम तेरा आजि के
देया डाके खेया घाटे साधे खेया माझि के।
बाड़ीर गारद घरे बादल बन्दी करे
मजूर हुजूरे आर आसामी उ काजी के।
एकाकार चारि धार आजि कार बादरे
ऊँच नीच भेद सब चूके गेल भादरे।
चले नाको बाबू गिरि पिछल हये छे सिंडि
कादा टाने दादा भाइ सबारेइ सादरे॥

(धरती एकाकार हुई है ऐसा बरसा पानी।
ऊँच नीच बेकार हुए सब जाति भेद बेमानी॥
नहर झील नद नदी सरोवर सब में है गहरा जल।
सभी महोत्सव मना रहे हैं कहीं नहीं है 'जल तल'॥
सूरज का अभिमान आज है नव शिशु के शासन में।
आ सदेह शिशु समा गया है सरवर के आसन में॥
कौन शालबन संथालों का अस्त व्यस्त कर जाता।
तेज नशा महुआ का सिर पर चढ़ कर ढोल बजाता॥
निर्धन की कुटिया से उड़कर वायु तरंगों में तिर।
नाज धनी के गोला घर में आ आकर जाता गिर॥
विपदा पड़ने पर सब चावल झुलसो मछली खाते।
भाभी की हांडी पकने पर जाति भेद रह जाते॥
जमीदार औ आसामी सब होकर एक बराबर।
बुला रहे हैं खड़े घाट पर मांझी को चिल्लाकर॥
घर में बन्दी बना दिये हैं बादल ने नारी नर।
मिल मालिक मजदूर विचारक नहीं किसी में अन्तर॥

भावों के मेघों ने कलरव ऐसा किया अनोखा।
आज नष्ट हो गया भाव ही छोटों और बड़ों का॥
बाबू पन अब नहीं शान से शीश उठाये चलता।
जो कोई सीढ़ी पर चढ़ता है अब शीघ्र फिसलता॥
कीचड़ बुला रही है सबको भाई बंधु समझ कर।
धरती एकाकार हुई है सब हैं एक बराबर॥)

इस बालगीत में वर्षा का वर्णन होने के स्थान पर वर्षा के प्रभाव का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है। बच्चों की कल्पना उन सब बातों तक पहुँच सकती है जिनका उल्लेख इसमें किया गया है। पर बच्चे और बड़े सब इसका आनन्द समान रूप से ले सकते हैं। इसमें कल्पना की उस विशेषता का अभाव है जिसके कारण बच्चे ही वह कल्पना कर सकते हैं जो उनके लिए लिखित बालगीतों में व्यक्त होती है।

हिन्दी में जितने वर्षा सम्बन्धी गीत लिखे गए हैं उनमें वर्षा का आह्वान करने और उमड़ घुमड़ कर बादलों के घिरने का ही वर्णन अधिक है। हिन्दी उन क्षेत्रों की भाषा है जहाँ अपेक्षाकृत गर्मी अधिक पड़ती और वर्षा कम होती है। वहाँ के किसानों का सारा जीवन, शादी ब्याह और रहन-सहन तक समय पर पर्याप्त वर्षा हो जाने पर ही निर्भर होता है। गर्मी अधिक पड़ने से पृथिवी सूखकर बंजर हो जाती है और उनके जीवन की सारी हँसी खुशी पर तुषारपात हो जाता है इसलिए वहाँ बादलों के इकट्ठे होने और उमड़-घुमड़ कर बरसने का जितना महत्त्व हो सकता है उतना बरस चुकने के बाद धरती के एकाकार हो जाने का नहीं। इसलिए हिन्दी क्षेत्रों के बालक ऐसे ही बालगीत गा सकते हैं जिनका एक उदाहरण निम्नलिखित बालगीत है—

बरसो राम धड़ाके से। बुढ़िया मर गई फाके से॥
गरमी पड़ी कड़ाके की। नानी मर गई नाके की॥
घबराई मछली रानी। देख नदी में कम पानी॥
पेड़ों के पत्ते सूखे। धोबी के लत्ते सूखे॥
जब सब मिल कर चिल्लाये। उमड़ घुमड़ मेघा आये॥
ओले बरसे टप टप टप। सबने खाये गप गप गप॥

वर्षा प्रारम्भ हो जाने पर जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार मध्य प्रदेश आदि के बच्चे खुले मैदानों गलियों और आँगनों में प्रसन्नतापूर्वक खेलना प्रारम्भ कर देते हैं वैसे ही बंगाल के बच्चे भी खुशियाँ मनाते हैं। इसी प्रसन्नता का वर्णन रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने इस बालगीत में किया है—

दिनेर आलो निबे ऐलो सूर्य डूबे डूबे,
आकाश घिरे मेघ जूटे छे चाँदेर लोभ लोभ।
मेघेर ऊपर मेघ करेछे रंगेर ऊपर रंग,
मन्दिरेते कांसर घंटा बाजल ठन्न ठन्न।
उपारेते विष्टि ऐलो झालसा गाछ पाला,
एपारेते मेघेर माथाय एक धो माणिक जाला।

बादल हाउ याय मने पड़े छेले बेलार गान,
बिष्टि पड़े टापुर टुपुर नदेय एल बान।

("दिन की किरण खत्म है सूरज सागर में गिरता है।
आसमान में मेघ चाँद के लालच में फिरता है॥
उठे मेघ पर मेघ रंग पर रंग अनेक गये बन।
मन्दिर में कांसे का घंटा बोल रहा ठन ठन ठन॥
बरस रहा है पानी रिम झिम रिम झिम पार नदी के।
सब अस्पष्ट दिखाई देते पौधे पेड़ सजीले॥
बार बार काले मेघों में बिजली कड़क मचलती।
जिससे हैं इस पार नदी के सौ सौ मणियाँ जलतीं॥
यह तूफान देखकर आते याद गीत बचपन के।
बाढ़ नदी में आई वर्षा टुपुर टुपुर होने से॥")

बंगाल में थोड़ी सी ही वर्षा होने से नदियों तालाबों में पानी बढ़ जाता है। इसलिए इस बालगीत में खुशियों की उमंग के साथ-साथ नदी में बाढ़ आने का उल्लेख भी किया गया है। पर उत्तरी भारत में अतिवृष्टि के बिना बाढ़ कभी नहीं आती इसलिए वहाँ के बालगीतों में वर्षा वर्णन के साथ-साथ बाढ़ का वर्णन करना आवश्यक नहीं।

बंगाल की प्राकृतिक छटा में शाल्मलि, चम्पा, रजनी गंधा के साथ-साथ ताड़ और नारियल के वृक्षों का भी अपना अलग स्थान है। ताड़ की लम्बी डंडी में बड़े-बड़े गोल पत्ते ऊपर उठकर छत्र सा तने रहते हैं। और वह जब तेज़ हवा में हिलते हैं तो सचमुच ऐसा लगता है कि ताड़ वृक्ष आकाश में उड़ कर चला जाने को पर फड़फड़ा रहा है। इसीलिए रवीन्द्र नाथ टैगोर ने जहाँ अपनी कविताओं में चम्पा, रजनी गंधा, शाल्मलि इत्यादि के वर्णन किये हैं वहाँ वह एक बालगीत ताड़ वृक्ष पर भी लिखना नहीं भूले हैं। अपने रूप में साधारण तया अन्य वृक्षों से विचित्र होने के कारण वह बच्चों के आकर्षण और कौतूहल का विषय भी होता है। उन्होंने बड़ी सुन्दर बाल स्वभावोचित कल्पनायें उसे देख कर की हैं——

ताल गाछ एक पायें दाँड़िये
सब गाछ छाड़िये अंकि मारे आकाशे।
मने साध कालो मेघ फूंड़े जाय
एके बारे उड़े जाय कोथा पारे पाखा से।
ताइ तो से ठिक तार माथा ते
गोल गोल पाता ते इच्छाटि मेले तार।
मने मने भाबे बूझि डाना एइ
उड़े जेते माना नेइ वासा खानि फेले तार।
सारा दिन झर झर थन्तर
काँपे पाता पन्तर उड़े जाबे भावे ओ।
मने मने आकाशेते बेड़िये
तारावेर एड़िये येन कोथा याबे ओ।

तार परे हावा येइ नेमे याय
पाता कांपा थेमे याय फेरे तारि मनटि।
येइ भाबे मा ये हय माटि तार
भालो लोगे आर बार पृथिवीर कोनटि।

(ताड़ खड़ा हो एक पाँव पर। सब वृक्षों से ऊँचा उठकर॥
झाँक रहा है आसमान के। सूने पन में बड़े ध्यान से॥
सोच रहा है वह मन ही मन। अगर बात ऐसी जाये बन॥
काले बादल छिन्न भिन्न कर। वह उड़ जाये फर फर फर॥
किन्तु कहाँ से वह पाये पर। इसी लिए वह रख माथे पर॥
गोल, गोल पत्तियाँ दिखाता। अपनी इंच्छायें प्रकटाता॥
सोच रहा है वह मन ही मन। अगर पत्तियाँ पर जायें बन॥
तो अपना घर बार त्याग कर। वह सदेह उड़ जाये ऊपर॥
काँप काँप कर पत्ते दिन भर। झर झर झर झर थर थर थर थर॥
उसकी इच्छा प्रकटाते हैं। मानो अभी उड़े जाते हैं॥
सोच रहा है वह मन ही मन। उड़ सकने वाला पक्षी बन॥
नभ में उड़ता जाता है वो। नीचे छोड़ तारिकाओं को॥
इसके बाद हवा रुक जाती। पत्तों की कँपकँपी भुलाती॥
सोच रहा है वह मन ही मन। तभी छोड़ कर वह नभ विचरण॥
नीचे लौट धरा पर आया। माटी माता का सुख पाया॥
धरती उसको सब सुख देती। उसको उठा गोद में लेती॥)

बच्चे जब कल्पना में बहुत अधिक खो जाते हैं तो उन्हें उसके संगत या असंगत होने का भी ध्यान नहीं रहता। सब जानते हैं कि ताड़ का पेड़ आकाश में उड़कर नहीं जा सकता पर बालक की कल्पना में वह आकाश की तारिकाओं को भी नीचे छोड़कर बहुत ऊँचा उड़ जा सकता है। पर किसी कल्पना को सदा सर्वदा के लिए सत्य से दूर नहीं किया जा सकता। इसलिए ताड़ का वृक्ष भी अन्त में पृथ्वी पर लौट आता है। बच्चे भी इसी प्रकार खेलते समय दूर-दूर घूम फिर कर अन्त में अपने घर लौट आते हैं।

हिन्दी में ताड़ वृक्ष ने कभी किसी कवि की कल्पना को प्रेरित नहीं किया। पर आम, नीम, पीपल, नारंगी आदि अनेक वृक्ष ऐसे हैं जिनपर लिखे बालगीत मिलते हैं। आम पर तो अनेक कवियों ने बालोपयोगी कवितायें लिखी हैं। उत्तरी भारत में आम बहुत होता है और उसे फलों का राजा कहा जाता है। सुगन्धि युक्त मीठे आम के आगे बच्चों को सेब सन्तरा अनार या अंगूर कोई भी फल अच्छे नहीं लगते। उन सब दूसरे फलों को इससे दुख होता होगा, इसकी कल्पना करके श्री प्रह्लादनारायण रायजादा ने बच्चों के मन में स्वाभाविक रूप से रहने वाले ईर्ष्या भाव को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है——

लगा जब आम डाली पर फटी छाती अनारों की
लगे बेचारे पछताने कि हमको कौन पूछेगा?
चढ़े आकाश को नारियल जटा धारण किये सिर पर
पड़ा है पेट में पानी कि हमको कौन पूछेगा?

सुनी जब आम की शुहरत पपीते पड़ गये पीले
लगा फाँसी रहे लटके कि हमको कौन पूछेगा ?
कि बढ़कर क्या करेंगे हम यही अंगूर ने सोचा,
इसी से रह गया छोटा कि हमको कौन पूछेगा ?
बिचारे सन्तरे ने जब सुना यश गान आमों का
कलेजे के हुए टुकड़े कि हमको कौन पूछेगा ?
देखा जब आम को बढ़ते जला मन रह गया जामन
इसी से हो गया काला कि हमको कौन पूछेगा ?
फलों का आम राजा है, हमीं बस रह गये पीछे
सभी को सोच है भारी कि हमको कौन पूछेगा ?

इस प्रकार के बालगीत बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उनकी भावनाओं का परिष्कार भी करते हैं। ताड़ वृक्ष कविता से जैसे बच्चों की कल्पना के विकसित होने में सहायता मिलती है उसी प्रकार आमों के इस गीत से बच्चों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना का परिष्कार होता है।

बच्चों को शिक्षा या उपदेश देने की भावना से प्रेरित होकर भी बहुत से बालगीत दोनों ही भाषाओं में लिखे गए हैं। यह उपदेशात्मक गीत भी दो प्रकार के होते हैं। एक वह जिनमें मनोरंजन के साथ कुछ संकेत सुझाव दिये जाते हैं दूसरे वह जिनमें सूत्र रूप से ज्ञानोपदेश की कोई बात कह दी जाती है। दूसरे प्रकार के गीत बच्चों के मन के प्रिय बालगीत नहीं हो सकते। प्रिय होने के लिए उनमें मनोरंजन तत्व का होना नितान्त आवश्यक है। ईश्वर चन्द्र गुप्त का निम्नलिखित बालगीत बड़ों द्वारा बच्चों को रटा कर भले ही याद करा दिया गया हो पर बच्चों को यदि स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये तो वह इसके बजाय ऐसा बालगीत पढ़ना पसन्द करेंगे जिससे उनका मनोरंजन हो। वह बालगीत इस प्रकार है--

आपनाके बड़ बले बड़ सेइ नय
लोके यारे बड़ बले बड़ सेइ हय॥
बड़ हउ या संसारे कठिन व्यापार।
संसारे से बड़ हय बड़ गुन यार॥
हिताहित न जानिया मरे अहंकारे।
निजे बड़ हते चाय छोट बलि तारे॥
गुणेते हइले बड़, बड़ कय सबे।
बड़ यदि हते चाव, छोट हव तबे॥

(खुद अपने को बड़ा कहे से कोई होता बड़ा नहीं।
लोग बड़ा जिसको कहते हैं, सचमुच होता बड़ा वही॥
महापुरुष होना दुनिया में बहुत सरल है काम नहीं।
जिसमें अच्छे गुण होते हैं सचमुच होता बड़ा वही॥
जो न हिताहित जान जगत का अंधकार में रहते हैं।
बड़ा समझते जो अपने को छोटा उनको कहते हैं॥

बड़ा वही कहलाता जग में अच्छे गुण अपनाता जो।
अगर बड़े बनना चाहो तो अपने को छोटा समझो॥)

इस बालगीत में जो यह कहा गया है कि 'बड़ हउ या संसारे कठिन व्यापार' इससे बच्चों के मन में निराशा का एक ऐसा भाव भी जम सकता है कि वह बड़े होने का विचार ही छोड़ दें। हिन्दी में इसी प्रकार का एक बालगीत पंडित सोहनलाल द्विवेदी का है--

खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगन्ध फैलाओगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से तो गन्दे बन जाओगे॥
कौये का यदि साथ करोगे तो बोलोगे कड़वे बोल।
कोयल का यदि साथ करोगे तो तुम दोगे मिसरी घोल॥
जैसा भी रँग रँगना चाहो घोलो ले वैसा ही रंग।
अगर बड़े तुम बनना चाहो तो तुम रहो बड़ों के संग॥

द्विवेदी जी का यह बालगीत ईश्वर चन्द्र गुप्त के उपर्युक्त बालगीत से अधिक रोचक है। इसमें बात को सीधे सादे ढंग से न कह कर संकेतों से काम लिया गया है। फिर भी अन्तिम दो पंक्तियों में कवि का उपदेशक का रूप स्पष्ट होकर सामने आ गया है। यह दो पंक्तियाँ अगर न भी होतीं तो कविता की प्रभावोत्पादकता में कोई अन्तर न पड़ता। बड़ों के संग रहने का जो उपदेश इन पंक्तियों में दिया गया है उसे भी कोई समझदार बच्चा ग्रहण नहीं कर सकता। बड़ों के संग रहकर वह अपने खेल भी आजादी से नहीं खेल सकता इससे उसके स्वाभाविक विकास के अवरुद्ध होने की भी आशंका हो सकती है।

बच्चों को ज्ञानोपदेश देने के प्रति इतना आग्रह हमें अंग्रेज़ी बालगीतों में नहीं मिलता। उनमें मनोरंजक तत्व को सदा प्रधान माना गया है इसलिए उपदेश की कोई बात यदि कहीं भी गई है तो इस ढंग से कि बच्चे उसे रोचक समझ कर ग्रहण कर सकें। कुछ बंगाली बालगीतों में भी हम यह बात पाते हैं। रजनीकान्त सेन का एक बालगीत 'स्वाधीनतार सुख' है--

बाबुई पाखीरे डाकि बलि छे चड़ाई।
'कुँड़े घरे थेके कर शिल्पेर बड़ाई॥
आमि थाकि महा सुखे अट्टालिका' परे।
तुमि कत कष्ट पाउ रोद बृष्टि झड़े॥'
बाबुई हासिया कहे 'सन्देह कि ताय।
कष्ट पाइ तबू थाकि निजेर बासाय॥
पाका होक, तबू भाइ परेर उ बासा।
निजे हाते गड़ा मोर कांचा घर खासा॥'

(एक बया को बुला जोर से कहने लगी चड़ाई।
"अपने इसी घोंसले की तू करती शिल्प बड़ाई॥
मैं ऊँचे महलों के अन्दर सदा मोज से रहती।
धूप बृष्टि तूफानों में तू है कितना दुख सहती ?"

"इसमें कुछ सन्देह नहीं है" कहा बयाने हँसकर।
कष्ट सही पर रहने को तो है मेरा अपना घर॥
ऊँचा महल सही, पर तेरा नहीं दूसरे का है।
इससे स्वयं बनाया मेरा कच्चा घर अच्छा है॥)

चड़ाई और बया की बात चीत के बहाने से इस बालगीत में ज्ञान की एक ऐसी बात कह दी गई है कि बच्चों को उसके प्रति अरुचि नहीं हो सकती। समाज में बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो दिन रात बड़े लोगों की चापलूसी करते रहने के कारण भ्रमवश यह समझ लेते हैं कि वह भी बड़े आदमी हैं। पर बड़े आदमी का धन ऐश्वर्य उनका अपना कभी नहीं होता इसलिए अन्त में उन्हें पछताना पड़ता है। जो बच्चे यह जानते हैं कि बया अपना घोंसला स्वयं बनाती है और चड़ाई दूसरों के महलों में फुदकती फिरती है वह उन दोनों की उपरियुक्त वार्त्ता से यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि अपना घर स्वयं बनाकर स्वाधीनता पूर्वक रहना अच्छा है। और इस बालगीत के लेखक कवि की कुशलता इस बात में है कि बिना उपदेश दिये ही यह भाव बच्चे के मन पर अंकित हो जाता है।

इसी प्रकार का एक दूसरा बालगीत कुमुद रंजन मल्लिक का है—'अबूबा'

बिछुटि बलिछि—शुन उहे आनारस।
कि गुने मानवे तुमि करियाछे वश?
कन्टक सहिया तबू तब काछे जाय।
आमार काछे तो केइ आसे ना' को हाय॥
आनारस बले—'हेथा पाय फूल मधू।
तोमार ये आछे सखा, विष टूक शुधू॥'

(एक बार बिच्छू ने यों ही अनन्नास से पूछा।
'तूने वश में किया मनुज को तुझमें क्या गुण ऐसा?
काँटे सह सहकर भी तेरे पास लोग सब जाते।
पर मेरे तो पास न कोई कभी भूलकर आते॥"
अनन्नास ने कहा कि मुझसे वह मीठा रस पाते।
पर वह विष ही विष पाते जो पास तुम्हारे जाते॥

सब बच्चे जानते हैं कि बिच्छू के डंक होता है और अनन्नास के काँटे। अतएव बिच्छू और अनन्नास की इस बात-चीत से वह यह भाव ग्रहण कर सकते हैं कि बाहरी रंग रूप एक से होते हुए भी मनुष्य अपने आन्तरिक गुणों के कारण समाज में आदर या निरादर पाता है। हिन्दी में इसी प्रकार की बातें कौआ और कोयल की वार्त्ता के रूप में कही गई हैं। कपिल जी का एक बालगीत है—

कौआ—'कोयल दीदी! मुझे बताओ कैसे गीत सुनाती हो।
भेद भरी क्या बात? कि जिससे जग में आदर पाती हो॥
क्यों मुझको दुत्कारा जाता लोग बन्द कर लेते कान।
मेरे बोल न प्यारे लगते हम दोनों जब एक समान॥'

कोयल—'हम दोनों तन के काले हैं बोल न लेकिन एक समान।
बोल तुम्हारा कड़वा लगता मेरी मधु सी मीठी तान॥
भेद भरी कुछ बात न प्यारे और न कुछ गीतों में पोल।
तुम भी आदर पा सकते हो बोल सको यदि मीठे बोल॥'

ज्ञान और उपदेश की भावना से सर्वथा रहित केवल मनोरंजन की भावना से लिखे गए बालगीतों की भी हिन्दी की तरह बंगाली भाषा में कमी नहीं है। बच्चों का मनोरंजन केवल विचित्र बातों को चमत्कारपूर्ण ढंग से कहने से ही नहीं होता। जिस पंक्ति में उन्हें अपने मन की बात कही हुई मिलती है वह साधारण होते हुए भी उनका उतना ही मनोरंजन करती है जितना चमत्कार पूर्ण ढंग से कही हुई बात। बच्चों को वही बालगीत सबसे अधिक रुचि-कर और मनोरंजक लगते हैं जिनमें उनके मनोभाव उनकी-सी सरल भाषा में उतार कर रख दिये गये हों। उदाहरण के लिए श्रीमती शकुन्तला शिरोठिया के निम्नलिखित बाल-गीत में न कोई विचित्र भाव है न कोई चमत्कारिक ढंग पर मदारी और बन्दर के तमाशे का एक चित्र-सा शब्द खींचते चलते हैं इसलिए बच्चे उसे पसन्द करते हैं—

देखो बन्दर वाला आया। डम डम डम डम डमरू लाया॥
एक बंदरिया औ बन्दर को। इसने कैसा नाच नचाया॥
बन्दर की टोपी है कैसी। बन्दरी बनी दुलहनिया जैसी॥
दोनों कैसे नाच रहे हैं। सबसे पैसे जाँच रहे हैं॥

इसी प्रकार का एक बंगाली बालगीत सुकुमार राय का लिखा है, बाबू राम सापुड़े—

बाबू राम सापुड़े—कोथा यास बापूरे?
आय बाबा देखे या—दू टो साप देखे या
ये सापेर चोख नेइ—शिर नेइ नख नेइ
छोटे ना कि हाँटे ना— का उके ये काटे ना
कारे ना को फोंस फांस—मारे ना को टुंश टांश
नेइ कोन उत्पात—खाय शुधू दूध भात
सेइ साप ज्यानतो—गोटा दुई आनतो
तेड़े मेरे डांडा—करे दिई ठांडा

(बाबू राम सपेरे—इधर कहाँ चले रे।
आओ बाबा देखो—यहाँ रखो साँप दो।
जिनके न आँख हो—नाखुन न पाँख हो।
जो न चले डोले—किसी से न बोले।
मारे फुंकार ना—काटे फन मार ना।
करे उत्पात ना—जियें दूध भात खा
जिन्दा दो साँप वो—लाओ यहाँ मुझे दो।
मैं कसकरमारूंडंडा—और उन्हें कर दूं ठंडा।)

इस बालगीत में सिरोठिया जी की मदारी कविता की तरह केवल वस्तु स्थिति का चित्र नहीं है। सांपे को देख कर बच्चे के मन में जो इच्छा उठती है उसका भी चित्रण है। बच्चे

के मन में सुन्दर साँपों को देखने की इच्छा होती है पर विषैले साँपों से वह डरता भी है इसलिए वह कल्पना में ऐसे साँप देखना चाहता है जिनके डरावनी आँखें न हों, जो किसी के काटते न हों, दूध भात खाते हों। वह यह भी जानता है कि साँप आखिर साँप ही हैं वह अपनी काट खाने की आदत को छोड़ नहीं सकते इसलिए अन्त में उसके मन में आता है वह उन्हें डंडा मारकर ठंडा कर देगा। बच्चों के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बहुत ही सफल बालगीत है। बंगाल के बच्चों में यह बहुत लोकप्रिय हुआ है।

जिन बालगीतों में असम्भव अनहोनी और अचरज भरी बातें बच्चों को मिलती हैं उन्हें भी वह बहुत पसन्द करते हैं। योगीन्द्र नाथ सरकार ने एक बालगीत 'मजार देश' लिखा है—

एक ये आछे मजार देश सब रकमें भालो।
रात्ति रेते बेजाय रोद दिने चांदेर आलो॥
आकाश से थाय सबुज बरन गाछेर पाता नील।
डांगाय चले रूई कातला जलेर मांझे चिल॥
मन्ता मिठाइ तितो सेथा उषुध लागे भालो।
अंधकार टा सादाय देखाय सादा जिनिष कालो॥
छेलेरा सब खेला फेले बइ ने 'बसे' पड़े।
मुखे लागाय दिये घोड़ा लोकेर पिठे चड़े॥
घूड़िर हाते बांशेर लाटाइ उड़ते थाके छेले।
बंशी दिये मानुष गांथे माछेरा छिप फेले॥
जिलिपि से तेड़े ऐसे कामड़ दिते चाय।
कचूरि आर रस गोल्ला छेले धरे खाय॥
पाये छाति दिये लोके हाते हेंटे चले।
डांगाय भासे नौका जाहाज गाड़ी छोटे जले॥
मजार देशेर मजार कथा बलब कत आर।
चोख खूलले पाय ना देखा सूदले परिष्कार॥

(एक देश है बड़े मजे का। सब प्रकार वह सबसे अच्छा॥
वहाँ रात में धूप फैलती। दिन में किरने चारु चाँद की॥
गगन हरा दिखलाई देता। नीला होता रंग पत्ते का॥
रोहू चलती है पृथिवीपर। चीलें उड़ती जल के भीतर॥
कड़वे होते कन्द मिठाई। लगती है स्वादिष्ट दवाई॥
अंधकार होता उजियाला। है सफेद लगता रंग काला॥
बच्चे अपने खेल छोड़कर। पाठ याद करते हैं दिन भर॥
मुख में लगा लगाम मनुज के। हो जाते सवार हैं घोड़े॥
लिये पतंग हाथ में चरखी। है बच्चे को खूब उड़ाती॥
भले आदमियों को मछली। है बंछी से खूब पकड़ती॥
दौड़ जलेबी काटे खाती। पीछे लोगों के पड़ जाती।
मठरी रसगुल्ले जब पाते। छोटे बच्चों को खा जाते॥

छाता लगा पांव के ऊपर। [illegible]॥
चलती रेल [illegible] जल पर। [illegible]॥
है सचमुच वह देश मजे का। [illegible]॥
आँख खोलने से न वहाँ की। चीजें दिखलाई दे पातीं
लेकिन आँख बन्द रखने से। साफ नजर आतीं सब चीजें॥)

बच्चों में कौतूहल और जिज्ञासा की प्रवृति बहुत प्रबल होती है। वह जिस वस्तु को भी देखते हैं उसे उलट पुलट या तोड़-फोड़ कर उसका सब रहस्य एक साथ जान लेना चाहते हैं। वह अक्सर इस प्रकार की कल्पनायें भी किया करते हैं कि कोई वस्तु जैसी है वैसी न होकर उससे सर्वथा विपरीत किसी दूसरे प्रकार की होती तो कैसी लगती। इसलिए असंगत बातों का वर्णन करने वाले बालगीत भी उन्हें रुचिकर लगते हैं। जिस बच्चे में जिज्ञासा की भावना जितनी ही प्रबल होती है बड़ा होकर वह उतना ही ज्ञानवान बनता है। अंग्रेजी में इस प्रकार की असंगत कल्पनाओं से युक्त बहुत से बालगीत हैं—

Hey ! diddle, diddle
The cat and the fiddle
The cow jumped over the moon ;
The little dog laughed
To see the sport
While The dish ran away wth the spoon

या

If all the world were paper
And all the seas were ink
And all the trees were bread cheese
What should we have to drink

इन दोनों बालगीतों की कल्पनायें 'मजार देश' की कल्पनाओं के समान ही सर्वथा असम्भव और असंगत हैं। पर ऐसी कल्पनायें करने में बच्चों को वही आनन्द आता है जो एक विद्वान विचारक को नये विचार उत्पन्न करने में या किसी वैज्ञानिक को नई खोज करने में। बड़ों के लिए यह कल्पनायें निरर्थक होते हुए भी बच्चों के लिए बड़े महत्त्व की होती हैं।

हिन्दी में भी ऐसी असंगत कल्पनाओं से पूर्ण अनेक बालगीत लिखे गये हैं। मेरी 'टेसू के गीत' पुस्तक में ऐसे कई गीत हैं। टेसू भारतवर्ष में बच्चों के मनोविनोद के आधार और उनकी असंगत कल्पनाओं को उत्तेजित करने वाले प्रसिद्ध रहे हैं। बच्चे टेसू को हाथ में लिए घर-घर उनके गीत सुनाते फिरते हैं और बहुत-सी असंगत बातें अपनी ओर से जोड़-जोड़ कर गाते हैं। एक ऐसा ही टेसू का गीत है—

धन्य धन्य टेसू महराज। बहुत दिनों में आये आज॥
तुम्हें देखकर आये लाज। बिगड़े बने बनाये काज॥
उलटा हो जाये संसार। पर्वत पर चढ़ जाये धार॥
बादल बरसायें अंगार। सूरज बरसाये जलधार॥
नमक बने मीठा गुड़ खाय। चले रेल के ऊपर नाव॥

लगे बर्फ सी शीतल आग। गधा सुनाये मीठा राग ॥
बेलों पर चढ़ जायें पेड़। ऊन नहीं रेशम दें भेड़ ॥
कछुआ चले हिरन की चाल। चींटी फिरे फुलाये गाल ॥
मछली चरे पेड़ की छाल। बकरी फिरे तैरती ताल ॥
राजा राव बनें कंगाल। रंक भिखारी माला माल ॥
बूढ़ा ढोये दस मन धान। लेटे पैर पसार जवान ॥
ज्ञानी बन जायें नादान। मूर्ख महान बने विद्वान ॥
(इत्यादि)

बंगाली बालगीत साहित्य का एक विशेष अंग छड़ा गीत कहलाते हैं। छड़ा गीत उन छोटे-छोटे बालगीतों को कहते हैं जो बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए होते हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार के गीतों को 'ललेबीज' कहते हैं। हिन्दी में 'ललेबीज' का अनुवाद 'लोरियों' के अर्थ में किया जाता है। लोरियाँ भी उन बच्चों के लिए लिखी जाती हैं जिन्हें भाषा का ज्ञान तक नहीं होता। पर छड़ा गीत लोरियाँ ही नहीं होते क्योंकि वह बच्चों को सुलाने के लिए ही नहीं लिखे जाते। उनका उद्देश्य बच्चों का मन बहलाव करना होता है। उनमें बच्चों की सुपरिचित वस्तुओं का सहारा लेकर सरल भाषा में कुछ इस प्रकार की बातें कही जाती हैं जो उनके मनोनुकूल हों। बंगाली भाषा के कुछ छड़ा गीत इस प्रकार हैं—

भाइ आसबे बिये करे—टग बगिये घोड़ाय चड़े।
बौ आसबे पाल किटाते—ऽानाइ शिंगि बाजबे साथे ॥

(भाई टक-टक करते हुए घोड़े पर सवार होकर शादी करके आयेगा। बहू पालकी में आयेगी और शृंगी और शहनाई साथ में बजते होंगे।)

ताइरे ना-ना ताइरे नाना।
खायना मयूर मटर दाना ॥
नाच जूड़े छे दाउयार काछे।
मत्त हये खोकन नाचे ॥

(ताइरे नाना, ताइरे नाना, मोर मटर के दानों को नहीं खाता। वह बरामदे के पास नाच रहा है। मस्त होकर मुन्ना भी नाच रहा है।)

बुद्धू रांधे डालेर बड़ा कल्लू रांधे झोल रे।
मजा करे आमरा खाब उठात बाधे गोल रे ॥
डालेर बड़ा झलसे गेल बुद्धू गेल भड़के।
कल्लू जेमन झोल नामालो कड़ाइ गेल हड़के ॥

(बुद्धू दाल की पकौड़ी बना रहा है। कल्लू झोल (रसा) बना रहा है। हम सब मजे से खायेंगे। सहसा बात बिगड़गई। दाल की पकौड़ी झुलस गई। बुद्धू भड़क उठा। कल्लू ने झोल जभी चूल्हे से उतारा कढ़ाई उतर गई।)

सात सागरे उपार थेके आसछे आमार भाइ।
आसछे तेजी घोड़ाय चड़े-कोमर बेंधे पागड़ि परे ॥

पाड़ार जत छेले मेये देखते आसे ताइ।
फूल छड़िये जाइरे आमि फूल छड़िये जाइ ॥

(सात सागर पार से मेरा भाई आ रहा है। वह तेजी से घोड़े पर चढ़ कर आ रहा है। कमर में पटका और सिर पर पगड़ी बंधी है। मुहल्ले के सब लड़के लड़कियां उसे देखने को आती हैं। मैं भी (उसके मार्ग में) फूल छोड़ने जाऊँगी। फूल छोड़ने जाऊँगी।)

चांदा मामा भाजेन बड़ा आमरा से थाय गेलाम खेते।
चांदा मामा मेजाज कड़ा बसेन तिनि मोड़ा पेते।
थालाम निजे खान ये खाबार मोदेर दिलेन पेया लाते।
जइ पेयाला भांगलो मामार आग उन हये उठेत ताते ॥

(चन्दा मामा पकौड़ी बना रहे हैं। हम वहाँ खाने को गये। चन्दा मामा का मिजाज कड़ा है। वह मोढ़े पर बैठते हैं। वह स्वयं तो थाली में खाते हैं। हमें प्याले में खाने को दिया। ज्यों ही प्याला टूट गया। मामा आग की तरह तप्त हो उठे।)

इन छड़ा गीतों में बंगाल की विशेष संस्कृति और वहाँ के पारिवारिक जीवन के ऐसे चित्र हमें देखने को मिलते हैं जो प्रायः दूसरे बालगीतों में नहीं मिलते। हिन्दी में हम उनके समकक्ष उन छोटे-छोटे शिशु गीतों को रख सकते हैं जो भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से सरलतम प्रयास हैं। हिन्दी में छड़ा गीत की तरह उन्हें अलग से कोई नाम नहीं दिया जाता पर वह छोटे बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। हिन्दी में इस प्रकार के कुछ बालगीत यह हैं—

चिड़िया कहती टी टुट टुट। मुझको भी दे दो बिस्कुट ॥
भूखी हूँ मैं खाऊँगी। खा पी कर उड़ जाऊँगी ॥

या

एक शहर है टिम्बक टू। लोग वहाँ के हैं बुद्धू ॥
बिना बात के ही ही ही। बिना बात के हू हू हू ॥

या

फुदक फुदक कर कुदक कुदक कर।
चूं चूं गाती पूंछ हिलाती।
चिड़िया आती दाना खाती ॥
काना बाती कुरररररर...
चिड़िया उड़ गई फुररररर..

या

एक खवैया दो परसैया।
एक परोसे बरा सुहारी। एक परोसे सब तरकारी ॥
राम भरोसे खाय खवैया। एक खवैया दो परसैया ॥
एक परोसे बायें बायें। एक परोसे बायें बायें ॥
हँसें देखकर लोग लुगैया। एक खवैया दो परसैया ॥

आधुनिक काल में बंगाली भाषा में कुछ ऐसे छड़ा गीत भी लिखे गये हैं जो दुर्गा पूजा आदि से सम्बन्धित हैं। यह परम्परागत छड़ा गीतों से विषयान्तर के गीत कहे जा सकते हैं। सुकमल दास गुप्ता का एक ऐसा ही छड़ा गीत है—

डूम डूम डाकुर डुकुर डूम डूम डूम डूम।
दशमीते भांगा काँसर भांगलो पूजोर धूम॥
दुर्गा नेइको मर्त्यधामे दुर्गा गेछेन फिरे।
सबार चोखे छल छलिये मेघे ऐसेछे घिरे॥
दुर्गा नेइगो मर्त्य धामे स्वर्गे गेछेन डइ।
नन्दी नाचे, भृंगी नाचे मा ऐसे छेल कइ॥
भूत नाथे रइ ध्यान भेंगेछे भूत गुलोरइ घूम।
डूम डूम डूम डाकुर डुकुर भांगलो पूजोर धूम॥

(डूम डूम डूम डाकुर डाकुर दशमी के दिन टूटे घंटे के शब्द से पूजा का आनन्द समाप्त हुआ। दुर्गा अब मर्त्य लोक में नहीं है। वह लौट गई है। सबकी आँखों में अब पानी से भरे मेघ आ गए हैं। दुर्गा मर्त्य लोक में नहीं है। स्वर्ग को चली गई है। नन्दी और भृंगी नृत्य करते हैं। और कहते हैं माँ जो आई थी, वह कहाँ है। भूतनाथ का ध्यान टूट चुका है और भूतों की निद्रा भी टूट चुकी है। डूम डूम डूम डाकुर डुकुर।)

इन छड़ा गीतों का आनन्द बंगाली बालक ले सकते हैं पर जो दूसरे बालक उस पृष्ठभूमि से परिचित नहीं जिसको आधार मानकर यह लिखे गये हैं, उन्हें उनमें विशेष आनन्द नहीं आ सकता।

हिन्दी और बंगाली बालगीतों के विषयों, रचना शैली इत्यादि में बहुत समानता है। पर यह सत्य है कि बंगाली बालगीतों में भावनाओं और कल्पनाओं की रंगीनियाँ हिन्दी बालगीतों की अपेक्षा बहुत अधिक है। बंगाली बालगीतकारों ने बच्चों के मन को बहुत बारीकी से देखा है। उनकी रचनाओं में रस और काव्य सौंदर्य भी हिन्दी बालगीतों की अपेक्षा अधिक है। हिन्दी में इतिवृत्तात्मक गीत ही बहुतायत से मिलते हैं। बाल मन की वैसी अभिव्यक्ति और कल्पनाओं की वैसी उड़ान भी हिन्दी बालगीतों में नहीं मिलती जैसी बंगाली बालगीतों में है। पर विषयों की व्यापकता की दृष्टि से हिन्दी बालगीत साहित्य बंगाली बालगीत साहित्य से कहीं अधिक व्यापक और समृद्ध है। हिन्दी में बालगीत लिखने वाले कवि पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बम्बई, मद्रास तक में फैले हुए हैं इसलिए उसमें विषयों की विविधता जितनी है उतनी बंगाली बालगीतों में नहीं मिलती।

गेय तत्व बंगाली बालगीतों में हिन्दी से अधिक मिलता है। रवीन्द्र नाथ टैगोर के कुछ गान कहे जाने वाले बालगीत तो राग-रागिनियों के स्वरों में बाँध कर बहुत सुन्दर रूप में गाये जा सकते हैं। हिन्दी में बालगीतों के गेय तत्व की ओर अभी उतना ध्यान भी नहीं दिया गया। पर विषयों की विविधता की तरह छन्दों की विविधता भी हिन्दी बालगीतों में अधिक है। हिन्दी में अब तो मुक्त छन्द में अतुकान्त कवितायें भी बच्चों के लिखी जाने लगी हैं। यह भविष्य ही बतायेगा कि वह कहाँ तक सफल होती हैं।

---

१७ : तेलुगु बाल साहित्य में बालगीत

दक्षिण भारत की चार प्रमुख भाषाओं में तेलुगु का एक प्रमुख स्थान है। इसे दक्षिण में संगीत की भाषा कहलाती है। उसका साहित्य अन्य अनेक भारतीय भाषाओं की तरह ईसा की ग्यारहवीं शताब्दि से प्रारम्भ होता है। तेरहवीं शताब्दि में तिक्कना (१२००—१२५८) नाम के एक लोकप्रिय कवि तेलुगु भाषा में हुए। वह कवि होने के साथ-साथ एक महान योद्धा भी थे। उनके लिखे हुए महाभारत के विषय में यह कहा जाता है कि वह व्यास रचित मूल संस्कृत महाभारत से भी अधिक सरस और प्रभावोत्पादक शैली में लिखा गया है। इसीलिए उन्हें तेलुगु भाषा में कवि ब्रह्म की उपाधि से विभूषित किया गया था। पर तेलुगु के जिन दो कवियों ने समाज और साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित किया वह पन्द्रहवीं शताब्दि में श्रीनथा (१३८०–१४४५) तथा पोतन्ना (१४५०–१५१०) नाम के दो कवि हुए। काव्य रचना, भाषा शैली और विचारों में वह एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थे। श्रीनथा एक दरबारी कवि थे। और सब प्रकार से सुख वैभव और ऐश्वर्य के बीच रहने के कारण उसी प्रकार के वातावरण से उनकी कविता प्रभावित है। पोतन्ना राजाश्रय, ऐश्वर्य और सम्पत्ति से दूर रहने वाले एक जन कवि थे। उन्होंने किसी भी मूल्य पर अपने काव्य का समर्पण वारंगल के राजा सर्वज्ञ सिंग भूपाल को करना स्वीकार नहीं किया। उनकी भाषा शैली में एक ऐसा स्वाभाविक प्रवाह और संगीतात्मकता है जिससे उनकी रचनायें आज तक जनता में रुचि से पढ़ी और गाई जाती हैं। वृद्ध ग्रामीण स्त्रियाँ तक उनकी गजेन्द्र मोक्ष, प्रह्लाद चरित्र, रुक्मिणी कल्याण तथा ध्रुवोपाख्यान आदि काव्य कथायें बच्चों को गा गा कर सुनाया करती हैं। इन दोनों कवियों के बाद ही सोलहवीं शताब्दि में वह समय आता है जो तेलुगु साहित्य का स्वर्ण काल कहलाता है। उसे कृष्ण देवरैय्या का समय भी कहते हैं। उस समय विजय नगर राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था और वहाँ के राजा कृष्ण देव रैय्या ने साहित्य तथा कला की उन्नति के लिए विशेष प्रयत्न किया। पर इस काल की तेलुगु कविता कुछ बड़े-बड़े काव्य शिल्पियों की सौन्दर्याभिव्यक्ति की वस्तु बन कर रह गई थी। पेढ़न्ना, नांदी, तिम्मनां, अय्यला राजू रामभद्र, तेनाली रामकृष्ण इत्यादि इस काल में प्रधान कवि हुए। तेनाली रामकृष्ण अपनी विनोद प्रियता और व्यंग के कारण दक्षिण भारत के बीरबल कहे जाते हैं। सोलहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में विजय नगर राज्य का पतन होने लगा था। इसी समय तेलुगु में परम्परागत कविता के स्थान पर कुछ सामाजिक विचारों से प्रेरित होकर यथार्थ की ओर उन्मुख कवितायें लिखी जाने लगी थीं। इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि तेलुगु में प्राचीन और मध्य काल में कविता ही लिखी जाती रही। और वह कविता भी अधिकांश संस्कृत के प्राचीन काव्य ग्रंथों की प्रेरणा से ही लिखी गई।

अट्ठारहवीं शताब्दि से लेकर उन्नीसवीं शताब्दि के अर्द्धांश तक का काल तेलुगु साहित्य के पतन का काल था। डा० सीतापति ने इसके विषय में लिखा है—'Good Poetry vanished and a period of decadence prevailed but a few poets flourished here and there like oases in the desert of Sahara'

(अच्छी कविता लुप्त हो गई थी और पतन का काल था किन्तु कुछ कवि यहाँ वहाँ सहारा के रेगिस्तान में थोड़ी बहुत हरि-याली की तरह विद्यमान थे।) आधुनिक तेलुगु साहित्य उसी पतन काल के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इस आधुनिककाल का प्रारम्भ सन् १८५० से माना जाता है। वह आदर्शों और उद्देश्यों के संघर्ष का समय था। एक ओर साहित्य की प्राचीन परम्परायें थीं दूसरी ओर अंग्रेजी भाषा और साहित्य का बढ़ता हुआ प्रभाव। चिनइय्या सूरि (१८०६–'६२) तथा उनके अनुयायी भाषा और साहित्य को नई दिशाओं की ओर जाने से रोक कर प्राचीन परम्परा से ही चिपके रहने का प्रयत्न कर रहे थे। राज्य सरकार पर उनका प्रभाव भी था। अतएव वह उसके द्वारा अपनी प्राचीन शैली में लिखी पुस्तकें ही स्कूल कालिजों के द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ने को दे रहे थे। स्कूल अधिक खुल जाने से पाठ्य-पुस्तकों की माँग बढ़ रही थी। चिनइया सूरि ने स्वयं 'नीति चन्द्रिका' में 'मित्र लाभ' 'मित्र भेद' आदि प्रसंग पंच तन्त्र के आधार पर लिखे। इसी समय रवि पति ने 'पंच तन्त्रम' तथा 'द्वात्रिम शत शाला भंजक' जैसी कहानियाँ सरल जन भाषा में लिखीं। राव बहादुर कंड कूरि वीरेश लिंगम, गुरु जाडु वेंकट अप्पा राव, राव साहब गिड़ुगु वेंकट राममूर्त्ति आदि विद्वानों के प्रयत्न से तेलुगु साहित्य अपने परम्परागत क्लिष्ट रूप से निकल कर बोल-चाल की भाषा के रूप में सामने आया। चिनइया सूरि का विरोध करके वे वह नवयुग तेलुगु साहित्य में लाये जो स्कूल कालिजों में अंग्रेजी पढ़ाई जाने के फलस्वरूप अपने आप आ रहा था। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन ने साहित्य के प्रति पढ़े लिखे लोगों में नई रुचियाँ विकसित कीं। बंगाली साहित्य का भी काफी प्रभाव इस समय तेलुगु साहित्य पर पड़ा। गद्य साहित्य अनेक रूपों में विकसित हुआ और कविता में गीत, प्रकृति का चित्रण करने वाली तथा राष्ट्रीय कवितायें बहुतायत से लिखी जाने लगीं। समाचार पत्रों और रेडियो ने भी इस नवीन शैली के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। इस काल में त्रिपुथि, वेंकट तथा कवलु नाम के कवियों ने स्थान-स्थान पर जाकर अपनी उसी समय जन भाषा में रची कवितायें सुनाकर जन रुचि को साहित्य की ओर आकर्षित किया। विश्व नाथ सत्यनारायण ने गेय साहित्य का प्रचार कर तेलुगु कविता को एक नई शैली दी।

इस आधुनिक काल में ही तेलुगु में बाल साहित्य का विकास हुआ। सन् १८४७ में 'पेद्द बाल शिक्षा' नामक एक पुस्तक छोटे ज्ञान कोष के रूप में प्रकाशित हुई थी। पर इसे बाल साहित्य की मौलिक पुस्तक कह सकना कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त तक और कोई बाल साहित्य प्रकाशित नहीं मिलता। जनता में काशी मजिली की कहानियाँ, दीदी की कहानियाँ, बच्चों को सुलाने की लोरी, भात खिलाते समय चाँद को दिखाकर गाये जाने वाले गीत, और विनोद के लिए पूछे जाने वाले कुछ प्रश्न प्रचलित मिलते थे जिनका संकलन श्री० वेटूरि प्रभाकर शास्त्री ने किया है।

बीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ से ही विद्वान शिक्षाविदों में कुछ इस प्रकार का वाद प्रचलित हुआ कि बच्चों को बोल-चाल की व्यवहारिक भाषा में ही पाठ पढ़ाना चाहिए। इस वाद के प्रथम प्रचारक श्री जे० ए० एम०, पि० टि० श्री निवास आयंगर तथा गिडुगु राममूर्त्ति हैं। श्री० गुरजडु आप्पाराव (१८६१–१९१६) इससे पूर्व से ही व्यवहारिक भाषा में साहित्य रचना कर रहे थे। सन् १९०० के बाद के काल में श्री० गिडुगु सीतापति ने सबसे पहिले छोटे-छोटे गीत रेलगाड़ी, तोते की शादी, चूहा बिल्ली आदि बच्चों के परिचित साधारण विषयों पर लिखकर 'विवेकवती' पत्रिका में सन् १९०८–१० में प्रकाशित कराये। इसके उपरान्त 'वेगुजुक्क' नामक पत्रिका में भी उनके कुछ और गीत तथा सरल बालोपयोगी कहानियाँ प्रकाशित हुई। उनकी यह रचनायें सरल भाषा में होने के कारण बच्चों में बहुत लोकप्रिय हुईं। सीतापति जी के यही गीत कुछ हेर-फेर करके वीरेज्ञ लिंगम जी की मक्मिलन तथा लांगमैन की पाठ्य-पुस्तकों में प्रकाशित हुए। इस प्रकार श्री० गिडुगु सीतापति को ही तेलुगु में बाल साहित्य का आदि कवि कहा जा सकता है। सन् १९४८–४९ में उन्हें अपनी पुस्तक 'बालानन्दम' पर तेलगु भाषा समिति द्वारा राजकीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। उन्हें हम तेलुगु बाल साहित्य के पं० श्रीधर पाठक कह सकते हैं।

व्यवहारिक भाषा में बच्चों के लिए साहित्य रचना करने के उपरियुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप तेलगु में अनेक लेखक और कवि बच्चों के लिए उपयुक्त साहित्य का सृजन करने लगे। श्री की० झे० चिन्ता दीक्षितुलु ने विशेष रूप से बच्चों के लिए ही लिखने को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। उन्होंने बच्चों के लिए उच्च कोटि की मनोरंजक कवितायें और कहानियाँ लिखी है। 'लक्क पिडतलु' नामक पुस्तक में उनके लिखे सुन्दर बालगीत संगृहीत हैं। और 'लीला सुन्दरी' 'सूरी सीति वेंकि' तथा सोने की चोरी आदि उनकी बालोपयोगी कहानियाँ इतनी रोचक हैं कि कोई बाल पाठक उन्हें पढ़कर आनन्दमग्न हुए बिना नहीं रह सकता। सन् १९५४–५५ में उन्हें केन्द्रीय राज्य सरकार द्वारा तेलुगु बाल साहित्य पर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। वेंकट पार्वतीश्वर कवियों की 'बोम्मक रामायणम्', 'बोम्मक भारतम्' आदि पुस्तकें भी इसी काल में प्रकाशित हुई जिन्हें बच्चों ने बड़ी रुचि से पढ़ा।

तेलुगु बाल साहित्य के विकास में आल इंडिया रेडियो का योगदान भी विशेष महत्त्व-पूर्ण रहा है। सन् १९४० में श्री न्यायपति राघवराव तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कामेश्व-रम्मा ने मद्रास रेडियो से प्रसारित होने वाले बच्चों के कार्य-क्रम का संचालन कार्य प्रारम्भ किया। इन कार्य-क्रमों की श्रेष्ठता और रोचकता के कारण बच्चों ने उन्हें बड़े ध्यान से सुनना प्रारम्भ किया। उस समय तक कुछ समाचार पत्र और पत्रिकाओं में बच्चों के लिए कुछ पृष्ठ ही अलग निर्धारित होते थे। सन् १९४० में तेलुगु की सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'भारती' में दो पृष्ठ बाल-साहित्य के लिए निर्धारित किये गए। पर बच्चों के लिए अलग से एक पत्रिका प्रकाशित करने का विचार सबसे पहिले श्री० राघव राव तथा उनकी पत्नी के मन में आया। सन् १९४५ में उन्होंने 'बाल' नामक एक बालोपयोगी पत्र का प्रका-शन प्रारम्भ किया। उसके बाद सन् १९४८ से 'चन्दामामा' तथा 'बाल मित्र' आदि अनेक दूसरे बालोपयोगी पत्र भी तेलुगु भाषा में प्रकाशित होने लगे। इनमें से कुछ तो अब तक बराबर प्रकाशित होते चले आए हैं।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा प्रचलित पुरस्कार योजनाओं ने भी बाल-साहित्य के सृजन और विकास में बहुत सहायता की। पाठशालाओं में विज्ञान जैसे कठिन विषय की

बच्चों को समझाने के लिए कई कहानी लेखकों द्वारा सरल भाषा में लिखे जाकर पढ़ाये जाने लगे। इन लेखकों में श्री० वेमु राजु भानुमूर्त्ति, श्री० जि० वि० राममूर्त्ति, श्री० वसन्त राव वेंकट राव तथा श्री विस्सा अप्पा रावु प्रमुख हैं।

बड़ों के साहित्य में जिस प्रकार श्री विश्वनाथ सत्यनारायण ने गेय साहित्य का प्रचार किया था उसी प्रकार बच्चों के साहित्य को भी गेय रूप देने की ओर कवियों की प्रवृत्ति हुई। सर्व श्री० डि० वि० कृष्ण शास्त्रि, दाशरथि, नारायण रेड्डी, श्री० रंजनि तथा नार्ल चिरंजीवि आदि कवियों ने बच्चों के लिए बहुत-सी गेय कवितायें लिखीं। बच्चों के लिए उपन्यास और नाटक लिखने वालों में सर्व श्री० चिन्ता दीक्षितुलु, सभाराधि कोंडल रावु, कनक मेडल, श्रीवात्सव, श्रीमती राज्य लक्ष्मी, पिल्ला, सुब्बा रावु शास्त्री, न्यायपति राघव रावु, आलपर्ति वेंकट सुब्बाराव, बेजवड सुब्बा रावु के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

तेलुगु साहित्य में बाल-साहित्य के विकास को राजकीय पुरस्कार योजनाओं तथा आकाश वाणी से जो सहायता मिली उसके अतिरिक्त सन् १९५६ में राजमहेन्द्री तथा १९५८ में हैदराबाद में आयोजित रचनाओं की स्थापना से भी बहुत सहायता मिली। इन रचनाओं में कुछ साहित्यकारों को डा० सीतापति से भी शिक्षा दिलवाई गई थी। इन शिक्षा प्राप्त करने वाले साहित्यकारों में सर्व श्री० वि० वि० नरसिंहा रावु, कवि रावु, आचंट लक्ष्मा रावु तथा उत्पल सत्य नारायणाचार्य विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई ने राजकीय पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं।

तेलुगु के बहुत से पुराने बालगीत ऐसे हैं जिनमें घरेलू चिकित्सा के उपाय बताये गए हैं। इस दृष्टि से वह बच्चों से अधिक बड़ों के लिए उपयोगी हैं। पद्य में वैद्यक ग्रन्थ लिखने की परिपाटी हमें संस्कृत साहित्य में मिलती है। चरक ने अपना सारा ग्रंथ पद्यबद्ध श्लोकों के रूप में लिखा था। तेलुगु में घरेलू चिकित्सा सम्बन्धी बातें कविता में लिखने के लिए प्रेरणा उसी संस्कृत साहित्य की परम्परा का प्रभाव कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम यहाँ ऐसे दो गीत प्रस्तुत करते हैं—

ओप्पुल कुप्पा—वय्यारि भामा
मिनप पप्पु—मेंति पिंडि
ताटि बेल्लं—तव्वेडु नेय्यी
गुप्पेडु तिंटे—कुक्तकुक्ताडी
नडुमु गट्टी—नाकाट बट्टी।

(हे सौंदर्य राशि—हे विलासिनी! माषों का दाल, मेथी का आटा, ताड़ का गुड़, पाव भर घी, मुट्ठी भर खाये तो हे हँसीली सखी! कमर दृढ़ होगी. मेरी बात सुनो।)

इसी प्रकार एक दूसरा गीत है—

कालल गज्जि—कंका लम्म
वेगु चुक्क—वेलग मोग्ग
मोग्ग कादद्दु—मोदुग नीरू
नीरू कादु—निम्मल वाय
वाय कादु—गुम्मिडि पंडु
पंडु कादु—पापड मींस

मींस कादु—मिरियाक्तम पोतु?
पोतु कादु—बोम्मल सेट्टि
सेट्टि कादु—मंचि गंधपु चक्क
लिंगु तिट्कु—पंदे मारम पडकु
कावतु पंडिनद्दु—कडकु तीसि पेट्टु।

(पैरों में खुजली का रोग लगे तो सबेरे उठकर कपित्थ की कली लगाओ। वह कली न मिले तो पलाश का पानी। वह पानी नहीं, तो नीबू का रस। वह रस नहीं, तो 'वायंट' नामक भाजी। भाजी नहीं, तो कोई पौधा। कोई पौधा नहीं तो काली-मिर्च का चिलका। चिलका नहीं तो सिंहुड़ का पेड़। पेड़ नहीं, तो चन्दन का शकल। रे छोटे बच्चे फिर खेल में मत गिरो। पैर चंगा हो गया, उसे हटाओ।)

इन पद्यों से थोड़ा ज्ञान वर्द्धन अवश्य होता है। पर बच्चों की भावनाओं और कल्पनाओं का उनमें सर्वथा अभाव मालूम होता है इसलिए उन्हें श्रेष्ठ बालगीतों की श्रेणी में नहीं लिया जा सकता।

पर तेलुगु भाषा में ऐसे भी गीत हैं जो बच्चों के लिए बड़े सरल स्वाभाविक ढंग से सुन्दर रूप में लिखेगए हैं। यह गीत बच्चे प्रायः खेल-खेल में गाया करते हैं—

कोंड मीद वेंडि गिन्ने
कोक्किरायि कालु विरिगे
दावि के मंदु
वेपाक चेद्दु—वेल्लुक्कि गडड
नूनम्म बोडडु—नू टोक्कधारा।

(जो पहाड़ पर चाँदी के बर्त्तन-सा उस बगुले का पैर टूटा, उसका क्या इलाज है? नीम के पत्ते, लहसुन का कंद तेल में घोलकर एक सौ एक बार रगड़ो)

इसमें पहाड़ के ऊपर चाँदी के बर्तन और बगुले का पैर टूटने की जो कल्पना है वह बच्चों को बहुत मनोरंजक लगती है। बच्चों को खेल में प्रमाद वश उंगलियों की हड्डियाँ टूट जाने का भय सदा बना रहता है। अतएव उसकी चिकित्सा के विषय में जानकार वह प्रसन्न ही होंगे।

पोडुपु कयलु अर्थात् चमत्कारपूर्ण प्रश्नोत्तर की शैली पर लिखे गए पद्य भी तेलुगु के बाल साहित्य की अपनी एक अलग विशेषता है। बच्चे उन्हें बहुत रुचि और उत्साह से गाते हैं। उदाहरण के लिए हम यहाँ दो पद्य प्रस्तुत करते हैं—

तोक लेनि पिटट तो मै आमण वेल्लिंदि—उत्तरम
(बिना पूंछ के चिड़िया नब्बे योजन गई—चिटठी)
तंड्रि गर-गर तल्लि पोचु—विडलु रत्न
माणिक्यालु मन मलु बोम्मरालु—पनस पंडु

(बाप तो कँटीला होता है, माँ तो घास की तरह होती है बच्चे रत्न जैसे हैं। पोते पत्थर हैं=कटहल)। इस प्रकार के पद्यों में कौतूहल और जिज्ञासा को बढ़ाने वाली बातें रहने के कारण वह बच्चों का पर्याप्त मनोरंजन करते हैं। यह पद्य हिन्दी में पहेलियों की तरह हैं जो बच्चे घर-घर कह कर बुझाते हैं। जैसे—

हरी थी मन भरी थी हजार मोती जड़ी थी।
राजा जी के बाग में दुशाला ओढ़े खड़ी थी॥
(भुट्टा)

जिस प्रकार पहेली कह चुकने के बाद जब उसका उत्तर बच्चों को ज्ञात होता है तो उन्हें ऐसा आनन्द आता है मानों कहीं छिपा हुआ खजाना मिल गया इसी प्रकार तेलुगु भाषा-भाषी बालक 'पोडुपु कयलु' पद्यों का उत्तर जानकर भी बहुत प्रसन्न होते हैं।

आन्ध्र वाङ्मय में शतक साहित्य का भी एक विशेष स्थान प्राचीन काल से रहा है। पन्द्रहवीं शताब्दि में वेमंन कवि के समय से बराबर तेलुगु भाषा में शतक लिखे जाते रहे हैं। शतक का अर्थ सौ पदों का संग्रह होता है। इन शतकों में अधिकतर भक्ति भाव से भरे हुए पद मिलते हैं। पर उनमें से कुछ में सदाचरण और दर्शन विषयक बातें भी कही गई हैं। इसलिए वह भी बालोपयोगी साहित्य की श्रेणी में लिए जाते रहे हैं। हिन्दी में जो स्थान रहीम और वृन्द इत्यादि कवियों के नीतिपरक दोहों का रहा है वही तेलुगु में इन पदों का रहा है। तेलुगु बाल साहित्य के क्षेत्र में सुमति शतक, वेमनशतक, कुमारी शतक, कृष्ण शतक और दाशरथि शतक उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए सुमति और वेमन शतक से एक-एक उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

उपकीरिकि उपकारमु
विपरीतुम् कादुचेय विवरि पम्मा
अपकारिकि उपकारमु
नंपमेन्नक चेयु वाडु नेर्परि सुमती।

(उपकारी की उपकृति करना कोई ऊँची बात नहीं। अपकारी की उपकृति करना
सुमति की कही नीति यही।)

वेमन शतक का एक पद्य है—

चंपदगिन यट्टि शत्रुवु तन चेत
चिक्केनेनि कीडु चेयरादु
पोसग मेक्तुचेलि पोम्मनुटे चावु
विश्वदामि राम विनुर वेम।

(वध्य शत्रु यदि हाथ लगे तो
उसकी न करो हानि कभी।
करो भलाई वही मरण है
वेमन की यह सुनें सभी।)

इस प्रकार के पदों से बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलती है। नीति ज्ञान की बातें भी वह सीख जाते हैं। पर उनसे बच्चों का वास्तव में मनोरंजन भी होता है यह कहना कठिन है। इस दृष्टि से इन्हें भी निम्न कोटि के बाल साहित्य में ही रक्खा जा सकता है।

तेलुगु बालगीत साहित्य में कुछ ऐसी पद्य कथाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया है जो प्राचीन ग्रंथों से ली गई हैं। बम्मेर पोतन्ना कवि कृत भागवत में से लेकर रची गई प्रह्लाद चरित, गजेन्द्र मोक्ष, रुक्मिणी कल्याण, कृष्ण लीला आदि की पद्य कथायें बालकों की पाठ्य पुस्तकों में पढ़ाई जाती रही हैं। हिन्दी में इसी प्रकार सूरसागर और रामचरित मानस के अंश पढ़ाये जाते रहे हैं। प्रह्लाद चरित्र का थोड़ा सा अंश उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत है—

तनयंदु नखिल भूत मुलंदु नोक भंगि
समहित त्वंबुन जरुगु वाडु
पेद्दक वोड गन्न भृत्युनि कैवडि
चेरि नमस्कृतुक्त चेयु वाडु।
कन्नु दोधिकि अन्यकान्तक्तुडंबैन
मातृ भावमु चेसि मरतु वाडु।
तल्लि दंड्रुक्त भंगि धर्म वत्सलतनु
दोनुल गाव चिंतिचु वाडु।
सखुल चंदु सोदरस्थिति जरुगु वाडु
लोक्तक्तदुनु बोंकुक्तु क्तेनि वाडु।
दैवतमुक्तंचु गुरुवुल दक्तचु वाडु
ललित मर्यादुडैन प्रह्लादुडधिप॥

संस्कृत कालिज कोव्वुर के प्रिंसिपल श्री० के० वी० एन० आप्पा राव का किया हुआ इसका हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है—

अपने को जो हित है, सबका
हित भी वही समझता है।
बड़े जनों के पास भृत्यवत्
दोनों हाथ जोड़ता है॥
परनारी को देख सामने
मातृ भाव ले फिरता है।
माता और पिता-सा दोनों
के प्रति वत्सल रहता है॥
मित्रों से भाई के नाते
अकलुष प्रेम निभाता है॥
अपने गुरु को दैव समझ कर
नित प्रति पूजा करता है।
खेलों में भी झूठी बातें,
कभी नहीं जो कहता है।
ऐसा जो मर्यादा शोभित
वह प्रह्लाद कहाता है॥

पर तेलुगु के आधुनिक बाल साहित्य में जो बालगीत बच्चों के साहित्य में विश्वनाथ सत्यनारायण, श्री श्री, नादुरु सुब्बाराय आदि कवियों के गेय गीतों की शैली से प्रभावित और प्रेरित होकर लिखे गये हैं वह वास्तव में ऐसे श्रेष्ठ बालगीत हैं जिन्हें किसी भी दूसरी

भारतीय भाषा के श्रेष्ठतम बालगीतों के समकक्ष रक्खा जा सकता है। वह विशेष रूप से बच्चों का मनोरंजन करने के लिए ही लिखे गये हैं। और उनमें बच्चों की मनोभावनाएँ बड़े ही सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुई हैं। तेलुगु के गेय साहित्य की विशेषता ही यह है कि उसमें हृदय की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति और गीतात्मकता पहिले की वर्णनात्मक या इतिवृत्तात्मक कविताओं से अधिक सुन्दर रूप में विद्यमान है। ध्वनि गति लय और स्वरों में वह पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर हैं।

आधुनिक शैली के बालगीतकारों में श्री वि० वि० नर्रासहाराव सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। उनका निम्नलिखित बालगीत तेलुगु भाषा-भाषी क्षेत्रों के बच्चों को बहुत अधिक प्रिय है। इसका शीर्षक है 'बडि बंदिखाना' (पाठशाला जेल है)—

बडिकि पोनु बाबु नेनु
बंदिखान नजिंगान
बडि पेरंटेने चालु
वंड वारु ना नरालु।
कागि तालु चिंपि पेद्द
गालि पडगलु पडवलु
कद्दु कोंदु आडु कोंदु
कडु संतोष मुग नुंडु॥

(पाठशाला को नहीं जाऊँगा मैं। जेल ही है सचमुच। पाठशाला का नाम सुनते ही मेरी नसें चेष्टाहीन होने लगती हैं। कागजों को फाड़ कर मैं बड़े-बड़े पतंग और नाच बना बना कर खेलूँगा। बहुत आनन्द से रहूँगा।)

इस बालगीत को पढ़ने से बच्चों को प्रसन्नता तो होती ही है साथ ही आप से आप उनके मन में यह भाव जागृत होता है कि वह पाठशाला के नाम से काँपने वाले बच्चे न बनकर ऐसे बच्चे बने जो खुशी-खुशी पाठशाला जाते हैं।

श्री० नर्रासहाराव जी का एक दूसरा गीत भी बच्चों को बहुत पसन्द है। इसका शीर्षक है 'मल्लि बाबु अल्लरि' (नटखट मल्लि बाबू)

मल्लि बाबु अल्लरिनी
माटल्लो ब्रांचट
अक्तवि कादु अंतुलेनि
अद्‌भुत मदि कावंट।
पलका वलयं असलवि
पनिकि रावु तन कट
चिन्न वाडु अयिना सरे
पेन्ने कावालट।
क्रोत्त वड लेवरना
कोनुक्कुंटे चालुनिड
तनकु कूड कावालनि
तवगु लाडु हंठ जेयु।

(मल्लि बाबू की नटखटी बातें लिखना कठिन है। क्योंकि वह अपार है और अद्‌भुत हैं। लिखने की तख्ती और शलाका उन्हें लिखने में काम नहीं आ सकती वह नटखटी की बातें छोटी हैं पर उन्हें लिखने को पूरा बड़ा कलम ही चाहिए। कोई नये कपड़े खरीद ले तो वह झटपट झगड़ा करता है और जिद करके कहता है मुझे भी वैसा ही कपड़ा चाहिए।)

बच्चों की स्वभाव से ही प्रवृत्ति होती है कि वह बड़ों का अनुकरण करते हैं। वह बड़ों को कलम से कागज पर लिखते हुए देखते हैं तो वह पेंसिल से स्लेट पर लिखना किस प्रकार पसन्द कर सकते हैं। वह जो अच्छी वस्तु किसी के पास देखते हैं वैसी ही स्वयं भी लेना चाहते हैं और न मिलने पर उसे पाने के लिए हठ करते हैं। अनुकरण की इस प्रवृत्ति से बच्चों को अपने विकास में बहुत सहायता मिलती है इसलिए अनुकरण करते समय हठ करने वाले बच्चों को बड़े लोग नटखट भले ही कह लें पर वह वास्तव में विकासोन्मुख और होनहार बच्चे होते हैं। श्री० नर्रासहा राव की उपरियुक्त कविता में यही सब भाव बहुत ही सुन्दर रूप में व्यक्त किये गए हैं।

बालोपयोगी लोक साहित्य की दृष्टि से भी तेलुगु भाषा किसी दूसरी भाषा से कम समृद्ध नहीं है। उसके लोक गीत साहित्य में बहुत-सी अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण लोरियाँ मिलती हैं। आंध्र प्रदेश में लोरी को 'जौल पाटा' कहते हैं। यह लोरियाँ जनता में प्राचीन काल से प्रचलित चली आई हैं। आंध्र प्रदेश के गाँवों में कच्ची मिट्टी के बने और ताड़ वृक्षों के सूखे पत्तों के छप्परों से छाये हुए घर बड़े सुन्दर लगते हैं। उनमें रहने वाली स्त्रियाँ उन्हें नित्य लीप-पोत कर साफ ही नहीं करतीं आँगन को अल्पना और दीवारों को चित्रों से सुसज्जित भी करती हैं। अपने पूरे परिवार और विशेष रूप से अपने बच्चों के प्रति उनके मन में बड़ी ममता होती है। चन्द्रमा को हिन्दी भाषा की तरह तेलुगु में भी मामा कहकर सम्बोधित किया जाता है। आंध्रप्रदेश की एक माँ एक लोरी में चन्द्रमा को बुलाते हुए कहती है—

चन्दा मामा रावे
जाबिल्लि रावे
कण्डे कि रावे
कोटि पूलू तेवे
बंडि मीदा रवे
वरि पूलू तेवे

(हे चन्दा मामा आजा, गाड़ी पर चढ़ कर आ। झूला लेकर आ। पीले-पीले फूल देकर चला जा।)

कोई माँ कितनी ही गरीब क्यों न हो अपने पुत्र को किसी राजकुमार से कम नहीं समझती। वह जानती है कि राजकुमारों को बहुत प्यार किया जाता है। इसीलिए आंध्र प्रदेश की माँ अपने पुत्र में राजकुमार की कल्पना करते हुए कहती है—

अरि मुंदारा डेराले बरीबी
उरामा विरवला राजेवा रम्मा
उरि मुंदारा डेराले माँबी
उरामा बिरवला राजुमा अब्बाई।

(बस्ती के सामने यह तंबू किसके हैं। उत्तम गुणों वाला वह राजपुत्र कौन है ? बस्ती के सामने वह हमारे खेमे हैं। उत्तम गुणों वाला राजपुत्र हमारा शिशु है।) इस लोरी के शब्द-शब्द से बच्चे के प्रति होने वाली माँ की ममता फूटी पड़ती है।

आंध्र प्रदेश की एक और लोरी का भाव अत्यन्त मधुर है। सब जानते हैं कि दीपक और चन्द्रमा प्रकाश देते हैं। पर जब तक आँखों में ज्योति न हो मनुष्य के लिए प्रकाश अंधकार के समान ही होता है। इसी भाव को इस लोरी में व्यक्त किया गया है––

इत् तन्ना दीपम्नु इल् लल्ला वेलगु
ईस्वर डो चन्दा मामा जग भवता वेलगु।
माड़रा दीपम्नु जग मल्ला वेलगु
इत तन्ता मा अव्वाई मा कड़ला वेलगु।

(छोटा सा दीपक सारे घर को प्रकाशित कर देता है। चन्दा मामा सारे जगत को प्रकाशित कर देता है। छोटा-सा दीपक सारे राजमहल को प्रकाशित कर देता है। छोटा-सा बच्चा मेरी आँखों को प्रकाशित कर देता है।)

इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि तेलुगु का बाल साहित्य परम्परा से समृद्ध और विकास के प्रयत्नों से प्रगतिशील साहित्य है। तेलुगु भाषा के अनेक नये-नये लेखक उसे अपनी प्रतिभा के वरदान से समृद्ध कर रहे हैं। और उसका भविष्य बहुत उज्जवल है।

——

१५ : गुजराती बाल साहित्य

अन्य अनेक भारतीय भाषाओं की भाँति गुजराती भाषा में भी बाल साहित्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। पिछले ६०–७० वर्षों से ही गुजराती विद्वान् विचारकों का ध्यान साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर आकर्षित हुआ। और गुजराती में अधिकांश बाल साहित्य महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के पश्चात् से ही लिखा गया है। इससे पूर्व गुजरात में केवल कंठस्थ बाल साहित्य का प्रचार था। नरसी मेहता, मीरा, दलपत आदि कवियों की कुछ ऐसी कवितायें जो सरल भाषा में होने के कारण बड़ों के साथ-साथ बच्चों की भी समझ में आ सकती थीं उन्हें याद करा दी जाती थीं और उन्हें ही वह अपना साहित्य समझ लेते थे। मुहल्ले के बड़े-बूढ़े प्रायः बच्चों को इकट्ठा करके बैठ जाते और उन्हें रामायण, महाभारत या 'गागरिया भट्ट' की कथायें सुनाया करते थे। बच्चों को वह सुनते-सुनते याद हो जाती थीं और उनसे ही वह अपना मनोरंजन कर लिया करते थे। उस समय के कंठस्थ बाल साहित्य की एक छोटी-सी कहानी आज भी गुजरात के छोटे बच्चों का कंठहार बनी हुई है वह इस प्रकार है––एक था चिरौटा। एक थी चिड़िया। चिरौटा लाता था चावल का दाना। चिड़िया लाती थी दाल का दाना। चिरौटा और चिड़िया खिचड़ी बनाते थे। खूब खाते-पीते और मजा करते थे।" इस छोटी-सी कहानी में बच्चों की कल्पना को उभार कर उनका मनोरंजन करने के लिए सभी मनोवैज्ञानिक तत्व विद्यमान हैं। इसे सुनकर उनके मानस पटल पर उनके अपने स्नेह सौहार्द्रपूर्ण पारिवारिक जीवन का एक चित्र-सा अंकित हो जाता है। और उसे वह एक आदर्श के रूप में अपने जीवन में भी ढाल सकते हैं।

अब से लगभग ६५ वर्ष पूर्व गुजराती के एक सुप्रसिद्ध लेखक तथा संस्कृत के विद्वान श्री मणि शंकर भट्ट ने अपनी पुस्तक "शिक्षणनो इतिहास" में लिखा था––"हमें अपने बच्चों के लिए जीवन और साहित्य की व्यवस्था करना चाहिए।" उन्होंने सर्वप्रथम साहित्यकारों और शिक्षकों का ध्यान बच्चों की ओर आकर्षित किया और तभी से गुजराती लेखकों और कवियों की रुचि बाल साहित्य के लेखन और प्रकाशन की ओर जागृत होने लगी। संसार के प्रायः सभी साहित्यों में पद्य पहिले लिखा गया गद्य बाद में। पर गुजराती बाल साहित्य इसका अपवाद है। वहाँ १८९५ में सबसे पहिले सूरत के सुप्रसिद्ध पत्रकार इच्छाराम सूर्य राम देसाई ने "बालकोनो आनन्द" नाम से बालोपयोगी वार्त्ताओं के दो संग्रह प्रकाशित किये। इन वार्त्ताओं की लेखन शैली प्राचीन होते हुए भी कम रोचक नहीं है। और वह पुस्तकें सचित्र होने के कारण आज तक बालकों में प्रचलित हैं। इसके पश्चात् 'ईसप नीति' नामक कथाओं ने जिनमें अधिकतर जानवरों की कथायें हैं, बालकों का पर्याप्त मनोरंजन और ज्ञान वर्द्धन किया।

१९१४ में महात्मा गांधी अफ्रीका से भारत में लौटकर आये थे और अहमदाबाद को ही उन्होंने अपने कार्य कलाप का केन्द्र बनाया। गांधी जी के विचारों और जीवनादर्शों

ने समस्त गुजरात के जीवन और मनुष्यों के विचारों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने अपनी 'हिन्द स्वराज्य', आत्म कथा', 'दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह' आदि पुस्तकें गुजराती में ही लिखी थीं। और गुजरात विद्यापीठ की स्थापना करके वहाँ के सांस्कृतिक जीवन में अभूत-पूर्व परिवर्त्तन ला दिया था। समस्त देश के साथ-साथ उसी समय से गुजरात में राष्ट्रीय पुनुरुत्थान हुआ। गुजराती साहित्य में भी चेतना की एक नई लहर दौड़ गई। लोगों का ध्यान जातीय जीवन और साहित्य के विभिन्न अंगों के विकास की ओर गया। उन्हीं में से बाल साहित्य के समुचित विकास की ओर भी लेखकों और कवियों का ध्यान जाना नितान्त स्वाभाविक था। हंसा व्हेन मेहता ने उसी समय में "बाल वार्ता विधि" नामक पुस्तक लिखी। वह बच्चों के मनोभावों के अनुसार उनके मन को प्रिय लगने वाली सरल भाषा शैली में इस प्रकार से लिखी गई है कि बच्चे उसे पढ़कर बहुत प्रसन्न होते हैं। गुजराती बाल साहित्य में यह पुस्तक एक प्रकाश स्तम्भ का काम करती है। उसने अनेक लेखकों के लिए पथ प्रदर्शन का काम किया। उसके उपरान्त बागड़ पटेल, सुमति पटेल, जीठु भाई, चन्द्र शंकर, गीजु भाई आदि अनेक लेखकों ने बाल साहित्य के रिक्त भंडार को सुन्दर-सुन्दर सरस बाल वार्त्ताओं से भर दिया। दक्षिण मन्दिर, नव जीवन, सौराष्ट्र कार्यालय, कुमार कार्यालय, आदि प्रकाशन संस्थाओं द्वारा प्रकाशित बाल वार्त्तावली, सिंह वाद सेठ, कुमार वीर सेन, देवकथाओं, भेरू, एक आना बाल साहित्य माला, प्रभु ना पैगंर. नीलम, चेतन्ना फुबारा, मधोनू बन, बर्फी पूरी, सोना कुमारी, करीना भरिया, म्याऊँ इत्यादि कथा कहानियों की अनेक पुस्तकों ने प्रकाशित हो होकर बच्चों का खूब मनोरंजन किया।

गुजरात में राष्ट्रीय पुनुरुत्थान के उस युग में श्री गीजुभाई ने बाल साहित्य के सृजन और विकास में सबसे अधिक योग दान दिया है । उन्हें आधुनिक गुजराती बाल साहित्य का ब्रह्मा या पिता कहा जाता है। बाल मानस के प्रमुख ज्ञाता, बाल साहित्य में गद्य को एक नई शैली देने वाले, बाल शिक्षा के क्षेत्र में नये सिद्धान्तों को देने वाले, बाल जीवन को एक अद्भुत अपूर्व चेतना और वेग देने वाले और दक्षिण मूर्त्ति मन्दिर की आत्मा के रूप में उनको गुजरात में छोटे-बड़े सभी लोग जानते हैं। बाल साहित्य का अन्तरग जितना सुन्दर हो उतना ही सुन्दर उसका बहिरंग बनाने में उनके प्रयत्न सर्वथा सराहनीय हैं। दक्षिण मूर्त्ति बाल प्रकाशन मन्दिर द्वारा सैकड़ों बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करके उन्होंने बाल साहित्य की अपूर्व सेवा की है। उनकी वार्त्तायें ऐसी सरस मधुर और रोचक शैली में लिखी हुई हो हैं कि बालक उन्हें एक बार प्रारम्भ करके पूरा पढ़े बिना नहीं छोड़ते। पाँच भागों में लिखी उनकी "बाल वार्त्ता" पुस्तक गुजरात में बहुत प्रसिद्ध हुई। उनकी 'छागड़ का प्याला' एक कुत्, भस्सू" (एक कुत्ता भूँसा) मारो कार कून' (मेरा बाबू) भाई साब', 'काईं बहादुर मोड़ोभट्ट' आदि कहानियों की पुस्तकें भी बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-सथ उनकी बुद्धि को विकसित करने वाली हैं। अपनी इन छोटी-छोटी रोचक वार्त्ताओं का द्वारा श्री गीजू भाई ने गुजरात के बाल हृदय में एक शाश्वत स्थान बना लिया। पर उनकी इन पुस्तकों में एक यह दोष भी है कि उनकी भाषा में काठियावाड़ी शब्दों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। आधुनिक गुजराती साहित्य के पारखी विद्वानों और रस मर्मज्ञों को यह बात खटकना नितन्त स्वाभाविक है। उनका कहना है कि गीजूभाई जैसे विद्वान, विचारक और समझ-

दार लेखक को यह काठियावाड़ी प्रयोग शोभा नहीं देता क्योंकि वह जितने काठियावाड़ के हैं उतने ही समस्त गुजरात के।

गीजुभाई के बहुत से अनुयायी भी गुजरात में हुए जिन्होंने उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर बाल साहित्य के विकास में बहुत योगदान दिया। उनमें श्री कृष्ण लाल श्रीधराणी तथा श्री नानूभाई भट्ट प्रमुख हैं। गीजू भाई के साथ-साथ गुजराती के अन्य अनेक लेखकों ने बाल साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए बहुत कार्य किया है। उन लेखकों में सर्वश्री रमण लाल एन० शाह, नटवर लाल वीमा वाला, नागर दास पटेल, रमण लाल सोनी, धीरज लाल तोकारोही शाह, जय भिक्खु आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

गीजूभाई के बाद की गुजराती बाल साहित्य की वार्त्ताओं में विस्तार को कम करने की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखने को मिलती है। वह पढ़ने में सरल, शीघ्र अर्थगम्य और बच्चों के मन पर सीधा प्रभाव डालने वाली होती हैं। श्री रमण भाई की "हास्य मन्दिर" तथा श्री किशोर वकील की "उघाड़ माथू" पुस्तकों की वार्त्तायें इसी आधुनिक शैली में लिखी हुई हैं। उन्हें पढ़ने वाले बच्चे हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाते हैं।

गुजराती बाल साहित्य में परियों की कहानियाँ भी बहुत लिखी गई हैं। और अब दिन प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्धित कथायें तथा जलचर, थलचर प्राणी जीवन की कथायें भी लिखी जाने लगी हैं।

बच्चों के लिए लिखित उपयुक्त कविताओं की पुस्तकों की गुजराती बाल साहित्य में अब भी उतनी अधिकता नहीं है जितनी हिन्दी या बंगाली साहित्य में है। प्राचीन काल से नरसी मेहता और मीरा के भजन बच्चों की जिह्वा पर रमते आये थे। नरसी मेहता का महात्मा गांधी द्वारा प्रसिद्ध किया हुआ भजन—"वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे" तो आज भी घर-घर गुजराती बच्चों की जबान पर चढ़ा रहता है। नरमद की कविताओं में से भी बहुत-सी सरल भावपूर्ण कवितायें गुजरात के बच्चों में साहित्यिक तृष्णा की तृप्ति करती रही हैं। नवल राम की 'गरबावली' पुस्तक स्कूलों में पाठ्य पुस्तक की तरह चलती रही है और उसके गरबा (वह गीत जो गुजरात के सुप्रसिद्ध लोक नृत्य गरबा के साथ गाये जाते हैं) समारोहों में गाये जाने के कारण इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि बच्चे उन्हें अपने ही गीत समझने लगे। सरल बालोपयोगी भाषा शैली में लिखी गई दलपत कवि की भी बहुत-सी कवितायें ऐसी हैं जिन्हें बच्चों ने अपना साहित्य समझ कर अपना लिया था। पर बाल स्वभाव को ध्यान में रखकर विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखी जाने वाली कवितायें गुजराती बाल साहित्य में नहीं लिखी गई थीं। इस दिशा में किया हुआ सबसे पहिला प्रयास हमें श्री० हिम्मत लाल अंजारिया का मिलता है। उन्होंने सन् १९१४-१५ में विशेष रूप से बाल स्वभाव को ध्यान में रखते हुए एक संग्रह "मधु विन्दु" के नाम से प्रकाशित किया था । उस समय के बच्चों के लिए वह बहुत उपयोगी और प्रिय सिद्ध हुआ। उसकी छपाई कलात्मक और मोटे टाइप में होने के कारण वह देखने में भी अत्यन्त आकर्षक पुस्तक थी। असहयोग आन्दोलन के दिनों में सन् १९२१ में श्री जुगतराम दवे ने गुजरात विद्यापीठ की ओर से "चरणी बोर" और "रायण" नाम से दो काव्य संग्रह प्रकाशित कराये। इन संग्रहों में मीरा बाई, श्यामल भट्ट, नवल राम, खबरदार आदि कवियों की

ऐसी सरल भाव बोध गम्य कवितायें चुनकर संगृहीत की गई थीं जो विशेष रूप से बच्चों के लिए न लिखी होने पर भी उनके लिए उपयोगी हो सकती थीं। पर इन पुस्तकों से गुजराती बाल साहित्य का कोई अभाव दूर नहीं हो सकता था। बच्चों को कोई कविता बिना अर्थ समझे हुए पहिले रटा दी जाये और उसके बाद उन्हें उसका अर्थ बताया जाये---यह शिक्षा शास्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है। उन्हें पढ़ने या याद करने के लिए वही कवितायें देना चाहिए जिनका भाव उनकी समझ में आता चले। "रायण" के प्रकाशन से पूर्व अकाल के समय में श्री कल्याण जी विट्ठल भाई की एक पुस्तक 'बाल प्रार्थना' भी प्रकाशित हो चुकी थी। और उसकी कवितायें भी बच्चों को रटाकर याद कराई जाती थीं। पर वास्तव में इस प्रकार की रचनाओं से न तो बच्चों का मनोरंजन ही होता था और न उन्हें बाल साहित्य ही कहा जा सकता है। श्री चन्दू लाल दवे तथा श्री गोविन्द राम के 'बाल भजन संग्रह' भी 'बाल प्रार्थना' की तरह ही बाल साहित्य की कोटि में न आ सकने वाले संग्रह थे। किन्तु श्री त्रिभुवन गौरीशंकर व्यास ने अपनी "नवागीतों" नामक कविता पुस्तक बाल गुजरात के चरणों में अर्पित करके साहित्य की जो अमूल्य सेवा की वह गुजाराती बाल साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। 'नवागीतों' के बालगीत अत्यन्त सरस, विविधता पूर्ण और बच्चों के मन को प्रसन्न करके पल भर में उन्हें याद हो जाने वाले हैं। उनके 'ट्रेननुं' तथा 'गोरो' काव्य भी इतने भाव भरे और बालोचित हैं कि बाल समाज ने उन्हें बहुत पसन्द किया। बच्चों की स्वाभाविक मनोवृत्तियों को पहचान कर उनकी भावनाओं के अनुरूप विषयों पर उनकी ही जैसी सरल भाषा में लिखने के कारण उनकी कवितायें बहुत प्रसिद्ध हुईं और वह गुजरात में बच्चों के प्रिय कवि माने जाते हैं। गुजराती बालगीत साहित्य के इतिहास में व्यास जी के "नवागीतों" का प्रमुख स्थान है।

श्री० गीजु भाई ने 'बाल लोक गीत संग्रह' के दो भागों में १०० से अधिक छोटे-छोटे घरेलू विषयों पर लिखे बालगीत संग्रहीत करके बाल साहित्य के भंडार को भरा है। उनमें से अनेक गीत गुजरात के लोक जीवन का दिग्दर्शन कराकर बच्चों के मन में अपने देश की भूमि और उसके जीवन के प्रति प्रेम उत्पन्न करने वाले हैं। गुजरात के फूल पत्ते, पक्षी, वायु, वातावरण और पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित विषयों पर बड़े सुन्दर गीत उनमें दिए हुए हैं। पर जन भाषा में प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग उनमें बहुतायत से हुआ है। उन्हें पढ़कर प्रायः बच्चे शुद्ध गुजराती और प्रान्तीय गुजराती के भ्रम में पड़कर रह जाते हैं। शुद्ध साहित्यिक गुजराती भाषा के प्रेमी पाठकों को यह बात अखरने वाली लगती है।

गीजूभाई के बाद गुजराती बाल साहित्य के कवियों में श्री० झवेर चन्द मेघाणी का प्रमुख स्थान है। उनकी पुस्तक 'वेणी ना फुल' में कितनी ही सरल स्वाभाविक और प्रेरक कवितायें बच्चों के लिए संकलित हैं। वह बच्चों की कल्पना के लिए नये क्षितिजों का विस्तार करती हैं। और एक ही बार पढ़ने या सुनने से उन्हें तुरन्त याद हो जाती हैं। उनकी छोटी-छोटी पंक्तियाँ वह खेल-कूद में उछल-उछल कर गाने दुहराने लगते हैं। किन्तु यह सरल कवितायें भी गीजूभाई की कविताओं की तरह प्रान्तिक शब्दों के प्रयोग से मुक्त नहीं हैं। मेघाणी जी ने अपनी उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा है---"हमने इन गीतों में काठियावाड़ी शब्दों का प्रयोग करने की छूट ली है। यह छूट हमने साहित्य को प्रान्तिक बनाने के लिए नहीं बल्कि इसके विपरीत जो प्रान्तिक है उसको समस्त गुजरात का भाषाधन बनाने की पवित्र अभिलाषा से ली है।" किन्तु उनके काठियावाड़ी प्रान्तिक शब्दों के प्रयोग के कारण यदि गुजरात के अन्य भागों के बालक उनकी कविता में उतना रस न ले सकें जितना उन्हें शुद्ध साहित्यिक गुजराती कविता में मिल सकता है तो उनकी वह पवित्र अभिलाषा किस प्रकार पूरी हो सकती है। शब्दों के भ्रम जाल में पड़कर उन सरस कविताओं के प्रति जिज्ञासा और रुचि त्याग देने का भय बच्चों की ओर से सदा बना रह सकता है। इसलिए मेधाणी जी का उपरियुक्त तर्क सर्वथा युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। काठियावाड़ के प्रान्तिक शब्दों का प्रयोग यदि बड़ों के लिए लिखे गये साहित्य में हो तो उतना बुरा नहीं लगेगा। पर बाल साहित्य में केवल उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जो गुजराती जानने वाले अधिकतर बच्चे आसानी से समझ सकें। इस दृष्टि से गीजुभाई और मेघाणी जी के यह प्रान्तिक प्रयोग श्रेष्ठ और सफल नहीं कहे जा सकते।

गुजराती बाल साहित्य में बच्चों के लिए लिखी गई उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जिन्हें बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए लिखा गया है। गुजरात में उन्हें 'ईलो' काव्य कहते हैं और वह अंग्रेजी नर्सरी राइम्स के समकक्ष रक्खी जा सकती हैं। गुजराती में ईलो काव्य का दूसरा नाम 'लाड़' काव्य भी है। हिन्दी में लोरियाँ भी कुछ इसी प्रकार की होती हैं पर वास्तव में वह ईलो काव्य की अपेक्षा गुजराती होलरड़ा (लोरियाँ) के अधिक निकट मानी जाती हैं। लोरियाँ और होलरड़ां में यह अन्तर है कि लोरियाँ जहाँ बच्चों को रोते-रोते चुपाकर सुलाने के लिए लिखी जाती हैं वहाँ होलरड़ां में ऐसे वीरता के भावों एवं साहसपूर्ण संस्कारों को उभारा जाता है जिनसे बच्चों के मन में आत्म विश्वास और निर्भीकता उत्पन्न हो सके। कहीं-कहीं तो होलरड़ां में व्यक्त भाव बड़ों के मनोभावों के इतने निकट होते हैं कि उन्हें बाल साहित्य के अन्तर्गत लेने में भी संकोच हो सकता है। अंग्रेजी में नर्सरी राइम्स के अन्तर्गत ऐसी कवितायें भी मिलती हैं जिनमें व्यक्त भावों का कोई तारतम्य नहीं रहता फिर भी जो बच्चों का पर्याप्त मनोरंजन करती हैं। गुजराती के ईलो काव्य तथा होलरड़ां लिखने वाले कवियों को अंग्रेजी तथा हिन्दी के बालगीतों का अनुशीलन कर उनसे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। गुजराती भाषा में ईलो काव्यों के प्रमुख कवि श्री० चन्द्र वदन मेहता, श्री० देशड़ जी परमार आदि माने जाते हैं। उनके भाई बहिन की शरारत का चित्रण करने वाले वर्णनों को पढ़कर छोटे बच्चे आनन्दोन्मत्त हो उठते हैं। और उनमें जो सन्देश तत्व उन्हें मिलता है उसे अपने जीवन में उतार लेते हैं।

बच्चों के मनोनुकूल होने के साथ साथ लोक जीवन और सांस्कृतिक परम्पराओं की जितनी सुन्दर अभिव्यक्ति गुजराती बालगीतों में देखने को मिलती है उतनी किसी अन्य भारतीय भाषा के बालगीतों में नहीं। गुजरात के पारिवारिक जीवन और प्राकृतिक दृश्यों के इतने मधुर शब्द चित्र उनमें उतर कर आये हैं कि बच्चों के मन में अपने प्रदेश और उसके निवासियों के प्रति एक विचित्र जिज्ञासा और प्रेम की भावना उत्पन्न करने में पूर्णतया सफल होते हैं। गुजरात का एक अत्यन्त सरस बालगीत इस प्रकार है---

चकी ब्हेन, चकी ब्हेन मारी साथे रमवा
आवशो के नहि
आवशो के नहि
चक चक चणने
चीं चीं करने
चणवाने दाणा
आपीश तने
आपीश तने
चकी ब्हेन चकी ब्हेन मारी साथे रमवा
बा नाहि बढशे
बापु नहि बोलशे
नानो बाबो तने
ग्रालशे नहि
ग्रालशे नहि
चकी ब्हेन चकी ब्हेन मारी साथे रमवा।

(चिड़िया बहिन, चिड़िया बहिन आओ मेरे साथ खेलो। आओगी या नहीं, आओगी या नहीं। चक-चक चुंगना, चीं चीं करना। मैं तुम्हें दाना चुंगने के लिए दूंगी। चिड़िया बहिन मेरे साथ खेल लो। माँ डाँटेगी नहीं, बाप बोलेंगे नहीं। छोटा मुन्ना तुम्हें पकड़ेगा नहीं। पकड़ेगा नहीं। चिड़िया बहिन मेरे साथ खेल लो।)

एक अकेली छोटी लड़की के मन में चिड़िया को देखकर जो भाव उठ सकते हैं उनका कितना सुन्दर चित्रण इस बालगीत में किया गया है। प्रत्येक छोटे बच्चे को चिड़िया अच्छी लगती है। उसका मन उसकी ओर आकर्षित होता है। वह उससे आत्मीयता का एक सम्बन्ध जोड़ लेना चाहता है। इसलिए कितने स्वाभाविक ढंग से इस बालगीत की लड़की चिड़िया से बहनपा जोड़ लेती है और उससे कहती है कि चिड़िया बहन, मेरे साथ खेल लो। तुरन्त ही उसकी विवेक बुद्धि उससे प्रश्न करती है 'आओगी या नहीं'। कोई व्यक्ति जब किसी को बहुत अधिक प्यार करता है तो उसके सामीप्य का सुख प्राप्त होने से पूर्व शंकायें भी उठा करती हैं यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसलिए बालगीत की छोटी बच्ची के मन में 'आओगी या नहीं' इस शंका का उठना अत्यन्त स्वाभाविक है। शंका उठने के पश्चात् वह चिड़िया बहिन को लालच देती है मैं तुम्हें चुंगने के लिए दाना दूंगी। तभी उसे ध्यान आता है कि कहीं चिड़िया इस भय के कारण तो नहीं आ रही कि कोई उसे पकड़ लेगा। इसलिए वह उसे हर प्रकार से आश्वासन देती है माँ डाँटेगी नहीं, बाप बोलेंगे नहीं और छोटा मुन्ना तुझे पकड़ेगा नहीं। तात्पर्य यह है कि वह उसके साथ निश्चिन्त स्वतन्त्रता के साथ खेल सकेगी।—किस छोटी बच्ची का मन इस भाव भरे गीत को पढ़ या सुनकर प्रफुल्लित नहीं हो उठेगा।

इसी प्रकार बच्चों को प्रिय लगने वाला एक छोटा-सा बालगीत गांधी जी के चर्खे

से सम्बन्धित है। गांधी जी ने गुजरात के लोक जीवन को बहुत प्रभावित किया था इसलिए वहाँ के बालगीत लिखने वालों का ध्यान उनके चर्खे की ओर आकर्षित हो जाने में आश्चर्य की कोई बात नहीं। वह गीत यह है—

बापु तारो रेंटियो
चक्कर चक्कर करे।
गांधी तारो रेंटियो
कर कर कर कर करे।
बापु तारो रेंटियो
चप चप पुणिओभरे
गांधी तारो रेंटियो
सर सर सूतर सरे।

(बापू, तुम्हारा चर्खा घूम रहा है। गांधी, तुम्हारा चर्खा 'कर्र कर्र' की आवाज कर रहा है। बापू तुम्हारा चर्खा 'चप चप' रुई की पूनिया भर रहा है। गांधी तुम्हारा चर्खा 'सर सर' सूत कात रहा है।)

चर्खे के घूमने से लेकर पूनिया भरने और सूत कातने तक का सारा वर्णन चार पंक्तियों में कवि ने कर दिया है। 'कर कर' 'चप चप' 'सर सर' शब्दों का प्रयोग करके चर्खा घूमते समय उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनियों का उल्लेख करके कवि ने न केवल इस बालगीत में एक ऐसी रोचकता उत्पन्न कर दी है जिसके प्रति प्रत्येक बच्चे का मन स्वभावतया आकर्षित होगा, बल्कि चर्खे के माध्यम से इन तीनों ध्वनियों से बच्चों को बड़े सुन्दर ढंग से परिचित भी करा दिया है।

कुछ और गुजराती बालगीत यहाँ मनोरंजन के लिए उद्धृत किये जाते हैं—

बोर वाली आवी रे, कोई बोर ल्यो!
मीठा मीठा बोर ल्यो
साकर जेवा बोर ल्यो
चणी बोर लावी रे, कोई बोर ल्यो।

(बेर वाली आई है कोई बेर ले लो। मीठा मीठा बेर लो। मिसरी जैसा बेर लो। चुनिया बेर लाई है कोई बेर ले लो।)

आवोने चकली आवोने चकला
चोकमा दाणा नाख्या छे।
आवोने काबर कल बल करती
चोकमा दाणा नाख्या छे।
आवोने कोयल कू कू करती
चोकमा दाणा नाख्या छे।
आवोने मोरला माथता बूलता
चोकमा दाणा नाख्या छे।
आवोने पोपट राम राम भजता
चोकमा दाणा नाख्या छे।

(चकली आओ, चकला आओ चौक में दाना फैला दिया है।
कल बल करते हुए काबर आओ, चौक में—
कुहू कुहू करती कोयल आओ, चौक में—
नाचते कूदते मोर आओ, चौक में—
राम राम भजते हुए तोते आओ, चौक में......)

नानकडी बहेन मारी नानकडी बहेन
खिल खिल हसती नानकडी बहेन।
नानकडी बहेन मारी नानकडी बहेन
मीठुं मीठुं बोलती नानकडी बहेन।
नानकडी बहेन मारी नानकडी बहेन
दड बड दड बड दोडती नानकडी बहेन।

(नन्हीं बहन मेरी नहीं बहन। खिल खिल हंसती नन्हीं बहन। मीठा मीठा बोलती नन्हीं बहिन। गड़बड़ गड़बड़ दौड़ती मेरी नन्हीं बहिन।)

पीलो पतंग मारो पीलो पतंग
केवो मजानो मारो पीलो पतंग।
भूरो पतंग मारो भूरो पतंग
केवो उडे छे मारो भूरो पतंग।

(पीली पतंग मेरी पीली पतंग। कैसे मजे की है मेरी पीली पतंग। भूरी पतंग मेरी भूरी पतंग। कैसी उड़ती है मेरी भूरी पतंग।)

मधुर बालगीतों और सुन्दर छोटी-छोटी कहानियों की बहुत-सी पुस्तकों के अतिरिक्त गुजराती बाल साहित्य में महापुरुषों के जीवन चरित्र, यात्रा वृत्तान्त, संवाद, नाटक और ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं की पुस्तकें भी बहुतायत से लिखी गई हैं। १९२१ से लेकर १९४० तक का काल गुजराती बाल साहित्य के इतिहास का सुनहरा काल रहा है। सन् १९२२ में श्री० रमण लाल शाह ने बच्चों के लिए प्रथम पत्रिका के रूप में 'बाल जीवन' मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके बाद ही चरोत्तर एजुकेशन सोसायटी ने 'बाल मित्र' श्री० नटवर लाल वीमवाला ने सूरत से 'गांडीव', तथा श्री० भिक्खा भाई ने गोघड़ से 'बालक नामक मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इनके अतिरिक्त 'रमकधुन' 'कुमार' 'चन्दामामा', 'बाल कन्हइया' इत्यादि और भी कई बालोपयोगी मासिक गुजराती में प्रकाशित होते हैं। 'जगमग', 'बाल सन्देश', तथा 'रस रंजन' नाम से अब तीन बालोपयोगी साप्ताहिक पत्र भी गुजराती में निकल रहे हैं। हिन्दी इतनी व्यापक भाषा होते हुए भी अभी तक एक भी साप्ताहिक पत्र को जन्म नहीं दे सकी है। 'कुमार' और 'स्त्री बोध' पत्रों के बाल विभागों में भी बच्चों के लिए अच्छी पठनीय सामग्री प्रकाशित होती है।

इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष की सब भाषाओं में गुजराती का बाल साहित्य सबसे अधिक विकसित और समृद्ध बाल साहित्यों में से एक है। गुजरात में ज्यों-ज्यों शिक्षा का विस्तार होता जायेगा बाल साहित्य की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ती जायेगी और यह आशा की जाती है कि उसके साथ-साथ बाल साहित्य का भी अधिकाधिक विकास होता जायेगा।